बी.ए. द्वितीय वर्ष

इतिहास, द्वितीय प्रश्नपत्र

विश्व इतिहास की प्रमुख धाराएं
1871 से 1945 तक

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY-BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Ajay Khare
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education, Bhopal.
2. Dr. Mamta Chansoria
   Professor
   MLB College Bhopal.
3. Dr. Rajesh Agrawal
   Professor
   MLB college Bhopal.

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.
2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.
3. Dr. L.P. Jharia
   Director DME
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.
4. Dr. Ajay Khare
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education, Bhopal.
5. Dr. Mamta Chansoria
   Professor
   MLB College Bhopal.
6. Dr. Rajesh Agrawal
   Professor
   MLB college Bhopal.

COURSE WRITER

Jyoti Chourasia, Assistant Professor (History), Shri Guru Nanak Mahila Mahavidyalaya, Jabalpur MP.

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. (Developed by Himalaya Publishing House Pvt. Ltd.) and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

विश्व इतिहास की प्रमुख धाराएं 1871 से 1945 तक

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 फ्रांस का तृतीय गणतंत्र। केसर विलियम प्रथम, बिस्मार्क की गृह एवं विदेश नीती। केसर विलियम द्वितीय।	**इकाई 1** : फ्रांस में तृतीय गणराज्य; बिस्मार्क-गृह एवं विदेश नीति; कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति **(पृष्ठ 3–26)**
इकाई–2 अफ्रीका एवं तुर्की-अफ्रीका का विभाजन, पूर्वी समस्या, रूस-तुर्की युध्द, बर्लिन कॉंग्रेस (1878), युवा तुर्क आंदोलन, बाल्कन युध्द प्रथम एवं द्वितीय 1905 की रूस की क्रांति।	**इकाई 2** : अफ्रीका का विभाजन, पूर्वी समस्या, रुस-टर्की युध्द (क्रीमिया का युध्द) बर्लिन कॉंग्रेस (1878) युवा तुर्क आंदोलन व बाल्कन युद्ध, 1905 ई. की रूस की क्रांति **(पृष्ठ 27–48)**
इकाई–3 यूरोप-प्रथम विश्व युध्द-कारण, परिणाम एवं प्रभाव। 1917 की रूस की क्रांति। विल्सन के चौदह सूत्र, पेरिस का शांति सम्मेलन एवं वर्साय की संधि, राष्ट्र संघ।	**इकाई 3** : प्रथम विश्व युध्द, 1914-1916, 1917 ई. की रूस की क्रांति, विल्सन के चौदह सूत्र, पेरिस शांति सम्मेलन एवं वसार्य की संधि, राष्ट्र संघ **(पृष्ठ 49–67)**
इकाई–4 चीन और जापान-चीन और जापान में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद। प्रथम व द्वितीय अफीम युद्ध, ताइपिंग विद्रोह, बॉक्सर विद्रोह, चीनी क्रांति 1911, जापान में मेईजी की पुर्नस्थापना, आधुनिकीकरण, सैन्यवाद का उदय, चीन-जापान युद्ध 1894, रूस-जापान युद्ध 1905, चीन-जापान युद्ध 1937।	**इकाई 4** : चीन और जापान– चीन और जापान में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद, प्रथम व द्वितीय अफीम युद्ध, ताईपिंग विद्रोह, चीनी क्रांति 1911 ई., जापान में मेईजी पुर्नस्थापना, आधुनिकीकरण, सैन्यवाद का उदय, चीन-जापान युद्ध 1894, रूस-जापान युद्ध 1905, चीन-जापान युद्ध 1937 **(पृष्ठ 68–99)**
इकाई–5 इटली में फासीवाद, मुसोलिनी की गृह एवं विदेश नीति, जर्मनी मे नाजीवाद, हिटलर की गृह एवं विदेश नीति, द्वितीय विश्वयुद्ध-कारण, परिणाम एवं प्रभाव।	**इकाई 5** : इटली में फासीवाद, मुसोलिनी की गृह एवं विदेश नीति, जर्मनी में नाजीवाद-हिटलर की गृह एवं विदेश नीति, द्वितीय विश्व युद्ध-कारण, परिणाम एवं प्रभाव **(पृष्ठ 100–158)**

विषय–सूची

परिचय 1–2

इकाई 1: फ्रांस में तृतीय गणराज्य; विस्मार्क-गृह एवं विदेश नीति; कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीतिं 3–26

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 फ्रांस में तृतीय गणतंत्र की समस्याएँ
1.3 तृतीय गणतंत्र के संविधान का निर्माण
1.4 तृतीय गणतंत्र में सुधार
1.5 गणतंत्र सरकार के प्रमुख संकट
1.6 गणतंत्र की विदेश नीति
1.7 बिस्मार्क की गृह एवं विदेश नीति
1.8 कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति
1.9 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.10 सारांश
1.11 मुख्य शब्दावली
1.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.13 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2: अफ्रीका का विभाजन, पूर्वी समस्या, रुस-टर्की युध्द (क्रीमिया का युध्द) बर्लिन काँग्रेस (1878) युवा तुर्क आंदोलन व बाल्कन युद्ध, 1905 ई. की रूस की क्रांति 27–48

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 अफ्रीका का विभाजन
2.3 पूर्वी समस्या, रूस. तुर्की युध्द (क्रीमिया युध्द)
2.4 बर्लिन काँग्रेस (1878), युवा तुर्क आंदोलन व बाल्कन युध्द
2.5 1905 ई. की रूस की क्रांति
2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3: प्रथम विश्व युध्द, 1914-1916, 1917 ई. की रूस की क्रांति, विल्सन के चौदह सूत्र, पेरिस शांति सम्मेलन एवं वसार्य की संधि, राष्ट्र संघ 49–67

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 प्रथम विश्व युध्द के कारण, परिणाम एवं प्रभाव
3.3 1917 ई. की रूस की क्रांति
3.4 'वुडरो विल्सन' के चौदह सूत्र
3.5 पेरिस का शांति सम्मेलन एवं वर्साय की संधि

3.6 राष्ट्र संघ
3.7 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.8 सारांश
3.9 मुख्य शब्दावली
3.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.11 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4: चीन और जापान— चीन और जापान में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद, प्रथम व द्वितीय अफीम युद्ध, ताईपिंग विद्रोह, चीनी क्रांति 1911 ई., जापान में मेईजी पुर्नस्थापना, आधुनिकीकरण, सैन्यवाद का उदय, चीन-जापान युद्ध 1894, रूस-जापान युद्ध 1905, चीन-जापान युद्ध 1937 **68—99**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 चीन और जापान में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद
4.3 प्रथम व द्वितीय अफीम युद्ध
4.4 जापान में मेईजी की पुर्नस्थापना
4.5 चीन-जापान युद्ध 1894 ई., रूस-जापान युद्ध 1905 ई., चीन-जापान युद्ध 1937 ई.
4.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5: इटली में फासीवाद, मुसोलिनी की गृह एवं विदेश नीति, जर्मनी में नाजीवाद-हिटलर की गृह एवं विदेश नीति, द्वितीय विश्व युध्द-कारण, परिणाम एवं प्रभाव **100—158**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 नाजीवाद-हिटलर की गृह एवं विदेश नीति
5.3 फासीवाद का उदयः मुसोलिनी की आंतरिक एवं वैदेशिक नीति
5.4 द्वितीय विश्व युद्धः कारण, घटनाएं एवं प्रभाव
5.5 दोनों विश्व युध्द के मध्य विश्व राजनीति
5.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

पुस्तक के द्वितीय प्रश्न पत्र में विश्व इतिहास की प्रमुख धाराएं 1871 ई. से 1945 ई. तक का विवरण दिया गया है पुस्तक में रंगमंच पर जो महत्वपूर्ण वैचारिक एवं ऐतिहासिक परिवर्तन हुए उनका विवेचन किया गया है।

यूरोप के इतिहास में सामंतवाद के पश्चात् आधुनिक युग का आरंभ हुआ। बौद्धिक जागरण (पुनर्जागरण) के फलस्वरुप यूरोप में नवीन विचार, मान्यताओं और परंपराओं का विकास हुआ तथा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन अत्याधिक प्रभावित हुआ। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप में नवीन साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का उदय हुआ तथा पूंजीवाद का प्रादुर्भाव हुआ। धार्मिक क्षेत्र में वाणिज्यवाद का उदय तथा व्यावसायिक क्रांति आरंभ हुई। नवीन भौगोलिक अन्वेषणों, क्रमिक आर्थिक विकास आदि कारकों में उपनिवेशों की होड़ आरंभ की और इसके परिणामस्वरुप गुटबंदी तथा शास्त्रास्त्रों की प्रतिस्पर्धा शुरु हो गयी। 1688 ई. की गौरवपूर्ण क्रांति अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम तथा 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रांति ने किस प्रकार विश्व राजनीति एवं समाज को प्रभावित किया। राष्ट्रों के वैचारिक मतभेदों के कारण मानवता का दो महायुद्धों की पीड़ा भोगना पड़ी। प्रथम विश्व युद्ध के लिए कौन सी परिस्थितियाँ उत्तरदायी थी और किस प्रकार अधिनायकवादी शक्तियों ने राष्ट्र संघ के शांति प्रयासों को विफल करते हएं विश्व को द्वितीय महायुद्ध की दहलीज पर खड़ा किया, इसकी समझ कायम करने का प्रयास किया है, इसके अतिरिक्त सोवियत का क्रांति और उसके प्रभाव उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद तथा साम्राज्यवाद के विरूद्ध चीन तथा जापान में प्रतिक्रिया दो महायुद्धों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने वाले तत्वों तथा द्वितीय विश्व युद्ध के कारण घटनाओं एवं प्रभावों का विवेचन पुस्तक में किया गया है।

विश्व इतिहास के विवेचित विषयों पर विद्वान इतिहासकार प्रामाणिक विवरण लिख चुके है। लेखक ने पुस्तक में आधुनिक इतिहासकारों द्वारा रचित ग्रन्थों की सहायता से विषय को स्पष्ट, सरल, सुबोध एवं सुरूचिपूर्ण सशैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं।

यह पुस्तक स्व-अध्ययन प्रणाली के आधार पर तैयार की गई हैं जो पांच ईकाईयों में विभक्त है। प्रत्येक इकाई विषय के परिचय से शुरू होती है जिसके बाद उस इकाई के उद्देश्यों की रूपरेषा दी गई है इन इकाईयों में विषय सामग्री को बहुत ही सरल व छात्रों की सुविधा को ध्यान में रखकर तैयार किया गया हैं ताकि छात्र कम से कम समय में इसका अध्ययन कर सकें। छात्रों की सुविधा हेतू संबंधित इकाई में अपनी प्रगति जाँचिए संबंधित प्रश्न उनके उत्तरों सहित दिए गए है जिससे छात्र उस इकाई के संबंध में अपने ज्ञान की परख कर सके। प्रत्येक प्रश्न भी दिए हुए है जिससे लघु एवं दीर्घ उत्तरों वाले प्रश्न सम्मिलित है। संबंधित इकाई के अंत में इकाई का सार व मुख्य शब्दावली भी दी हुई है जो छात्रों के पुनः सम्मिलन हेतू एवं प्रभावशाली औजार के रुप में कार्य करता है। संपूर्ण पुस्तक

में छात्रों को विषय के बारें में स्पष्ट, सरल और सुबोध पूर्ण बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मैं श्रीमान विवियन फ्रांसिस का आभार एवं धन्यवाद प्रस्तुत करती हुँ कि उन्होंने इस पुस्तक को लिखने में मुख्य स्त्रोतों के संचयन एवं एकत्रित करने में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया, साथ ही पुस्तक के लिए उपयुक्त सामग्री का संकलन में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया उनके द्वारा हर इकाई की वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के संकलन में विशेष सहयोग प्रदान किया। पुस्तक के संबंध में समय-समय पर मुझे मार्गदर्शित करने का कार्य किया।

–ज्योति चौरसिया

इकाई 1 फ्रांस में तृतीय गणराज्य; विस्मार्क-गृह एवं विदेश नीति; कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति

टिप्पणी

संरचना (Structure)

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 फ्रांस में तृतीय गणतंत्र की समस्याएँ
1.3 तृतीय गणतंत्र के संविधान का निर्माण
1.4 तृतीय गणतंत्र में सुधार
1.5 गणतंत्र सरकार के प्रमुख संकट
1.6 गणतंत्र की विदेश नीति
1.7 बिस्मार्क की गृह एवं विदेश नीति
1.8 कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति
1.9 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.10 सारांश
1.11 मुख्य शब्दावली
1.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय (Introduction)

इस इकाई में फ्रांस एवं जर्मनी के इतिहास का वर्णन किया जाना प्रस्तावित है। 1870 ई. में सीमान के युद्ध प्रशा के हाथों फ्रांस की शर्मनाक पराजय हुई थी, जिसके परिणाम स्वरूप फ्रांस को अपने दो बहुमूल्य प्रदेश अल्सास एवं लॉरेन प्रशा को देने पड़े थे, इस पराजय के बाद फ्रांस की राजनीतिक स्थिती डावांडोल हो गई एवं तीसरी बार वहाँ गणतंत्र की स्थापना हुई। 4 सितंबर 1870 ई. को तृतीय गणतंत्र की घोषणा कर दी गई। राष्ट्र रक्षा के लिए तीन सदस्यों की एक समिति गठ्ल कर दी गई। इस समिति में जल्सफेबर, गेम्बेत तथा जनरल त्रोंचू सदस्य बने। एक अस्थायी सरकार का गठ्न किया गया। इस सरकार ने फ्रांस को पराजय से बचाने का प्रयत्न किया किन्तु वह असफल रही। **डी.सी. सोमरवैल ने इस अस्थायी सरकार के विषय में लिखा है कि ''यह एक अस्वस्थ बच्चा के समान थी जिसका पालन पराजय तथा राष्ट्रीय अपमान में हुआ था''** 2 फरवरी 1871 ई. को इस व्यवस्था के स्थान पर 750 प्रतिनिधियों की एक राष्ट्रीय सभा स्थापित की गई, जो कि जर्मनी के साथ संधि करने का कार्य संपन्न करने के लिए ही सार्वजनिक मतदान द्वारा निर्वाचित हुई थी। राष्ट्रीय सभा में राजतंत्र वादियों का बहुमत था, जो जर्मनी के साथ संधि करके शांति स्थापित करना चाहते थे। जनता भी यही चाहती थी, इसीलिए उसने राजतंत्र वादियों को मत दिया था। गणतंत्रवादी अल्पमत में थे उनका नेता गेम्बेला युद्ध जारी करने के पक्ष में था। किंतु उसकी बात नहीं मानी गई और राष्ट्रीय सभा ने जर्मनी के साथ संधि की।

इकाई के द्वितीय भाग में 1871 ई. 1888 ई. तक जर्मनी के इतिहास का विवरण है 1871 ई. में फ्रांस तथा प्रशासन के बीच युद्ध के फलस्वरूप जर्मनी का एकीकरण हुआ और 2 जर्मन साम्राज्य की स्थापना हुई। 1877-1918 ई. के काल में जर्मनी में तीन सम्राट हुए-विलियम प्रथम (1871-1888 ई.) फ्रेडरिख तृतीय (9 मार्च से 15 जून 1888 ई.), तथा विलियम द्वितीय (1888-1918 ई.)। विलियम प्रथम के समय में जर्मन साम्राज्य की राजनीति पर बिस्मार्क का एकछत्र नियंत्रण रहा। वह 1890 ई. तक साम्राज्य का प्रधानमंत्री (चांसलर) रहा।

1.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को निम्न विषय से अवगत कराना है।

- फ्रांस में तृतीय गणतंत्र की समस्याएं एवं सुधार कार्य
- जर्मनी में 1871 ई. 1888 ई. के मध्य बिस्मार्क गृह एवं विदेश
- जर्मनी में 1889 ई. से 1914 ई. के मध्य कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति।

1.2 फ्रांस में तृतीय गणतंत्र की समस्याएँ (Problems of Third Republic in France)

नेपालियन तृतीय के पश्चात व्यवस्थापिका सभा के सदस्य पेरिस की सिटी हॉल में गेम्बेटा के नेतृत्व में एकत्रित हुए जिन्होंने यह निश्चय किया कि फ्रांस में गणतंत्र शासन की स्थापना की जाये। पेरिस की अधिकांश जनता ने इसका साथ दिया। उस समय फ्रांस में तीन दल प्रमुख थे जो गणतंत्र के समर्थक थे किन्तु कुछ बातों में उनमें पर्याप्त विभिन्नताएं थी किन्तु यह समय पारंपारिक वाद-विवाद और लड़ाई झगड़े में व्यतीत करने का नहीं था क्योंकि जर्मन सेना बड़ी तेजी के साथ फ्रांस की ओर चली आ रही थी। अतः समस्त दलों के लोगों नें सम्मिलित रूप से यह निश्चित किया कि गेम्बेटा और थीयर्स के नेतृत्व में सरकार का निर्माण किया जाए।

फ्रेंकफर्ट की संधि– (10 मई 1871)

फ्रेंकफर्ट नामक स्थान पर यह संधि फ्रांस एवं प्रशा के मध्य हुई थी। इस संधि के अनुसार–

- मेत्स, स्ट्राबर्ग, अल्सास और लारेन के प्रदेश जर्मनी को मिले। इस बात का केवल वेल्फोर्ट ही फ्रांस के पास रह गया।
- फ्रांस ने युद्ध के हर्जाने के रूप में 20 करोड़ पाउण्ड जर्मनी को देना स्वीकार किया।
- हर्जाने की रकम अदा होने तक जर्मन सेना फ्रांस की मुख्य भूमि पर थी और इसका खर्च फ्रांस को ही करना था।

फ्रेंकफर्ट की संधि अपमानजनक तथा कठोर थी, किन्तु फ्रांस इसको स्वीकार करने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं था। गणतंत्रवादियों ने इस संधि का विरोध किया और इसे राष्ट्रीय अपमान बताया। जिस उद्देश्य के लिए यह संधि की गई थी, वह पूरा नहीं हुआ।

टिप्पणी

पेरिस में असंतोषः पेरिस कम्यून तथा सरकार के मध्य संघर्ष के कारण

सरकार तथा पेरिस के नगरवासियों की संस्था पेरिस कम्यून (यह संस्था नगर की व्यवस्था के लिए बनाई गई थी) के बीच गंभीर मतभेद पैदा हो गए। इस मतभेद ने एक संघर्ष का रूप ले लिया।

- गणतंत्र को मान्यता न देना
- निरंकुश राजतंत्र की स्थापना का भय
- वर्साय की राजधानी बनाने का निर्णय
- आर्थिक संकट
- क्रांतिकारी विचारों का प्रभाव
- नेशनल गार्ड के सैनिकों का वेतन बंद होना

गणतंत्र को मान्यता न देना – फ्रांस में इस समय गणतंत्रीय शासन था, परंतु राष्ट्रीय सभा में राजतंत्र वादियों का बहुमत था। राष्ट्रीय सभा ने गणतंत्रीय शासन की स्थापना दबाव में की थी। पेरिस के गणतंत्र वादि विश्वास करते थे कि वह राष्ट्रीय सभा गणतंत्र को रद्द करके पुनःराजतंत्र की स्थापना करेगी। यह भय गृह कलह का प्रमुख कारण बना।

निरंकुश राजतंत्र की स्थापना का भय – राष्ट्रीय सभा पत राजतंत्र वादी का नियंत्रण था और इस संस्था ने देश में स्थाई संस्था का विचार स्थगित कर दिया था। इससे यह स्पष्ट हो रहा था कि अवसर पाते ही राजतंत्र समाप्त करके निरकुंश राजतंत्र की पुनःस्थापना की जा सकती है। पेरिस कम्यून की यह सबसे बड़ी समस्या थी कि राष्ट्रीय सभा गणतंत्र के विरूद्य थी। राष्ट्रीय सभा ने अनेक ऐसे काम किए, जिससे प्रशासन में अनिश्चतता पैदा हुई, इससे गणतंत्र वादियों को लगा कि राष्ट्रीय सभा निरंकुश राजतंत्र की और बढ रहा है।

वर्साय को राजधानी बनाने का निर्णय – राष्ट्रीय सभा ने मार्च 1871, पेरिस के स्थान वर वर्साय को अपना केन्द्र बनाया। वर्साय बोर्बो निरंकुश राजसता का प्रतीक था। राष्ट्रीय सभा ने यह निर्णय लिया कि भविष्य में राष्ट्रीय सभा वर्साय में हुआ करेंगी और वर्साय को ही राजधानी बनाया जाएगा। पेरिस अपने त्याग द्वारा और महान कष्ट उठाकर युध्द की भयंकर स्थिति को समाप्त करके फ्रांस की मर्यादा एवं प्रतिष्ठा को उंचा उठाया, इसीलिए पेरिस वासी इस अपमान को स्वीकारने के लिए तयार नहीं थे।

आर्थिक संकट – फ्रांस सरकार ने पेरिसवासियों के आर्थिक संकट को दूर करने के लिए उन्हें ऋण दिये थे। युध्द के कारण इन भुगतानों को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया था, परन्तु राष्ट्रीय सभा शांति स्थापित हो जाने के बाद इन ऋणों की पुनःवसूली करना चाहती थी। पेरिसवासी चाहते थे कि इन ऋणों का भुगतान कुछ और समय के लिए स्थगित किया जाए, परंतु सभा इसके लिए तैयार नहीं थी।

क्रांतिकारी विचारों का प्रभाव – पेरिस में विभिन्न प्रकार के क्रांतिकारी विचार रखने वाले बहुसंख्यांक लोग रहते थे, इनमें अराजकरतावादी, आतंकवादी, समाजवादी लोग थे जिन्होने विद्रोही तत्वों को सरकार के विरूध्द उकसाया। समाजवादी विकेन्द्रीकरण का नारा देकर कम्यून को अपने कार्यों में स्वतंत्रता दिलाना चाहते थे।

नेशनल गार्ड के सैनिकों का वेतन बंद होना – सरकार ने नेशनल गार्ड के सैनिकों का वेतन भी बंद करने का निश्चय किया। इससे पेरिस की जनता में विशेषकर मजदूरों में जो नेशनल गार्ड के सैनिक थे बड़ा असंतोष पैदा हुआ जिसने विद्रोह का रुप ले लिया।

पेरिस में विद्रोह–

विद्रोहियो ने पेरिस में कम्यून (क्रांतिकारी समूह) शासन की स्थापना की। कम्यून शासन के लिए पांच सदस्यों की सार्वजनिक सुरक्षा समिति की स्थापना की गई। साम्यवाद का प्रतीक लाल झण्डा फहराया गया। विद्रोहियों ने फ्रांसवासियों को अपने अपने यहां कम्यून शासन की स्थापना के लिए प्रेरित किया। वे चाहते थे कि केन्द्रीकृत शासन के स्थान पर जनता द्वारा निर्धारित कम्यूनों के शासन की स्थापना हो और इन्हें स्वायत्त शासन के अधिकार प्राप्त हो। वे फ्रांस को कम्यूनों का संघ बनाना चाहते थे।

पेरिस में कम्यून के समर्थक कम्यूनार्डस के अलावा एक स्वतंत्र दल ऐसा भी था जो कम्यून के आदेशों का पालन नहीं करता था। यह दल राष्ट्रीय रक्षा दल के नाम से जाना जाता था। राष्ट्रीय सभा का कार्यपालिका अध्यक्ष थीयर्स शस्त्र बल द्वारा विद्रोह दमन करना चाहता था, अतः उसके आदेश पर सरकारी सेना ने पेरिस घेर लिया। यह घेरा 2 अप्रैल से 21 मई तक रहा। दों महीने तक कठिन संघर्ष के पश्चात् पेरिसवासी टूट गए। सरकार सेना ने पेरिस में घुसकर विद्रोहियों में जमकर प्रतिशोध लिया दोनों ओर से भयंकर विद्रोह हुआ। अंततः 28 मई को विद्रोहियों ने आत्मसमर्पण कर दिया। सरकार ने हजारो विद्रोहियों को बंदी बनाया तथा उन पर मुकदमें चलाए।

परिणाम – कम्यून विद्रोहि के परिणामस्वरुप हजारों लोगों की जाने गई। समाजवादियों को वर्षो तक सिर उडाने का साहस नहीं हुआ। मजदूरों और पूंजांपतियों के मध्य वर्ग विद्वेष की भावना उत्पन्न हूई। राजतंत्र वादियों ने कम्यून विद्रोह का दमन करने में सफलता पाई परंतु वे गणतंत्रीय शासन को समाप्त करने का साहस नहीं कर सके, क्योंकि कम्यून के प्रति लोगों के मन में सहानूभूति थी। थीयर्स की सरकार यह सोचने लगी कि जनता को संतुष्ट किए बिना फ्रांस में स्थायित्व लाना संभव नहीं है।

थीयर्स की उपलब्धियाँ (1871-1873 ई.)

1871 से 1873 ई. तक थीयर्स ने फ्रांस के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए कार्य किया। 1871 ई. में राष्ट्रीय सभा ने रिपोर्ट अधिनियम बनाकर सरकार के कार्यपालिका प्रमुख को राष्ट्रपति की उपाधि दी तथा उसे समस्त कार्यों के लिए सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया था। इस अधिनियम के द्वारा राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित नहीं किया गया था परंतु उसने राष्ट्र निर्माण के लिए सभी राजनीतिक दलों को एक होकर कार्य करने के लिए कहा।

थीयर्स ने निम्नलिखित प्रमुख कार्य किए–

- **क्षतिपूर्ति की राशि चुकाना** – थीयर्स ने फ्रेंकफर्ट की संधि द्वारा फ्रांस पर लादी गई हर्जाने की राशि चुकाने और फ्रांस की भूमि को जर्मन ससेनाओं से मुक्त कराने का दृढ निश्चय किया। इसके लिए उसने राष्ट्रीय गण किया। सितंबर 1873 ई. में जर्मनी को क्षतिपूर्ति की कीमत चुका दी गई। राष्ट्रीय सभा ने थीयर्स द्वारा संपादित इस महान कार्य के लिए उसे 'राष्ट्र का मुक्तिदाता' की उपाधि दी।

- **स्थानीय शासन में सुधार**– थीयर्स ने स्थानीय शासन में सुधार के लिए स्वायत संस्थाओं का विकास किया। स्वायत शासन के विकेन्द्रीकरण के लिए नगरपालिका विधान बनाया गया।
- **निर्माण कार्य**– थीयर्स ने सरकारी एवं निजी इमारतों एवं किलो की मरम्मत करवाई। जर्मनी की ओर से सुरक्षा के लिए उसने सीमा की नई किलेबन्दी की।
- **सेना का पुनर्गठन**– फ्रांस की रक्षा के लिए थीयर्स के प्रयासों के कारण यह अधिनियम बनाया गया। प्रशा के नमूनों पर सैन्य संग्राम किया गया। सैनिक सेना अनिवार्य बनायी गई। प्रत्येक पुरूष को पाँच वर्ष के लिए सेना के साथ चार वर्ष के लिए रक्षित सेना के साथ सैन्य शक्ति में वृद्धि हुई।

थीयर्स का त्यागपत्र–

थीयर्स ने राष्ट्रीय सभा के सभी दलों का सहयोग प्राप्त कर फ्रांस का पुननिर्माण किया, परंतु गणतंत्रवादी एवं राजतंत्रवादियों के मध्य एकता स्थापित नहीं हो सकी। 1873 ई. का राजतंत्रवादियों ने थीमर्स के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित किया जिसके परिणाम स्वरूप उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। उसकी जगह मार्शल मेकमहां राष्ट्रपति बना।

मार्शल मेकमहां का शासन काल (1873-1879 ई.)

राष्ट्रीय सभा के राजतंत्रवादियों ने मार्शल मेकमहां को राष्ट्रपति निर्वाचित किया। अतः उसने राजसत्तावादियों को मंत्रिमंडल में लिया तथा बोग्ली के ड्यूक को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। मेकमहां ने फ्रांस में राजतंत्र की पुनः स्थापना के लिए शोम्बोर्द के काउंट तथा पेरिस के काउण्ट में समझौता कराने की कोशिश की। यह योजना बनाई गई किं पहले शोम्बोई का काउण्ट राजा बने और उसकी मृत्यु के पश्चात पेरिस का काउण्ट राजा बने परन्तु शोम्बोई का काउण्ट क्रांति के तिरंगे झण्डे के नीचे शासन करना नहीं चाहता था। अतः राजतंत्र की पुनः स्थापना का प्रयास विफल हो गया। इस प्रकार सौभाग्य से ''झण्डे की समस्या ने गणतंत्र की रक्षा की।'' इसी मध्य गणतंत्रवादियों के प्रयत्नो से मेकमहां को राष्ट्रीय सभा कराने के लिए बाध्य होना पड़ा। 1874 ई. में हुए ईस चुनाव में गणतंत्रवादियों को अपार सफलता मिली। गणतंत्रवाद की शासकीय शक्तियों पर विचार व योजना तैयार करने के लिए 30 सदस्यीय उपयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने जनवरी 1875 ई. में अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के आधार पर सरकार ने तीन नियम पारित किए जिन्हें सम्मिलित रूप से 1875 ई. की संविधान कहा गया।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. फ्रांस में तृतीय गणतंत्र की स्थापना कब हुईः

   (क) 1870 ई. (ख) 1873 ई.

   (ग) 1875 ई. (घ) 1818 ई.

2. कम्यून का शासन किस ने चलाः

   (क) फ्रांस (ख) इंग्लैड

   (ग) अमेरिका (घ) तुर्की

3. फ्रेंकफर्ट की संधि–

(क) इंगलैंड तथा फ्रांस	(ख) फ्रांस तथा जर्मनी
(ग) फ्रांस तथा रूस	(घ) फ्रांस तथा आस्ट्रिया

टिप्पणी

1.3 तृतीय गणतंत्र के संविधान का निर्माण (Constitution of the Third Republic)

अब तृतीय गणतंत्र के संविधान का निर्माण किया जाना आरंभ हुआ। 29 मई 1875 ई. के रूप प्रस्ताव द्वारा निश्चित कर दिया गया कि अब फ्रांस में राजतंत्र की स्थापना में की स्थापना होगी। यह प्रस्ताव केवल एक वोट के बहुमत से एक हुआ। इसके उपरांत फ्रांस के लिए एक संविधान गया। जिसके अनुसार–

1. फ्रांस का एक राष्ट्रपति होगा जिसका कार्यकाल सात वर्ष के लिए निश्चित किया गया।
2. उसका निर्वाचन व्यवस्थापिका सभा के दोनों सदन सिनेट और प्रतिनिधी सभा संयुक्त बैठक में सम्मिलित रूप से बहुमत के आधार पर करेंगे।
3. व्यवस्थापिका सभा के दो सदन होंगे – प्रथम सदन चेम्बर ऑफ डैपुटीज और द्वितीय सदन सीनेट कहलाएंगे।
4. प्रथम सदन के सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होगा और द्वितीय सदन के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष प्रणाली से होगा।
5. वोट का अधिकार कम व्यक्तियों को प्रदान किया गया।
6. प्रथम सदन के सदस्यों का निर्वाचन चार वर्ष के लिए और द्वितीय सदन के सदस्यों का निर्वाचन 9 वर्ष के लिए जाने की व्यवस्था की गई।
7. राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की नियुक्ति व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों में से करेगा।
8. वह व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदाई होगा और
9. शासन की वास्तविक सत्ता उसके ही हाथ में निहित होगी।

इस प्रकार फ्रांस का राष्ट्रपति केवल वैंधानिक प्रधान होगा जिस प्रकार वैध शासन वाले राज्य में राजा की स्थिति होती है।

1.4 तृतीय गणतंत्र में सुधार (Reform in Third Republic)

गणतंत्र सरकार ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के उपरांत देश की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया और उसने निम्नलिखित सुधार किए–

1. 1884 ई. में यह विधि निर्मित की गई फ्रांस की व्यवस्थापिका संभाओ में इस विषय का कोई प्रस्ताव पारित नहीं किया जाएगा जिसका अभिप्राय गणतंत्र सरकार का अंत करना होगा।
2. 1881 ई. में नागरिकों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त की गई जिसमें भाषण, लेखन और मुद्रण विशेष प्रसिद्ध है।

3. श्रमिकों विरूद्ध जो नियम फ्रांस में प्रचलित थे उनका अंत कर दिया। उनको अपना संगठन की स्वतंत्रता प्राप्त हुई।
4. शिक्षा की दशा की उन्नती करने के लिए शिक्षण कार्य पादरियो से लिया गया, क्योंकि वे गणतंत्र सरकार ने ऐसी शिक्षण संस्थाए स्थापित कीं जिनका चर्च से कोई संबंध नहीं था बाद में उन शिक्षण संस्थाओं का अंत किया गया जिनका संचालन कट्टर धार्मिक संस्थाएं तथा सभाएं कर रही थीं। शिक्षा 12 वर्ष के बालकों के लिए अनिवार्य घोषित कर दी गई।
5. नगरपालिकाओं को विशेष अधिकार प्रदान किए गए और उनको अपने सभापतियों के निर्वाचन का अधिकार प्राप्त हुआ।
6. परित्याग की प्रथा को पुनः स्थापित किया गया।
7. रेल, तार, सड़को आदि के निर्माण में समस्त फ्रांस की व्यवस्था हो गई।

1.5 गणतंत्र सरकार के प्रमुख संकट (Major Crisis of the Republican Government)

गणतंत्रीय सरकार और चर्च के बीच निरंतर संघर्ष चलते रहे। गणतंत्रवादी चर्च को गणतंत्र का शत्रु मानते थे और यह बात सही भी थी क्योंकि पादरियों ने सदैव राजतंत्रवादियों का साथ दिया और गणतंत्र को समाप्त करने के षड़यंत्र में भाग लिया। गणतंत्रीय सरकार तथा चर्च के संघर्षो की विवेचना निम्न प्रकार से की जा सकती है–

1. गणतंत्र सरकार परंपरागत धार्मिक विश्वासों में विश्वास नहीं करती थी इसी कारण उसे नास्तिक कहा जाता था। अतः चर्च द्वारा उसका विरोध किया जाता था। गणतंत्र सरकार के शक्तिशाली होने पर चर्च की सरकार विरोधी गति विधियाँ बढने लगी अतः सरकार व चर्च का संघर्ष भी बढ़ने लगा।
2. बूलांचे व ड्रेफस कांड में चर्च ने खुलकर राजतंत्रवादियों का समर्थन किया व सरकार विरोधी कार्य किए। राजतंत्रवादियों के समर्थन से चर्च निरंतर शक्तिशाली होते जा रहे थे जो कि गणतंत्रीय सरकार के खतरे की घंटी थी।
3. फ्रांस की शिक्षा चर्च के अधीन थी। गणतंत्रवादियों को डर था कि यदि यही स्थिति रही तो समस्त दान व फ्रांस का राजतंत्र समर्थक बन जाएंगे। इसी कारण गैम्बेटा का कहना था कि – ''यदि भविष्य में फ्रांस विदेशों पर विजय प्राप्त करना चाहता है तो उसे शिक्षा के ढ़ांचे में परिवर्तन करना पडेगा।

गणतंत्रवादी पोप चर्च के बढ़ते हुए प्रभाव से चितिंत थे, सभी गणतंत्रवादी इस बात पर एकमत थे कि चर्च गणतंत्र का शत्रु है। इस विषय में गैम्बेटा का कथन उल्लेखनीय है उसने कहा था – 'चर्च गणतंत्र का शत्रु है।' इसी प्रकार के विचार कोम्ब्रेज ने भी व्यक्त किए। उसके अनुसार, 'पिछले 35 वर्षों में जब भी प्रजातंत्र विरोधी आंदोलन अथवा षडयंत्र हुए उनकी तह में चर्च ही था।' इसी कारण एक समाजवादी नेता जीन जार (Jean Jaures) ने कहा था – 'धार्मिक शक्ति फ्रांस में तभी स्थापित हो सकती है, जबकि राज्य का ढांचा धर्म निरपेक्ष बना दिया जाए।

टिप्पणी

ड्रेफस कांड–

फ्रांस के इतिहास में ड्रेफस कांड का अलग ही महत्व है, ड्रेफस एक यहूदी सैनिक था, जो सेना में कैटटन के पद पर था ड्रेफस पर आरोप लगाया गया कि उसने विदेशी राष्ट्रों को फ्रांस के सेना संबंधी रहस्य बतलाए है और इस कारण उसे बंदी बनाकर डेविल्स द्वीप भेज दिया गया, जबकि बाद में जांच से सिध्द हुआ कि वह निर्दोष था फलस्वरुप सरकार की काफी आलोचना हुई।

बूलॅजिस्ट आंदोलन–

यह आंदोलन जनरल बूलांजे चलाया गया था, इसी कारण इसे बूर्लेजिस्ट आंदोलन कहा जाता है जनरल बूलांजे एक अत्यंत योग्य एवं कुशल सैनिक अधिकारी था जो फ्रांस के लिए अनेक युध्दों में लड़ चुका था । अपनी असाधारण सैनिक प्रतिभा के लिए वह 1882 ईए, में वैदल सैना का अध्यक्ष 1884 ई. में ट्यूनिस की सेना का अध्यक्ष व 1886 ई. में फ्रांस का युध्दमंत्री बन गया। बूलांजे जर्मनी से अपने अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता था, अतः युध्द मंत्री बनने के पश्चात उसने सेना में अनेक सूधार किए तथा सेना को शक्तिशाली बनाया।

बूलांजे आंदोलन के कुछ महत्वपूर्ण परिणाम हुए–

1. फ्रांस में तानाशाही की स्थापना की योजना असफल हो गई।
2. फ्रांस के गणतंत्र पर आया संकट टल गया।
3. राजतंत्रवादी व गणतंत्र विरोधियों की आशाओं पर पानी फिर गया।
4. गणतंत्र की जड़े मजबूत हुई।
5. फ्रांस में आर्थिक सुधार करने की ओर ध्यान दिया गया।
6. फ्रांसीसी सेना में से राजतंत्र समर्थक पदाधिकारियों को निष्कासित कर दिया गया।

पनामा कैनाल कांड–

1888 ई. में फ्रांस की गणतंत्र सरकार की एक अन्य समस्या का सामना करना पड़ा, जिसे पनामा कैनाल कांड के नाम से जाना जाता है। इस लहर को बनाने के लिए **'पनामा कंपनी'** की स्थापना गई थी। 1888 ई. में इस कंपनी का दिवाला निकल गया। इसकी जांच में बड़ी मात्रा में मुद्रा की हेराफेरी का पता लगा। इस हेराफेरी में गणतंत्र सरकार के अनेक मंत्रियों का भी हाथ पाया गया। इससे सरकार की बहुत बदनामी हुई।

1.6 गणतंत्र की विदेश नीति (Republic Foreign Policy)

1870 ई. में जर्मनी के हाथों पराजय के पश्चात फ्रांस के सम्मान को अपार क्षति पहुँची थी। अतः फ्रांस की गणतंत्र सरकार का प्रमुख उद्देश्य फ्रांस के खोए हुए सम्मान हो वापस अर्जित करना था किंतु 1890 ई. तक फ्रांस को इस कार्य में विशेष सफलता न मिली। 1850 ई. में बिस्मार्क को उसके पद से मुक्त कर दिया गया। उसके पश्चात ही फ्रांस को अन्य राष्ट्रों के पाँच मंत्री संबंध स्थापित करने में सफलता मिली।

1. **फ्रांस-रूसी मैत्री संधि – (France-Russian Alliance 1893)**– 31 दिसंबर 1893 को फ्रांस एवं रूस के मध्य द्विवर्गीय संधि हुई/इस संधि का कारण यह था कि दोनों को जर्मनी का भय था और अब जर्मनी ने बाल्कन प्रायद्वीप में आस्ट्रिया का पक्ष खुले तौर पर लेना आरंभ कर दिया था इसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि आक्रमण के समय दोनों यहाँ आने को सहायता करेंगे।
2. **इंग्लैड व फ्रांस का समझौता**– फ्रांस ने इंग्लैड के साथ मित्रता करने का प्रयत्न या इंग्लैडं जर्मनी की बदली हुई शक्ति से आशंकित रहने लगा था और उसने भी अनुभव किया कि उसको किसी यूरोपीय शक्ति से मित्रता करनी आवश्यक है। फ्रांस और इंग्लैंड ने अपने पारंपारिक झगड़े का अंत कर आपस में एक संधि की, जिसको आंता कोर्डियल कहते है। 1907 ई. में रूस भी इसमें सम्मिलित हो गया इस प्रकार त्रिगुट मैत्री कहते है।
3. **मोरक्को संकट**– मोरक्को के प्रश्न पर यूरोप के विभिन्न गुटों में संघर्ष होने की संभावना उत्पन्न हो गई थी किंतु आपसी समझौते द्वारा इस संकट का निर्णय कर लिया गया। इस प्रकार सतत प्रयत्न करने के पश्चात फ्रांस ने अंतर्राष्ट्रीय जगत में अपनी खोई हुई शक्ति तथा प्रतिष्ठा प्रांप्त की और उसकी गणना यूरोप के महान राष्ट्रो में पुनः होने लगी।

निष्कर्ष– 1871 ई. में फ्रांस में तृतीय गणराज्य की स्थापना हुई थी तृतीय गणतंत्र को प्रारंभ में निरंतर समस्याओं का सामना करना पड़ा। तृतीय गणतंत्र ने सफलतापूर्वक इन समस्याओं का सामना किया व फ्रांस में गणतंत्र को शक्तिशाली बनाया। तृतीय गणतंत्र ने फ्रांस की खोई हुई प्रतिष्ठा को भी प्राप्त करने का प्रयास किया। फ्रांस ने अनेक राष्ट्रो से मैत्री स्थापित कर पुनः अंतराष्ट्रीय स्तर पर सम्मान प्राप्त किया। इस प्रकार तृतीय गणतंत्र ने गृह एंव विदेश दोनों ही क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त कीं।

1.7 बिस्मार्क की गृह एवं विदेश नीति (Home and Foreign Policy of Bismarck)

भूमिका–

1850 ई. में इरफर्ट संसद भंग हो गई। इरफर्ट संसद के भंग हो जाने से फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को काफी दुख हुआ 1857 में उसका दिमाग खराब हो गया और इसी पागलपन की अवस्था में 1861 में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की मृत्यु हो गई।

अतः 1860 ई. के आते-आते ऐसा प्रतीत होने लगा कि जर्मन राज्य एकीकरण के नजदीक पहुँचता जा रहा है। अभी तक एकीकरण का यह आंदोलन इसीलिए असफल रहा था, क्योंकि प्रजा के राजा तथा उसके मंत्री साहसी नहीं थे। तथा आस्ट्रिया से डरते थे लेकिन 1861 में स्थिति एकदम बदल गई। 1861 ई. में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की मृत्यु हो गई तथा कैसर विलियम प्रथम प्रशा की गद्दी पर बैठा। कैसर विलियम प्रथम योग्य स्थिर बुद्धि और महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसे विश्वास था कि प्रशा के नेतृत्व में ही जर्मनी एकीकृत हो सकता है। 1862 ई. में उसने महान कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क को अपना प्रधानमंत्री बनाया। जर्मनी के एकीकरण के लिए ऐसी ही व्यक्ति की आवश्यकता थी।

कैसर विलियम प्रथम (1857-88)

विलियम प्रथम 1861 ई. मे प्रशा का सम्राट बना। उस समय उसकी अवस्था 64 वर्ष की थी लेकिन उसमें युवकों के सदृश जोश था, उसका सारा जीवन सेना में व्यतीत हुआ था जिसके साथ उसे बड़ा प्रेम था। सैनिक मामलों में उसके पूर्ण नाम एवं योग्यता को सभी स्वीकार करते थे। उसका विश्वास था कि प्रजा का भाग्य निर्माण सेना पर आधारित है और जर्मनी का एकीकरण प्रजा द्वारा संपादित हो सकता है। वह कहा करता था कि, ''**जो जर्मनी पर राज्य करना चाहता है उसे सेना पर विजय करनी होगी यह बातों से नही हो सकती इसके लिए कडिन परिश्रम करना होगा।''**

कैसर विलियम प्रथम की स्पष्ट नीति थी कि प्रशा की गृह नीति–

1. एक शक्तिशाली राज्य बनाया जाए इसके लिए उसने देश में शिक्षा को अनिवार्य कर दिया इसके लिये शिक्षण संस्थाओंकी स्थापना की।
2. उसने प्रशा की सैनिक शक्ति को मजबूत करने का प्रयत्न किया उसके सैनिक शक्ति को दुगुना कर दिया।
3. उसका विचार था कि प्रशा की सैनिक शक्ति को मजबूत होगी तो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रशा की साख जम जाएगी।
4. उसने शांतिकाल में प्रशा की सेना दो लाख तथा युध्द काल में साढे चार लाख रखने की योजना बनाई। अपनी इस इच्छा की पूर्वी हेतू उसने रुन (Roon) को अपना युध्द मंत्री तथा मोल्टके (Moletke) को प्रधान सेनापति बनाया।
5. प्रशा में 49 नई रेजीमेंटो का संगठन किया गया तथा 20 वर्ष प्रत्येक युवक से 3 वर्ष की सैनिक सेवा ली जाए। इसका अर्थ था कि प्रतिवर्ष 40 हजार की जगह 63 हजार सैनिक भर्ती होगें।

1871 ई. के बाद लगभग 20 वर्ष तक विलियम प्रथम सम्राट रहा बिस्मार्क उसका प्रधानमंत्री रहा। इस पूरे कार्यकाल में गृहनीति के क्षेत्र में बिस्मार्क की ही प्रमुख भूमिका थी। अतः बिस्मार्क की जो गृहनीति थी वही विलियम प्रथम की गृहनीति थी।

कैसर विलियम प्रथम की विदेश नीति–

विलियम प्रथम की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्यः

1. प्रथम फ्रांस को अलग थलग करना था।
2. अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का लाभ उठानाा।
3. ब्रिटेन तथा फ्रांस की मित्रता को रोकना।
4. रुस को अपने पक्ष में बनाए रखना।

कैसर विलियम प्रथम के समय में अनेक देशों से संधियाँ तथा समझौते किए गए – जिनमें जिसम्राट संघ, बर्लिन संधि (1878), जर्मन आस्ट्रिया (1879), पाहणे संधिष जिराल्इ संश्रय (1882), नवीन जिराल्इ संघ (1872) आदि। इन संधियों में बिस्मार्क की अहम भूमिका थी।

''बिस्मार्क''

बिस्मार्क का जन्म 1 अप्रैल 1815 ई. को ब्रेण्डनबडी के एक सामंत परिवार में हुआ था। बिस्मार्क ने बर्लिन की व्यायाम कर ली। उसके राजनीतिक जीवन की शुरूवात 1845 ई. में हुई जब वह पैमोरेनियां की प्रांतीय संसद का सदस्य बना। संसद के प्रतिनिधि के रूप में वह प्रशा की संसद में कथा फेंकफर्ट ही संधीय संसद का सदस्य रहा। वहाँ पर वह 1857 ई. से 1859 ई. तक रहा। 1859 ई. में वह रूस का राजदूत नियुक्त किया गया। इन राजनीतिक तथा कुटनीतीक कार्यो में उसने ख्याति प्राप्त कर ली थी। इस कारण जर्मनी के सम्राट विलियम ने उसे अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क का महान योगदान था।

बिस्मार्क की गृहनीति (1871-1890 ई.)

(Internal Party of Bismark)

बिस्मार्क को अपनी गृह नीति के अंतर्गत अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा जिसका उसने कुशलतापूर्वक निराकरण किया। उसने गृह नीति के अंतर्गत निम्नलिखित कार्य किए।

(i) नए संविधान का निर्माण–

(ii) चांसलर बनने के पश्चात प्रमुख कठिनाईयाँ।

(iii) कल्चर कैम्प सभ्यता की रक्षा के लिए संघर्ष।

(iv) बिस्मार्क और समाजवाद

(v) आर्थिक नीति।

नए संविधान का निर्माण–

जर्मन साम्राज्य के लिए एक संविधान का निर्माण किया गया। इस संविधान को संघात्मक संविधान की संज्ञा प्रदान की सकती है, यह 25 छोटे बड़े राज्यों तथा इम्पीरियल प्रदेश अल्सास एवं लॉरेन का सम्मिलित संघ राज्य था, इस नवीन संविधान के अनुसार इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्मलिखित है–

(1) साम्राज्य का प्रमुख सदैव प्रशा का **सम्राट** होगा। वह इस संघ का अध्यक्ष रहेगा। शासन की समस्त सत्ता राज्यों की समष्टि में निहित थी जो उसका प्रयोग विधान सभा के द्वितीय सदन साम्राज्य परिषद में अपने प्रतिनिधियों द्वारा करते थे। सम्राट के कार्यों में विदेशी मामलों का निर्णय, विदेशी राजदूतों का स्वागत, युध्दों की घोषणा एवं युद्ध बंद करना आदि प्रमुख थे।

(2) प्रधानमंत्री (चांसलर)– संविधान के अंतर्गत एक प्रधानमंत्री की व्यवस्था की गई थी। जिसे जर्मनी में चांसलर कहा जाता था। चांसलर सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता था उसे सम्राट की पदच्युत कर सकता था। चांसलर की सहायता हेतू सचिव होते थे। प्रजा का प्रतिनिधि होने के कारण उसे उच्च सदन का चैयरमैन होने, दोनों सदनों में भाषण देने, बैठकें मतदान करने जैसे विशेषाधिकार प्राप्त थे। 1870 से 1890 ई. तक बिस्मार्क प्रशा का चांसलर रहा।

(3) व्यवस्थापिका सभा– इसके दो सदन थे – प्रथम साम्राज्य परिषद (बुन्देसराट) द्वितीय लोकसभा अथवा रीखस्टाग?

टिप्पणी

साम्राज्य परिषद– संपूर्ण साम्राज्य 25 राजाओं का प्रतिनिधित्व करना वाला वह उच्च सदन कहलाता था। प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार होती थी – प्रशा के 17, बबेरिया के 6, सक्समी के 4, बटेनबर्ग के 4, बाडेन के 3, हेस के 3 तथा अन्य छोटे छोटे राज्यों का एक-एक प्रतिनिधि था। इस सदन के अधिवेशन गुप्त एवं प्रतिनिधियों के मतदान सम्राट की इच्छानुसार होते थे। इस सभा को –

(i) संविधान संशोधन करने, संघ के बजट को निश्चित करने।

(ii) ऑडिट करने, विभिन्न राज्यों की चुगियाँ एकत्र करने।

(iii) केन्द्र एवं संघ सरकारों के विवादों का निर्णय करने का अधिकार प्राप्त थे।

लोकसभा– निम्न सदन अथवा जनता की प्रतिनिधि सभा मैं 397 सदस्य थे जिनका निर्वाचन 25 वर्ष या इससे अधिक वर्ष की आयु वाले व्यक्ति गुप्त मतदान द्वारा 5 वर्ष के लिए करने थे। बजट पर विचार विमर्श, लोकसभा में होता था। सेना संबंधी बजट की स्वीकृति एक बार में ही कई वर्षों के लिए ले ली जाती थी जिससे प्रतिवर्ष अनुमति की आवश्यकता चलीं होती थी। नए कानून के निर्माण में कुछ अधिकार रखने वाली लोकसभा व्यवहारिक रूप सें केवल एक परामर्शदात्री सभा थी। वास्तविक सभा तो साम्राज्य परिषद या प्रजा के सम्राट में निहित थी।

(4) **न्यायपालिका**– साम्राज्य की प्रधान न्यायपालिका संघीय सर्वोच्च न्यायपालिका या सुप्रीम कोर्ट थी। राज्यों की अपील एवं देशद्रोह के मुकदमें सुप्रीम कोर्ट में जाते थे परंतु सच्चे अर्थों में यह न तो संघीय न्यायालय था ही इसे कानूनों की व्यवस्था करने का अधिकार प्राप्त था।

चांसलर बनने के पश्चात बिस्मार्क की प्रमुख कठिनाईयाँ–

(Main Problems Before Bismark)

जर्मनी के एकीकरण के पश्चात बिस्मार्क की कठिनाईयों का अंत नहीं हुआ। उसके सामने निम्नलिखित कठिनाइयाँ थी–

1. **फ्रांस से भय**– 1870 ई. के सेडोवा के युद्ध में फ्रांस को पराजित करने के पश्चात भी बिस्मार्क भयभीत था कि फ्रांस अवसर पाकर जर्मनी से प्रतिशोधात्मक युद्ध कर सकता था इसिलिए बिस्मार्क ने समस्या के समाधान के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य किए:

   (i) फ्रांस को राजनितिक कमजोर करने हेतु अन्य देशों के साथ गुप्त संधियाँ करना।

   (ii) सैनिक शक्ति की ओर ध्यान देते हुए राज्यों में सैन्य शक्ति की अनिवार्यता।

   (iii) जर्मन साम्राज्य की निर्भरता सेना पर देखते हुए बिस्मार्क ने युद्ध का भय दिखाकर सैनिक बजट 7 वर्षों के लिए निश्चित करा लिया।

2. **अल्पसंख्यक जातियों के विरोध की समस्या**– जर्मन साम्राज्य की सीमा पर ऐसे विजित लोग थे जो जर्मन शासन से घृणा करते थे। बिस्मार्क ने जर्मनीकरण की नीति का अनुसरण करते हुए उन्हें जर्मन व्यवस्था का समर्थक बनाने का संभव प्रयास किया। ऐसे अजर्मन लोगो में 50 लाख पोल 1.5 लाख डेन तथा श्लेसविग 20 लाख आल्सेस तथा लारेन के फ्रांसीसी थे।

उपरोक्त समस्याओं के निराकरण हेतू बिस्मार्क ने निम्नलिखित उपायों द्वारा केन्द्रीय शासन की शक्ति को प्रधानता स्थापित की–

टिप्पणी

(i) **इम्पीरियल संस्थाओं की स्थापना**– बिस्मार्क ने जर्मन साम्राज्य में सम्मिलित समस्त राज्यों की प्रथम संस्थाओं का अंत करके उनके स्थान पर इम्पीरियल संस्थाओं का निर्माण करना आरंभ किया।

(ii) **समान विधियों को कार्यान्वित करना**– जर्मनी के विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार की विधियाँ कार्यान्वित थी। बिस्मार्क ने समस्त जर्मन साम्राज्य के लिए एक **फौजदरी** विधि का निर्माण किया।

(iii) जर्मनी का कैथोलिक दल एक शक्तिशाली राष्ट्र विरोधी संस्था होने के कारण राज्येत्तर सत्ता अर्थात पोप से आदेश ग्रहण करता था।

3. **राष्ट्रीय न्यायालयों की स्थापना**– बिस्मार्क ने संपूर्ण साम्राज्य के लिए राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना की।

4. **समान मुद्रा पध्दति की स्थापना**– बिस्मार्क में 1873 ई. में एक विधि द्वारा समाप्त जर्मन साम्राज्य में एक समान मुद्रा पध्दति को लागू किया। उसने मार्क का प्रचलन किया। नए मार्क के लिखने पर जर्मन सम्राट विलियम प्रथम की तस्वीर अंकित की गई।

5. **इम्पीरियल बैंक की स्थापना**– 1876 ई. में उसने यह इम्पीरियन बैंक की स्थापना की और साम्राज्य के अंतर्गत बैंको का उसने संबंध स्थापित किया।

6. **रेल, तार और टेलीफोन पर केंन्द्रीय सरकार का नियंत्रण** – रेल, तार और टेलीफोन केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत कर दिया।

कुल्चुर कैम्फ या सभ्यता की रक्षा के लिए संघर्ष (1871 ई. से 1857 ई. तक) (KULTUR KAMPF)

जर्मन साम्राज्य के शत्रुओं में कैथोलिक चर्च के अनुयायी तथा समाजवादी ही प्रधानतः सवौचरि थे। बिस्मार्क द्वारा रोमन कैथालिक चर्च के विरूद्ध की गई कार्यवाही को कुल्चुर कैम्फ अथवा सभ्यता के लिए संघर्ष कहा जाता है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ''वरिकाओं'' (Vichaw) नामक एक उग्रवादी नेता ने किया था।

बिस्मार्क के कैथोलिक विरोधी होने के कारण–

बिस्मार्क के कैथोलिक विरोधी होने के निम्नलिखित कारण थे।–

(1) प्रोटेस्टेक्ट देश होने के कारण बिस्मार्क कैथोलिक को पसंद नहीं करता था।

(2) प्रशा– आस्ट्रिया संघर्ष में पोप तथा कैथोलिक ने आस्ट्रिया का साथ देते हुए खुलकर यह इच्छा व्यक्त की थी कि आस्ट्रिया के हैप्सवर्ग परिवार की विजय हो।

(3) जर्मनी में स्थित कैथोलिक के माध्यम से पोप जर्मनी के राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था।

टिप्पणी

इस संघर्ष के संबंध में राबर्टसन लिखता है – ''यह उन दो सिद्धांतों का संघर्ष था, जिसने जर्मनी को एक घरेलू युद्ध में ढकेल दिया।''

कैथोलिक चर्च के दमन हेतू बिस्मार्क द्वारा किए गए कार्य एवं समझौता–

हेजन के शब्दों में –''इस दीर्घकालीन धार्मिक संघर्ष का एक स्थायी परिणाम यह कि सेटर अथवा कैथोलिक दल राजनैतिक दृष्टिकोण से पहले की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो गया।''

1. सर्वप्रथम बिस्मार्क ने केन्द्रीय संसद से कैथोलिक पादरियों के शिक्षा संबंधी अधिकार समाप्त कर दिए।
2. 1872 ई. में लोकसभा में कानून बनाकर जेसुरशें को जर्मनी से निष्कासित कर दिया। इसके अतिरिक्त लोकसभा में कैथोलिक दल को साम्राज्य का शत्रु घोषित किया।
3. अडालबर्ट फाक (Adalbart falk) को प्रशा का शिक्षा मंत्री नियुक्त किया गया। फाक ने 1873 ई. से 1875 ई. के बीच कैथोलिकों के विरूद्ध अनेक कानून पास किए जो मई कानून था फाक कानून कहलाएं। इन कानूनों के द्वारा कैथोलिकों पर निम्नलिखित प्रतिबंध बनाए गए –
   (i) समाप्त कैथोलिक पादरियों के लिए जर्मनी के सार्वजनिक विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करना तथा जर्मन नागरिक होना अनिवार्य कर दिया गया।
   (ii) रोमन कैथोनिक चर्च द्वारा संचालित सूल्त राज्य के नियंत्रण में कर दिए गए।
   (iii) पादरी जीवन का निर्माण करने वाले स्कूल बंद कर दिए गए।
   (iv) पादरियों के धर्म बहिष्कार एवं धार्मिक दंड देने के अधिकार समाप्त करके उनके लिए सिविल मैरिज अनिवार्य हो गई।
   (v) चर्च के पदाधिकारियों की नियुक्ति एवं पदच्युति संबंधी अधिकार राज्य को प्रदान कर दिए गए।
   (vi) 1875 ई. में बिस्मार्क द्वारा सभी यहाँ का कर दिया गया।

मई कानून के विरोध में पोप की घोषणा– पोप पायस नवम में मई कानूनों को अमान्य घोषित करते हुए सभी जर्मन कैथोलिकों को यह आदेश दिया कि वे इन नियमों को मानने से इंकार दें। बिस्मार्क ने इसे अपनी अपमानता समझते हुए घोषणा की कि, ''*I will not go canossa either in body or in spirit'' (हम शरीर अथवा मन से कैनोया नहीं जाएंगे), किंतु कैथोलको ने पोप के आदेशानुसार कानूनों का उल्लंघन किया अतः बिस्मार्क ने कठोर दंड नीति का अनुसरण करते हुए पादरियों को बंदीगृह में डाल दिया तथा उन्हें धार्मिक पदों से पदच्युत कर दिया। सरकार और चर्च का यह संघर्ष देशव्यापी हो गया तथा अनेक नगर, ग्राम एवं विश्वविद्यालय इस संघर्ष के केन्द्र बन गए।

1875 ई. में पोप पायस नवम की मृत्यु के पश्चात लियो त्रयोदेश नया पोप बना। यह अधिक उदार होने के साथ-साथ अधिक कूटनीतिज्ञ निपूण एवं मध्यममार्गी था। 1520 ई. में बिस्मार्क तथा पोप लियो त्रयोदेश के बीच इस समझौते से जर्मनी एवं पोप

राज्य के मध्य पुनः राजनीतिक संबंध स्थापित हो गया। बिस्मार्क ने कानूनों को रद्द करता हुए कैथोलिको के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया।

समझौताः— दो प्रमुख समझौते हुए—

1. इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी मुक्त व्यापार की नीति वाले देश थे परंतु 1879 ई. के लगभग बिस्मार्क ने इस नीति का परित्याग करते हुए विदेशी अनाज एवं अन्य वस्तुओं पर शुल्क लगा दिया। इस नीति से कृषक वर्ग लाभांवित हुआ परंतु उद्योगपतियों को हानि हुई। फुलस्वरूप समाजवादी प्रजातंत्रवादीयों के संगठन को शक्ति प्राप्त हुई। ऐसी परिस्थिती में बिस्मार्क ने कैथोलिको के सन्मुख झुककर उनका समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया।
2. सोशल डेमोक्रेटिक दल जर्मनी के राजनीतिक दलों में सर्व शक्तिमान था। राजतंत्र के विरोधी होने के कारण ये जर्मन साम्राज्य के शत्रु के रूप में सामने आ रहे थे अतः बिस्मार्क के लिए समाजवादियों से संघर्ष कैथोलिको से संघर्ष की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण या वेन्स के अनुसार – ''बिस्मार्क के कुल्चुर कैम्प संघर्ष का कदाचित सबसे प्रमुख परिणाम एक शक्तिशाली सेंटरपार्टी का गठन था।''

बिस्मार्क और समाजवादः—

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप दो वर्गों का उदय हुआ पूंजीपति वर्ग एवं मजदूर वर्ग। इन दोनों वर्गों में पूंजीपति वर्ग की स्थिति अत्यंत सुदृढ तथा मजदूर वर्ग की स्थिति पैसे के लिए अपने भय का विक्रय करने के कारण अत्यंत शोच एवं गोपनीय थी। मजदूर वर्ग की शोचनीय स्थिति से प्रवित होकर कुछ लोग समाजवादी दल के रूप में संगठित हुए।

समाजवाद के प्रमुख तीन सिद्धांत थेः—

1. समाजवाद अर्थिक व्यक्तिवाद के विरुद्ध है।
2. समाजवाद आभिक वर्ग तथा बेकसूर मजदूरों की आवाज है।
3. समाजवाद धन के वितरण के संबंध में न्याय चाहता है।

1878 ई. के उपरांत बिस्मार्क हा ध्यान समाजवादियों की ओर आकर्षित हुआ। जर्मनी में समाजवाद का जन्म दाता कार्ल मार्क्स था किन्तु जर्मनी में आधुनिक समाजवाद तथा धार्मिक आंदोलन का नेता फर्डिनेन्ड लासाल था। कार्ल मार्क्स और लासाल में सिद्धांतों के प्रति पर्याप्त विभिन्नताएं विद्यमान थीं। जिसके कारण आरंभ में जर्मनी में समाजवाद को विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई, किन्तु 1875 ई. में दोनों में पारस्परिक समझौते होने के कारण समाजवाद को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उन्होंने सामाजिक प्रजातांत्रिक दल की स्थापना की। बिस्मार्क प्रजातंत्र से घृणा करता था तथा संविधान को 'एक कागज का टुकड़ा' कहता था जर्मनी के आर्थिक विकास के लिए अपनाई गई नीति को लेकर भी बिस्मार्क के समाजवादियों से मतभेद थे। बिस्मार्क ने समाजवादियों के दमन के लिए अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार समाजवादियों की सभा करना निश्चित कर दिया। उनके छापखानों तथा समाचारपत्रों पर राज्य का नियंत्रण स्थापित हुआ। सैनिक नियम (Martial Law) लागू किए जाते थे समाजवादियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लग गया। अब वे स्वतंत्रता के अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायालयों का संरक्षण प्राप्त नहीं कर सकते थे। 1878 ई. में पारित यह

अधिनियम चार वर्ष की अवधि के लिए सीमित यह परते कि बिस्मार्क ने 1882 ई. एवं 1886 ई. में समाजवादियों के विरूद्ध बनाए गए कानूनों का नवीनीकरण किया।

टिप्पणी

1890 ई. से तक इन कानूनो को बिस्मार्क ने कठोरता पूर्वक लागू किया। लगभग 1500 समाजवादियों को बंदीगृह में डाल दिया गया और 900 को देश से निध ाारित कर दिया गया। उनके 1400 प्रकाशनों को जप्त कर लिया गया। बिस्मार्क के एक जीवनी लेखक ने इन नियमों ही आलोचना करते हुए लिखा था– ''अब हम सरकार को वे पुराने ढंग अपनाते हुए देखते है जिन्हे कि मेटरनिख ने 50 वर्ष पूर्व लागू किया था।''

परिणाम– समाजवादियों के प्रभाव को नष्ट करने के लिए निर्मित बिस्मार्क की कठोर दमनकारी नीति के परिणाम निराशाजनक ही रहे। अब समाजवादी अपने कार्य युक्त रुप से क्रियान्वित करने लगें। ट्रेड यूनियनों के अवैध घोषित किए जाने के बाद भी श्रमिक संघ (workingmen's Associations) ही गतिविधियों उसी प्रकार गुप्त रूप से संचालित होती रहीं। लोकसभा में भी श्रमिकों की संख्या बदली गई यह संलग्न तालिका स्पष्ट है–

वर्ष	समाजवादियों की संख्या
1881	12
1864	14
1890	35
1912	110

समाजवादियों की सफलता के कारण ही समाजवाद के इतिहास में यह काल हीर युग (Heroic Age) के नाम से जाना जाता है।

''बिस्मार्क का राज्य समाजवाद'' (State Socialism of Bismark)

प्रो. हेज के अनुसार– ''बिस्मार्क यूरोप में राजनीतिज्ञों और शासकों में श्रमिकों के हित के लिए कार्य करने वालों में अग्रणी था उसका उद्देश्य दोहरा था वह श्रमिकों की शिकायतें समाप्त करके समाजवादियों की शक्ति को निर्बल करना चाहता था दूसरे, वह स्वयं एक शक्तिशाली सेना का निर्माण करना चाहता था और इसके लिए यह आवश्यक था कि श्रमिकों की दया में सुधार किया जाए।'' बिस्मार्क ने अपनी इस नीति को राज्य समाजवाद (State Socialism) का नाम दिया। राज्य समाजवाद के नाम से बिस्मार्क ने श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए निम्नलिखित कार्य किए –

1. 1881 ई. में बिस्मार्क ने लोकसभा के समक्ष राजा के कर्तव्य संबंधी एक नए सिद्धांत की घोषणा की। इस घोषणा से पूर्व कानून यह व्यवस्था बनाए रखना ही राजा के कर्तव्य थे परंतु अब इस घोषणा के बाद मजदूरों की दशा में सुधार सामाजिक बुराइयों का निराकरण तथा निर्बल जनता का कल्याण करना राजा का नैतिक कर्तव्य हो गया।
2. 1883 ई. में बिस्मार्क ने रोग बीमा अधिनियम (Sickness Insurance Laws) पास करवाया। इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक श्रमिक को अनिवार्य रूप से बीमारी के विरूद्ध बीमा करना पड़ता था जिससे बीमार अवस्था में श्रमिक को उसकी

दैनिक मजदूरी का 1/2 या 3/4 भाग मिलता था समाजवादी नेता बेवल ने इस अधिनियम का विरोध किया।

3. 1884 ई. में दुर्घटना बीमा अधिनियम (Accident Insurance Laws) पास किया गया। इस अधिनियम के अनुसार मजदूरों के दुर्घटना मुफ्त हो जाने पर उनकी सहायता के लिए निश्चित धनराशि दी जाती थी।

4. 1887 ई. में श्रमिकों के कार्य करने की अवधि निश्चित की गई। रविवार का दिन अवकाश का घोषित किया गया। बच्चों तथा महिलाओं की नियुक्ति पर नियंत्रण लगा दिया गया।

5. 1889 ई. में पारित वृद्धावस्था बीमा अधिनियम (Old Age Insurance Laws) के अनुसार 60 वर्ष से अधिक आय के अभिकों का बीमा करके उनके जीवन शासन की समस्या का समाधान किया गया।

बिस्मार्क की आर्थिक नीति (संरक्षण की नीति) (Economic Policy of Bismark)

जर्मनी के एकीकरण के पश्चात बिस्मार्क ने जर्मन साम्राज्य के संगठन तथा उसकी वित्तीय स्थिति में सुदृढता लाने के लिए अनेक कार्य किए –

1. बिस्मार्क कृषि उत्पादन में वृद्धि करना चाहता था जिससे जर्मनी सदस्यों में आत्म निर्भर हो सके इसके लिए उसने कृषि उत्पादनों को संरक्षण प्रदान किया।

2. जर्मनी के इकीकरण के पश्चात जर्मनी के औद्योगिक विकास की गति तीव्र हुई। अल्सास और लारेन लोगों की अंरीत से जर्मनी को प्रखर मात्रा में लोहा और कोयला प्राप्त हुआ। इसके कारण जर्मनी में बड़े उद्योगों की स्थापना में मदद मिली। औद्योगिक उत्पादनों की स्वयत के लिए बिस्मार्क ने संरक्षण नीति अपनाई।

3. औद्योगिक विकास के साथ साथ जर्मनी के व्यापार एवं वाणिज्य का भी विकास हुआ। जर्मनी के व्यापारी जल बेड़े को इतना शक्तिशाली बनाया गया कि कोई देश उसे आसानी से चुनौती न दे सके। जहाजों के निर्माण के लिए कारखानों की स्थापना की गई। इन प्रयासो के कारण जर्मनी में उत्पादित वस्तुएं विश्व के सभी क्षेत्रों में मिलना प्रारंभ हो गई।

4. जर्मन साम्राज्य में वित्तीय एकरूपता लाने के लिए बिस्मार्क ने साम्राज्यीय बैंक की स्थापना की तथा समस्त साम्राज्य के लिए मार्क नाम सिक्का चलाया।

बिस्मार्क की गृह नीति की समीक्षा –

बिस्मार्क की नीति का प्रमुख उद्देश्य जर्मनी को शक्तिशाली बनाता था। एकीकरण के पश्चात से अपने पतन के समय तक बिस्मार्क ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निरंकश की भाँति कार्य किया। उसकी धारणा थी कि कुशल राजतंत्रीय प्रणाली पर आधारित शासन के द्वारा ही जर्मनी की प्रगति हो सकती है अतः उसने लोकतंत्रीय व्यवस्थाओं की उपेक्षा की। संसदीय संस्थाओं पर उसने पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया। जर्मनी के जिन राजनितिक दलों में बिस्मार्क की नीतियों का विरोध किया उन्हें उसने साम्राज्य का शत्रु घोषित किया गृह दोष में उसे जिन महत्वपूर्ण समस्याओं का सामना करना पडा उनको हल करने में वह सफल नहीं हुआ कैथोलिकों के साथ संघर्ष में उसे झुकना

पड़ा। समाजवादियों के दमन के लिए उसके सभी प्रयास निरर्थक सिद्ध हुए। उसका राज्य समाजवाद भी अभिकों को समाजवादियों के प्रभाव से अलग नहीं कर सका। जर्मन साम्राज्य में रहने वाली अजर्मन जातियाँ उसकी नीतियों से सदैव असंतुष्ट रही। कृषि एवं उद्योंगों के क्षेत्र में उसकी संरक्षण नीति अवश्य लाभदायक थी जर्मनी को आत्मनिर्भर बनाने में इस नीति ने महत्वपूर्ण योगदान दिया श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की उसकी बीमा योजनाएं युरोप के सुधारों के लिए मार्गदर्शक बनीं।

बिसमार्क की विदेशनीतिः

(Foreign perity of Bismark)

बिसमार्क की विदेशीनीति बिस्मार्क की विदेशी नीति का स्वरूप स्वयं उसके शब्दों से स्पष्ट से सम्राट होता है। नवीन जर्मन साम्राज्य के चांसलर के पद से उसने कहा था। **"जर्मनी पूर्ण रूपसे एक संतुष्ट राष्ट्र है यद्यपि युध्द के द्वारा जर्मनी को राष्ट्रीय एकता और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रधानता मिली है परन्तू जर्मनी पुनः युध्द का मार्ग ग्रहण करेगा तो सारी सफलताएं नष्ट हो जाएंगी"**

उद्देशः—

1. **सीमा विस्तार का परित्याग—** 1870 ई. तक बिस्मार्क ने जर्मनी का एकीकरण कर दिया। इसके लिए इसनें अनेक राज्यों को प्रजा में मिलाना पडा।
2. **यथास्थिति बनाये रखना—** उसने यूरोप में यथा स्थिति बनाए रखने का सिध्दांत अपनाया। दूसरे शब्दो में, वह युध्द के स्थान पर शांति का पक्षपाती हो गया।
3. **स्थानीय हित—** इसी प्रकार उसकी कूटनीति के उद्देश्य स्थानीय थें वह जर्मनी को लैंड रूट के नाम से पुकारना था। उसमे अपने देश की सामूहिक शक्ति के विकास के लिए भी कही प्रयन्त नही किया। उसने कभी भी जहाजी बेडे का संग्रहन नही किया।
4. **फ्रांस की एकाकीता—** विस्मार्क ने फ्रांस को पराजित करके उससे अल्सेस और लॉरेन के प्रदेश छीन लिए थे। ये प्रदेश अपनी खानों एवं कारखानों के प्रसिध्द थे।
5. **रूस की और विशेष ध्यान—** यूरोप में रूस एक ऐसा देश था जो थोडी सी सावधानी से जर्मनी का साथ छोडकर फ्रांस के साथ मिल सकता था। इसलिए बिस्मार्क ने रूस को अपना मित्र बनाए रखने का निरंतर प्रयास किया। रूस बिस्मार्क को विदेशनीति की धुरी थी ।
6. **आस्ट्रिया के साथ घनिष्ठता—** संडोवा के युध्द के पश्चात ही बिस्मार्क आस्ट्रिया को अपना मित्र बनाने का प्रयत्न किया। इस कार्य में महान सफलता मिली । 1879 ई. स. 1914 ई. यह आस्ट्रिया जर्मनी का सबसे घनिष्ठ मित्र बना रहा।
7. **इंग्लैंड से सद्भाव —** इंग्लैंड बडी सुगमता से फ्रांस का साथ दे सकता था अतः फ्रांस की एकाकीता को कायम रखने के लिए इंग्लैंड के साथ अपने संबंध सदैव अच्छे रखें।

8. **इटली के प्रति अविश्वास**– बिस्मार्क जानता था कि इटली जन धन और साधन की दृष्टि से छोटा सा देश है, परंतु वह है बडा महत्वाकांक्षी । वह अपने उद्देश्य की पूर्ति शक्ति से नही डर सकता । अतः वह उसकी पूर्ति कूटनीति से करेगा।

9. **पूर्वी समस्या के प्रति उदासीनता**– बिस्मार्क पूर्वी समस्या को व्यर्थ की समस्या समझता था वह कहा करता था कि, कुसलुनलुनियां से जाने वाली डाक को में खोलता ही नहीं। वह जब तक शासन में रहा तब तक उसनें पूर्वी समस्या में विशेष रूचि नही दिखाई।

उक्त उद्देश्यों या सिध्दांतों के आधार पर बिस्मार्क ने युरोप के विभिन्न देशों के साथ संधि की तथा राजनीतिक संबंध स्थापित किया वैदेशिक क्षेत्र में उसकी उपलब्धियाँ इस प्रकार थी।

1. **त्रिसम्राट संघ**– 1873 ई. में आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस जोजक और रूस का आर आर अलेक्डांडर द्वितीय बर्लिन में सम्राट बिलियम से भेंट करने आऐ थे तो. बिस्मार्क ने तीन सम्राट का संघ का निर्माण किया था। इस समझौते के अंतर्गत यह निश्चित किया गया की तीनों देश युरोपीय महाद्वीप में शांति स्थापित करने के लिए मिलकर कार्य करने तथा युध्द की स्थिती उत्पन्न होने पर परस्परिक हिंतों के लिए आपस में विचार विमर्श करेंगे। यह संघ तब 1877 तक चलता रहा।

2. **द्विराज्य संघ**– 1879 ई. में जर्मनी ने और आस्ट्रिया के मध्य निश्चित किया गया कि यदि रूस अथवा फ्रांस में से कोई देश जर्मनी अथवा आस्ट्रिया पर आक्रमण करें तो दोनों परस्पर एक दुसरे की सहायता करेंगे। यह बिस्मार्क की महान सफलता थी। **क्योंकी** इस संधि के फलस्वरूप जर्मनी को रूस के आक्रमण के विरूध्द आस्ट्रिया की सैनिक सहायता का आश्वासन प्राप्त हो गया था ।

3. **त्रिराज्य संधि**– इस संधि यह निश्चित किया गया ता यदि फ्रांस द्वारा जर्मनी अथवा इटली पर आक्रमण किया गया तो आक्रमण देश कि शक्ति का प्रतिरोध दोनों मित्र देश संयुक्तरूप करेंगे। इटली के विशेष आग्रह करने पर निश्चित कर दिया गया कि इस संधि की शर्तों का प्रयोग किसी भी निर्धारित अवधि पूरी होने के बाद सन 1887 में इस संधि की शर्तों पर आगामी पांच वर्ष के लिए नवीनीकरण किया गया।

4. **रुमानिया के साथ संधि**– 1881 ई. की आस्ट्रिया और सर्बिया की संधि ने सर्बिया को आस्ट्रिया का संरक्षित राज्य बना दिया 1831 ई.में रुमानिया के राजा केरोळ में जर्मनी आगमन पर बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के सम्मुख रुमानिया के साथ संधि प्रस्ताव रखा । आस्ट्रिया के इस प्रस्ताव के स्विकार कर लेने पर तीनों देशों के मध्य एक संधि हो गई। इस युध्द संधि का कार्यकाल 5 वर्ष था परंतु तीनों सदस्यों की सहमति से यह तीन-तीन वर्ष के लिए बढ़ाई जा सकती थी।

5. **रूस के साथ पुनराश्वासन संधि**– बिस्मार्क ने अपनी विदेश नीति में रूस की गतिविधींया को सर्वाधिक महत्व देता था। अंततः सन 1884 में उसे अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त हो गई जिसकी अवधि तीन वर्ष थी। तथा तीन वर्ष के पश्चात

टिप्पणी

इसकी शर्तो का नवीनीकरन होना निश्चित हुआ। इस व्यवस्ता के अनुसार सन 1887 में इस संधि को पुनर्जीवित किया गया।

6. **बिस्मार्क की इंग्लैंड के प्रति नीति**— बिस्मार्क की विदेश नीति का मुख्य ध्येय फ्रांस को मित्र हीन बनाने रखना था अतः उसने इग्लैंड से मित्रता पूर्ण संबंध बनाए रखे। फ्रांस इंग्लैंड से निकट संबंध स्थापित न कर सके इसके उसने 1880 ई. में मिल्न में इंग्लैंड के औनिर्दोशक दवों का समर्थन किया। जनवरी 1889 ई. में बिस्मार्क ने इंग्लैंड से संधि के प्रयास किए यधपि जर्मनी और इंग्लैंड के मध्य संधि नहीं हुई, परंतु बिस्मार्क के वतन तक दोनों देशों में मित्रवत संबंध बने रहे।

''बिस्मार्क की विदेश नीति की समीक्षा''

(Review of Bismark's Foreign Policy)

1871 ई. से 89 ई. तक के अपने द्वितीय महत्वपूर्ण काल में बिस्मार्क यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली राजनीतिश बना रहा। जर्मनी तथा फ्रांस की शत्रुता को ध्यान में रखते हुए जर्मन साम्राज्य की सुरक्षा एवं शांति के लिए बिस्मार्क ने विभिन्न राष्ट्रो से संधियाँ की गुट बनाना प्रारंभ किया उसकी विदेश नीति से न केवल फ्रांस निर्बल एवं एकाकी रहा अपिक जर्मनी की सीमाएं भी अन्य राष्ट्रों से अनुल्लेघीन रहीं। इसलीए सम्राट विलियम ने उसके विषय में कहा था – ''बिस्मार्क एक ऐसा बाजीगर था, जो एक साथ 5 गेंदों; आस्ट्रिया, इटली, फ्रांस, रुस तथा इंग्लैंड से खेल सकता था, जिसमें कम से कम दो सदा हवा में रहती थी।''

बिस्मार्क की विदेश नीति को ए.जे.पी. टेलर तथा जैम्सजोर्ट जैसे आधुनिक इतिहासकारो ने बिस्मार्क की कुटनीतिक को स्वीकार करते माना है कि बिस्मार्क महान नहीं था, परंतू बिस्मार्क के समय यूरोप के किसी भी देश में ऐसा राजनीतिश नहीं था, जो बिस्मार्क की बराबरी कर सके। ए.जे.पी. टेलर का मानता है कि – ''1890 ई. के पश्चात् यूरोपीय राजनीतिक रंगमंच पर जो गंदगी और भ्रष्टाचार परिलक्षित हुआ उसका उत्तरदायित्व बिस्मार्क जाता है।''

जब तक बिस्मार्क फ्रांस को ही अपना शत्रु समझता था, तब तक उसकी संधियाँ एवं कूटनीति पूर्ण सफल रहीं परंतु रुस को अपना शत्रु बना लेने के पश्चात् उसकी कूटनीति के सम्मुख कठिनाइयाँ उपस्थित होने लगीं। परिणामतः रुस और फ्रांस दोनों ने अपने उभयनिष्ठ शत्रु जर्मनी के विरुध्द मित्रता स्थापित कर ली। वास्तव में उसके द्वारा गया। तीन सम्राटों के संघ का समझौता पुनराश्वासन संधि सार हीन थी यह उसकी विदेश नीति का सर्वाधिक दोषपूर्ण पडाव था। यद्यपि बिस्मार्क कहता ताकि "युध्दबंदी मेरे लिए दुःस्वप्न है।" परंतू युध्दबंदी एवं गुप्त राजनीति का आरंभ बिस्मार्क ने ही किया था। **इस विषय में अपने मित्र हर बेलिन से कहा था ''मै प्रथम विश्व युध्द नहीं देखुंगा किंतू तुम देखोंगे और वह निकट पूर्व से आरंभ होगा''** आगे चलकर बिस्मार्क का यह कथम सत्य भी हुआ। और इसका आरंभ पूर्व से ही हुआ। लेकिन प्रसिध्द इतिहासकार जे आर. मेरियर का विचार है कि "इस प्रकार का भविष्यवाणी में कोई आश्चर्य नही है। क्योंकि संभवता 1896 ई. तक बिस्मार्क इस बात से परिचित हो चुका था कि जो बीज उसने बर्लिन की कांग्रेस में बोये थे उसके शीघ्र ही विध्यंसात्मक फल होंगे" और इस तथ्य से भी इंकार नही किया जा सकता कि प्रथम विश्व युध्द के लिए बिस्मार्क उत्तरदायी था।

बिस्मार्क का मूल्यांकन

19 वी शताब्दी के यूरोपीय इतिहास में बिस्मार्क में केवल जर्मनी का अपितू संपूर्ण यूरोप का सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली राजनितिज्ञ था। प्रशा की शक्ति उसके जीवन का आदर्श रही। **उसमें कहा था हम प्रशा में रहेंगे**। शताब्दियों से विभक्त और् अव्यवस्थित जर्मनी को प्रशा के नेतृत्व में मात्र 9 वर्षो में ही संग्रहित राज्य बना दिया। अपने लक्ष्य की पूर्ती हेतू बिस्मार्क ने झूठ, द्यल, कपट, सभी अनैतिक साधनों का प्रयोग किया। उसने विभिन्न राज्यों में फूट डालकर घृणा उत्पन्न करकें तथा मतभेद एवं झगडे काराकर युरोपीय राज्यों के पारस्परिक विरोध का लाभ उठाकर बर्लिन को यूरोपकी राजनीतिक गतिविधीयों का केंद्र बना दिया।

रक्त और लौह की नीति का अनुयायी बिस्मार्क सैनिक वादी होने के साथ ही चतुर कूटनीतिक भी था अपने शत्रु को मित्र हीन बनाकर यह करना उसकी नीति का प्रथम सिध्दांत था। कुटनीतिक दांवपेंच है, द्वारा वह शत्रु पक्ष को ही युध्द का आरंभ कराना था। धन और शक्ति दोनों उसकी कूटनीति के प्रमुख तत्व थे।

नितांत व्यावहारीक बुध्दि का राजनीतिज्ञ होते इस बिस्मार्क ने उपनिवेशों की स्थापना में कोई नही रुचि दिखाई उसकी राजनीति मात्र जर्मनी और यूरोप के लिए थी। यूरोप के इतिहास में बिस्मार्क हा पतन शत्रु नए युग का प्रारंभ था। वान वूलों के शब्दो में **''बिस्मार्क ने स्वयं हमारी पुरानी नीति का मूल्यांकन कर हमें नए मार्ग का निर्देश दिया यह निश्चित है कि इसमें न तो जर्मनी के इस नए विकास की कल्पना भी थी और न इस युग की समस्यायों की''** मॅरयिड ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है की, ''19 वी शताब्दी के इतिहास में वह सदैव उच्च स्थान पर होगा।''

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

4. बिस्मार्क की विदेश नीति का उद्देश्य किस देश के एकाकी रखना था?
   (क) फ्रांस, (ख) इंग्लैंड,
   (ग) रूप, (घ) आस्ट्रिया
5. त्रिराष्ट्र संघ में कौन-सा देश नहीं था?
   (क) आस्ट्रिया (ख) जर्मनी
   (ग) इटली (घ) फ्रांस
6. 18979 में बिस्मार्क ने द्विराष्ट्र संधि किस देश के साथ की?
   (क) फ्रांस (ख) रूस
   (ग) इटली (घ) इंग्लैंड
7. त्रिसम्राट संघ (1872) में किस देश का सम्राट सम्मिलित नहीं था?
   (क) आस्ट्रिया, (ख) रूस
   (ग) जर्मनी (घ) इंग्लैंड
8. इंग्लैड और जर्मनी के मध्य कटुता का क्या कारण था?
   (क) दक्षिणी अफ्रीका का प्रश्न (ख) फारस का प्रश्न
   (ग) फ्रांस का प्रश्न (घ) इसमें कोई भी नही

1.8 कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति (Kaiser William-II's Foreign Policy)

टिप्पणी

बिस्मार्क हे पतन के पश्चात जर्मनी की विदेश नीति जर्मन सम्राट विलियम (द्वितीय 8890–1914) के हाथ में आ गई। विलियम द्वितीय यह महान शासक होते हुए भी यह कुशल राजनितिज्ञ नही था, बिस्मार्क जैसे कुटनीतिज्ञ का उसमें सर्वथा अभाव था। उसकी विदेशी नीति का आधार विश्व राजनीती के अनुसार विश्व में कहीं पर भी कोई ऐसा कार्य नही होना चाहिएं जिसमें कि जर्मनी ही सम्मति न ली जाएं उसका उद्देश्य विश्व राजनीती पर शक्ति प्राप्त करना था। अथवा पतन के लिए तैयार रहता था वह जर्मन जाति को सर्वश्रेष्ठ मानता था। उसका कहना था की समस्त विश्व को सभ्य बनाने के लिए ही ईश्वर ने उसको जन्म दिया है।

विलियम द्वितीय की विदेश नीति के उद्देश्यः–

1. जर्मनी को विश्व शासन के रूपमें परिवर्तित करना ।
2. औपचारिक विस्तार की नीति अपनाना।
3. पूर्व की ओर साम्राज्य विस्तार करना।
4. जल सेना का सुदृढीकरण करना

विदेश नीति का क्रियान्वयन

जर्मनी और इंग्लैंड

इंग्लैंड विश्व में जलसेना की सर्वोच्चता को कायम रखना चाहता था। जल सेना उसके लिए आवश्यक थी किंतु जर्मन सम्राट ने जिसके लिए जल सेना आवश्यक नही थी, अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा को दूर करने के लिए जल सेना के विकास व विस्तार की योजना बनाकर इंग्लैंड को नाराज कर दिया। इसके अतिरिक्त 19 विश्वशताब्दी के अंतिम दौर में दक्षिण अफ्रिका की और बोअर जर्मन के साथ इंग्लैंड की सुंदरता को अधिक बढा दिया। यह संपूर्ण परिवर्तन जर्मनी की विदेश नीति के फलस्वरूप पैदा हुआ था।

जर्मनी और टर्की

विलियम द्वितीय ने अपने निजी स्वार्थो के कारण टर्की के आंतरिक मामलों में अधिक रुचि दिखाई थी। वह अपनी व्यापारिक सुविधा के लिए बर्लिन से बगदाद तक रेल्वे लाईन का निर्माण करना चाहता था। किंतु टर्की की अनुमति के बिना यह संभव नहीं था अतः उसने टर्की से घनिष्टता स्थापित की।

जर्मनी और रूस

विलियम द्वितीय की उपेक्षा पूर्ण नीति के कारण सन 1890 के पश्चात जर्मनी रूस के संबंध बिगड़ते गई। बिस्मार्क के समय में रूस के साथ संपन्न की गई। सभी राजनीतिक संधियों समाप्त कर दिया गया। फलस्वरूप धीरे धीरे निकट आने लगा। 1890 ई.स में रूस व फ्रांस के मध्य द्विवर्गी संधि हुई।

जर्मनी और फ्रांस

सेडान युध्द की पराजय और फ्रेंकफर्ट की संधि के कारण फ्रांस और जर्मनी में शत्रुता थी। सन 1890 के बाद विलियम द्वितीय की विश्व राजनीति के फलस्वरूप फ्रांस

का एकाकी पन समाप्त हो गया । उसे सन् 1894 में रूस तथा सन् 1904 में इंग्लैंड जैसे शक्तिशाली देश की मित्रता का लाभ प्राप्त हुआ। सन् 1907 में रूस इंग्लैंड और फ्रांस तीनों देशों ने मिलकर जर्मनी, ऑस्ट्रिया और इटली के विरूध्द एक शक्तिशाली संघ की स्थापना की, इसी संघ की सहायता से फ्रांस को सन् 1911 में मोरक्को समस्या का समाधान करने में सफलता मिली और जर्मनी पूरी तरह असफल हो गया

1.9 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1. (ग)
2. (क)
3. (ग)
4. (ग)
5. (घ)
6. (घ)
7. (घ)
8. (क)

1.10 सारांश (Summary)

इस प्रकार विलियम द्वितीय की विदेशीनीति यूरोप महाद्विप की शक्ति के लिए घातक सिध्द हुई। पूर्वी समस्या अफ्रीका की लूट और जल सेना का विस्तार के संबध में जर्मन सम्राट की महात्वाकांक्षाओं ने रूस, इंग्लैंड और फ्रांस आदि देशों के हिंतों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। इस नीति के फलास्वरूप विभिन्न देशों पर राजनीतिक गुटबंदी का विकास हुआ जिसके कारण संपूर्ण यूरोप को महाद्विप दो सैनिक शिबिरों में विभाजित हो गया। दुर्भाग्यवश इसी अवधि में अस्ट्रिया और सर्विया के मध्य शत्रुता दिन प्रतिदिनी बढ़ती गई। सन् 1914 में अस्ट्रिया के राजकुमार की हत्या बोस्निया की राजधानी में कर दी गई, आस्ट्रिया ने इस हत्या के विरूध्द युध्द की घोषणा कर दी गई। आस्ट्रिया ने इस हत्या के विरूध्द युध्द की घोषणा कर दी इस युध्द को दो देशों तक सीमित रखा जा सकता था किंतु जर्मन सम्राट ने आस्ट्रिया का पक्ष लेकर स्थिति को बिगाड़ दिया और इस युध्द ने विश्वव्यापी स्वरूप कर लिया। इसीलिए विलियम द्वितीय की विश्व राजनीति को प्रथम विश्व युध्द का उत्तर दाई ठहराया जा सकता है।

1.11 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **गणतंत्र**– जनता का शासन
- **रीखस्टाग**– लोकसभा
- **कुल्चुर**– सभ्यता के लिए संघर्ष

1.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. 1875 ई. के फ्रांस के संविधान की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. बिस्मार्क की गृहनीति का कथन कीजिए।
3. कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. फ्रांस के तृतीय गणतंत्र के प्रमुख संकटो की विवेचना कीजिए।
2. गणतंत्र सरकार द्वारा फ्रांस के पुनर्निर्माण के लिए किए गए कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. तृतीय गणतंत्र की वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिए।
4. बिस्मार्क की विदेश नीति का वर्णन कीजीए।
5. बिस्मार्क के चर्च से हुए संघर्ष की विवेचना कीजीए।
6. कल्वर कैम्प से आप क्या समझते है? बिस्मार्क ने संस्कृति एवं सभ्यता ही रक्षा के लिए क्या किया?
7. बिस्मार्क के समाजवाद से इस संघर्ष का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए?
8. कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति प्रथम विश्व युध्द के लिए कहा तक उत्तरदायी है।
9. फ्रांस इंग्लैड, रूस टर्की एवं आस्ट्रिया के साथ कैंसर विलियम द्वितीय के काम में जर्मनी के संबंधों पर प्रकाश डालिए।

1.13 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. कैटलवी. सी. डी. राम. – हिस्ट्री ऑफ कामर्स टाइम्स।
2. हेजन सी. डी. – मॉडर्न यूरोपियन हिस्ट्री।
3. चौहान देवेन्द्रसिंह – यूरोप का इतिहास – भाग 1 एवं 2।
4. जैन एवं माथुर – विश्व का इतिहास।
5. वर्मा दीनानाथ – आधुनिक यूरोप का इतिहास।
6. मेहता बी. एस. – यूरोप का इतिहास।
7. सिन्हा बिपिन बिहारी – आधुनिक ग्रेट ब्रिटेन।
8. पाल बी. ई. – यूरोप का इतिहास।

टिप्पणी

इकाई 2 अफ्रीका का विभाजन, पूर्वी समस्या, रुस-टर्की युध्द (क्रीमिया का युध्द) बर्लिन काँग्रेस (1878) युवा तुर्क आंदोलन व बाल्कन युद्ध, 1905 ई. की रूस की क्रांति

संरचना (Structure)

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 अफ्रीका का विभाजन
2.3 पूर्वी समस्या, रूस. तुर्की युध्द (क्रीमिया युध्द)
2.4 बर्लिन काँग्रेस (1878), युवा तुर्क आंदोलन व बाल्कन युध्द
2.5 1905 ई. की रूस की क्रांति
2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय (Introduction)

1. इस इकाई में अफ्रीका के विभाजन का उल्लेख किया जाएगा।
2. इस इकाई में पूर्वी समस्या रूस टर्की युध्द की क्रीमिया युध्द का वर्णन किया गया जाएगा।
3. इस इकाई में बर्लिन काँग्रेस (1878) युवा तुर्की आंदोलन युध्द सग्रांम युध्द के कारण एवं परिणाम का उल्लेख करेंगे।
4. इस इकाई में 1905 की रूस की क्रांति का उल्लेख किया जाएगा।

2.1 उद्देश्य (Objectives)

इस कार्य का उद्देश्य विद्यार्थियों कों निम्न विषय वस्तु से अवगत कराना है।

- युरोपीय राष्ट्रों द्वारा शोषण हेतू अफ्रीका का विभाजन किस प्रकार किया गया।
- पूर्वी प्रश्न या पूर्वी समस्या क्या थी एवं 1871 ई. 1917 ई. तक यह किस प्रकार तुर्की एवं युरोपीय देशों के लिए स्वार्थ एवं युध्द का कारण बनी रही ।
- पूर्वी समस्या के निराकरण के लिए जर्मनी की राजधानी बर्लीन में बिस्मार्क की सहायता में यूरोपीय देशों का जो सम्मेलन हुआ उसमें हुए निर्णय एवं इसकी समीक्षा।

- तुर्की में युवा तुर्क आंदोलन के कारण घटनाएं परिणाम।
- 1905 ई. की. रूस की क्रांति के कारण परिणाम घटनाए।

टिप्पणी

2.2 अफ्रीका का विभाजन (African Division)

अफ्रीका का विशाल महाद्वीप 19 वीं शताब्दी से पूर्व संघ महाद्वीप के नाम से जाना जाता था, यूरोप के अत्यंत समीप होने के बाद भी यूरोप वासी इसके संबंध में कोई ज्ञान नही रखते थे; और यदि कोई देश अफ्रीका में के संबंध में कुछ जानकारी रखते भी थे तो वह न के बराबर ही थी इस समय तक लोग अफ्रीका महाद्विप की आंतरिक समृध्दि से अवगत नहीं थे। व्यापारी वर्ग भी इस महाद्विप के संबंध में केवल इतना ही जानते थे कि वे यहाँ से दृष्टियों को पकडकर ले जाते थे। और दासो के रूप में उन्हें अमेरिकी किसानों को बेच देते थे।

नवीन साम्राज्यवाद के उदय के कारण

1. राष्ट्रिय प्रतिष्ठा और समृध्दि में वृध्दि के लिए उपनिवेशों की आवश्यकता महसूस होना।
2. औद्योगिक क्रांति का प्रसार होना।
3. अतिरिक्त पूंजी की वृध्दि होना।
4. जनसंख्या वृध्दि।
5. यातायात एवं संचार साधनों का विकास।
6. व्यापारी संगठनों तथा सैनिक अधिकारीयों के निहित स्वार्थ उत्पन्न करना।
7. ईसाई मिशनरियों की भूमिका।
8. उपनिर्दशों का सामरिक बारिक महत्व होना।
9. सभ्यताके विस्तार के कारण साम्राज्य विस्तार ।
10. भौगोलिक खोंजे होना।
11. औपचारिक विस्तार के समर्थन राजनितीयों एवं अर्थशास्त्रियों की भूमिका अहम होना।

अफ्रीका की खोज

अफ्रीका की खोजके महत्व पूर्ण कार्य में लिविंगटन, स्टैनले, बेकर, स्पोक व ग्राण्ट आदि का योगदान विशेष रूप में उल्लेखनिय है। लिविंगटन ने जेम्बेज नदी के मार्ग से यात्रा करकें विक्टोरिया तथा बियाग्रा झील की खोज की। उसके मध्य अफ्रीका के प्रत्येक प्रदेश में सन 1840 से 1683 ई. तक भ्रमण किया 1873 ई. स्टैनले को उसे खोज निकालने भेजा गया था। एक अंग्रेज अन्वेषण कर्ता स्वोक ने भी एक झील की खोज की थी, इन धर्म प्रचारकों एवं खोज कर्ताओं के माध्यम से ही लोंगों को अफ्रीका की आंतरिक भौगोलिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त हुआ था और यूरोप का प्रत्येक देश अफ्रीका में आने उपनिवेश स्थापित करने का प्रयास करने लगा था।

अफ्रीका का विभाजन

अफ्रीका का विभाजन यूरोप के इतिहास की अत्यंत रोमांचक घटना मानी जाती है। विभाजन के महत्वपूर्ण कार्य को अत्यंत शीघ्रता से संपादित किया गया। यद्यपि विभाजन कर्ता के विभिन्न राष्ट्रो में आपस में अनेक मतान्तर थे, किंतु फिर भी बिना कोई युध्द लडे इस कार्य को शांति पूर्ण ढंग से पूरा कर लिया गया। सर्वप्रथम 1876 इ. में बेल्जियम के राजा लियो पोलु द्वितीय ने झुसेल्स में यूरोप के राष्ट्रों की एक सभा का आयोजन किया। उसका उद्देश्य अफ्रीका के महत्व पर विचार करना था और अफ्रीकन सम्मेलन का गठन करना था। किन्तु इस सम्मेलन के उच्च नैतिक स्तर को अधिक लम्बे समय तक नहीं बनाए रखा जा सका और शीघ्र ही बेल्जियम के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर यूरोप के अन्य देशों ने भी अफ्रीका में प्रवेश प्राप्त करने के लिए घोषित किया कि अफ्रिका में उनके प्रवेश का मुख्य उद्देश्य वहां की असभ्य जनता को सभ्य बनाना तथा ईसाई धर्म का प्रचार करना है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से यूरोप के विभिन्न राज्यों में अफ्रीका की लूट के कार्य को प्रारंभ किया।

1884 का बर्लिन सम्मेलन

यूरोप का प्रत्येक राष्ट्र अफ्रीका में अपने उपनिवेश स्थापित करना चाहता था इसलिए उनमें परस्पर मतभेद का जन्म हूआ। अंततः बर्लिन में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बनाया गया, जिसमें विभिन्न देशों के मतान्तरों को दूर किया गया एवं जर्मनी, इंग्लैंड और फ्रांस के सीमा संबंधीं विवादों को सुलझा लिया गया। उपयुक्त देशों ने इस पर आपस में एक नवीन संधि भी इस सम्मेलन में अफ्रीका में सांस्कृतिक विकास के प्रश्न पर भी विचार विमर्ष हुआ। शास्त्रों एवं शराब के व्यापार पर भी अनेक प्रतिबंध लगाए गए, किंतु शीघ्र ही दोनों में अफ्रीका वासियों का अत्याधिक शोषण होने लगा। बर्लिन के इस महत्वपूर्ण सम्मेलन में स्विजरलैंड के अतिरीक्त यूरोप के सभी देशों और अमेरिका ने भी भाग लिया और यह सम्मेलन 1884 से फरवरी 1885 तक चला।

अफ्रीका के विभाजन में सबसे अधिक लाभ इंग्लैंड को हुआ। उसके अत्याधिक विस्तृत हेफ, नेटाल, साम्राज में केप ऑफ गुडहोप, ट्रांसवाल ऑरेन्ज नदी का नजदीकी क्षेत्र, रोडोशिया, मस्त्र, सुडान का कुछ भाग ब्रिटिश सोमालीलैंड नाईजीरीया, मौम्बिया, गोल्डकोस्ट तथा सियरां-लियोन आदि सम्मिलीत थे।

1. इंग्लैंड

सन् 1652 ई. में इस लोगों ने इन्हे बोअर भी कहा जाता था। सन 1881 ई. में ट्रांसवाल में सोने की कुछ खानो की जानकारी प्राप्त हुई, जिससे प्रभावित होकर अंग्रेजो ने ट्रांसवाल में प्रवेश करना प्रारंभ कर दिया और कहीं कहीं पर उनकी संख्या मूल निवासी बोअरों से भी अधिक हो गई। इससे बोअरों की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया 1962 ई. में दोनों (बोअरो और अंग्रजो) में मध्य एक संधी हो गई। जिसके अनुसार ट्रांसवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेट पर अंग्रेजो के अधिकारों नही स्वीकार कर लिया गया। डच भाषा को राज्य भाषा घोषित कर दिया गया और इसे स्वायतता प्रदान करने का वचन दिया गया।

टिप्पणी

इस संधि के बाद बोअरों मे हुई सुविधाओं प्रदान की गई किन्तु इसके बाद भी उनके असंतोष का अंत नही हुआ। अंततः इंग्लैंड की उदार सरकार ने ट्रांसवाल व ऑरेंज फ्री स्टेट को क्रमशः 1906 ई.व. 1907 ई. में स्वायता प्रदान कर दी तथा ट्रांसवाल ऑरेंज फ्री स्टेट केप कालोनी व नेटाल का 'दक्षिण अफ्रीका' संघ के नाम से संग्रहित कर दिया।

2. **फ्रांस**

फ्रांस अफ्रीका के महत्वपूर्ण प्रदेशों तथा मिस्त्र निवेश अल्जीरिया ट्यूनिस, और मोरक्को पर अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहता था किंन्तु इंग्लैंड ने इसका विरोध किया तथा मित्र पर इसका अधिकार स्थापित होने दिया क्योकि मिस्त्र का इंग्लैंड भारत स्थित साम्राज्य के लिए अत्याधिक महत्व था, किन्तू धीरे-धीरे फ्रांसने दक्षिण अफ्रीका के कई महत्वपूर्ण उपनिवेशों पर अधिकार स्थापित कर लिया। इस प्रकार फ्रांस अफ्रीका के उत्तर पश्चिमी प्रदेशों मे एक विशाल औपनिवेशिक स्थापित करने में सफल रहा।

3. **जर्मनी**

बिस्मार्क, जर्मनी को एक आत्म संतुष्ठ देश कहा करता था, किंतु बाद में निम्नलिखित कारणों से प्रेरित होकर उसमें उपनिवेश स्थापना की ओर ध्यान देना आरंभ कर दिया था।

(i) जर्मनी के ओद्योगिक विकास के लिए उपनिवेश प्राप्त करना नितांत आवश्यक था।

(ii) अपनी बदली हुई जनसंख्या को बचाने के लिए उसे अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता थी।

(iii) जर्मनी के राष्ट्रीय गौरव के लिए उपनिवेशों की स्थापना अत्यंत आवश्यक थी।

4. **स्पेन**

स्पेनने अफ्रीका के दक्षिण पश्चिमी समुद्र तट पर अपने युध्द उपनिवेश स्थापित कीए। 1908 ई. में उसने जिब्राल्टर द्वीप के सामने कुछ प्रदेशों पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया ।

5. **इटली**

इटली ट्युनिस के प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था, परंतु फ्रांस द्वारा वहां अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया तथा तत्पश्चात इटली ने त्रिपोली तथा उसके आसपास के प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और उसे कालांतर में लीबिया का नाम प्रदान किया।

6. **पुर्तगाल**

पुर्तगाल ने अंगोला पर अपना अधिकार स्थापित किया था। वह बेल्जियम कांगो के दक्षिण में स्थितथा कालांतर मे पुर्तगाल ने मोजम्बिक पर स्थापित कर लिया, जिसे पुर्तगाल वासी पूर्वी अफ्रीका के नाम से पुकारते थे।

इस प्रकार यूरोप की महाशक्तियों ने संपूर्ण अफ्रीका का आपस में विभाजन कर लिया। विभाजन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश यह था कि यह कार्य अत्यंत शांतिपूर्ण ढंग से संपन्न किया गया। यद्दपि कई अवसरोंपर कटूता बढ़ जाने के कारण युध्द की संभावनाएं अत्याधिक बढ़ गई, किंतु वार्तालाप और कुटनिती के डारा मंतातरो को शांतिपूर्ण ढंग से हल कर दिया गया। विभाजन का उल्लेखनिय तथ्य यह था कि विभाजन अत्यंत धीमी गति से और क्रमानुसार दिया गया था।

प्रो. चौहान ने लिखा है, **''अफ्रीका का विभाजन यूरोप एवं विश्व के इतिहास की अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है, इसकी एक विशेषता यह थी की इतने विशाल महाद्वीप का विभाजन बिना युध्द के पूरा हुआ। समय समय पर विभिन्न राज्यों में तनातनी हुई, कटूता भी उत्पन्न हुई संघर्ष की संभावनाएं भी दिखाई दी, किंतु अंत में सभी संकटो का कूटनीति के द्वारा निवारण हो गया।''**

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. नवीन साम्राज्यवाद का सर्वाधिक शिकार हुआ–

   (क) भारत　　(ख) अफ्रीका

   (ग) लैटिन अमेरिका　　(घ) इनमें से कोई नही।

2. दास व्यापार का प्रारंभ किसने किया

   (क) पुर्तगाल　　(ख) इंग्लैंड

   (ग) फ्रांस　　(घ) हालैंड।

2.3 पूर्वी समस्या, रूस तुर्की युध्द (क्रीमिया युध्द) (Eastern Problem, Russia Turkey War (Crimean War))

भूमिका–

19 वी शताब्दी के प्रांरभ में यूरोप के इतिहास में एक महत्वपूर्ण तथा गंभीर अंतराष्ट्रीय प्रश्न उपस्थित हुआ जिसका संबंध पुर्वी देशों से है। जिन देशों की आंतरिक व आंभ्यन्तरिक स्थिती का प्रभाव युरोप की राजनीति से है उसे हम "पूर्वी समस्या" कहते है। पूर्वी समस्या एक गठिया रोग की भाँति है। जो कभी टांगो को कभी तुच्छ हाथों को अशक्त करता रहता है, पूर्वी समस्या में होनेवाली हलचल से बिस्मार्क का भी बड़ा संबंध था। जिसको वह निस्थार व तुच्छ मानता था।

पूर्वी समस्या का स्वरूप–

बाल्कन क्षेत्र में यूरोपीय शक्तियों के परस्पर विरोधी राजनीतिक हितों विभिन्न प्रतिद्वंदी, जातियों, विभिन्न धर्मो और पृथक-पृथक स्थानों पर पारस्पारिक विरोधी स्वार्थो की समस्याएँ मौजुद थी। प्रमूख शक्तिशाली युरोपीय शक्तियों ने अपने हितों के लिए पूर्वी समस्या को अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान कर दिया था यह स्वरूप विभिन्न युध्दो में विभिन्न स्वरूप धारण करता गया।

टिप्पणी

1. **लार्ड मार्ले के अनुसार "पूर्वी समस्या संघप्रेरित विविध जातियों तथा धर्म समुदायों को मानने वाले परिवर्तन शील न समझ में आने वाली अत्यंत उलझी हुई समस्या थी"।**
2. **हेजन ने लिखा "पूर्वी समस्या प्रमुख तथा यूरोपीय तुर्की के भाग्य की समस्या थी"।**

पूर्वी समस्या –"1674 ई. तर की प्रमुख घटनाएँ।

1. **सर्बिया को स्वशासन**– तुर्की की अधीनता से मुक्त होकर जाने वाली राष्ट्रों में सर्वप्रथम नाम सर्बिया का है। 1804 ई. में सर्बिया ने तुर्की प्रभुसत्ता के विरूध्द विद्रोह किया। निरंतर संघर्ष के फलस्वरूप 1817 ई. में सर्बिया को स्वशासन का अधिकार मिला।
2. **यूनान की स्वतंत्रता**– 1821 ई. में यूनान ने तुर्की के विरूध्द विद्रोह किया रूस की सहानूभूति यूनान के साथ थी। 1828 ई. 29 ई में. रूस - तर्की युध्द हुआ। रूस ने तुर्की सेनाओं को पराजित किया । 14 सिंतम्बर 1829 ई. में संड्रयांनोपल की संधि के अनुसार तुर्कीसुल्तान ने यूनान का स्वागत किया। 1830 ई.में "प्रोटोकाल ऑफ लंदन" द्वारा यूनान को यूरोपीय शक्तियों के संरक्षण में स्वतंत्र राज मान लिया गया।
3. **क्रीमिया युध्द (1854 - 1856)**– 19 वी शताव्दी के मध्य में तुर्की के पूर्वी युरोपीय साम्राज्य के भविष्य को लेकर रूस एवं टर्की के मध्य क्रीमिया का युध्द हुआ। इस युध्द में इंग्लैंड फ्रांस तथा सार्डिनिया ने तुर्की का साथ दिया। सभी सेनाएं मित्र राष्ट्रों की सम्मिलित शक्ति का सामना करने में असमर्थ रही तथा पराजित हुई।

   पेरिस की संधि (1856) 10 मार्च 1856 ई. को रूस के जार में पेरिस की संधि को स्वीकार कर लिया पेरिस की संधि ने रूस की बाल्कन संबंधी महत्वाकांक्षाओं पर नियंत्रण जमाने का कार्य किया । तुर्की के मृतपाय साम्राज्य को नवीन जीवन प्राप्त हुआ। इसका यह घातक परिणाम यह हुआ कि बाल्कन तथा राज्य को तुर्की को निर्बलता का ज्ञान हो गया तुर्की की अधिनता से मुक्त होने की उनकी इच्छा और बलवती हुई। परिणाम स्वरूप पूर्वी समस्या और जटिल हो गई।
4. **स्वतंत्र रूमानिया राज्य का निर्माण**– 1856 ई. की पेरिस की संधि द्वारा मोल्डाविया तथा वालेशिया ने पेरिस संधि का उल्लंघन करते हुए एकीकरण के लिए आंदोलन प्रारंभ किया। परिणाम स्वरूप 1862 ई. में स्वतंत्र रूमानिया राज्य के निर्माण की घोषणा की गई।
5. **बाल्कन में राष्ट्रीयता का विकास**– 1856 ई. में तुर्की सुल्तान ने अपने साम्राज्य में रहने वाले सभी ईसाईयाँ के प्रति अच्छा व्यवहार करने एवं उनके अधिकारों की सुरक्षा का आश्वासन दिया था परंतु यह आश्वासन कभी पूरा नहीं हो सका। तुर्की साम्राज्य के अधिकारियों के अत्याचार चलते रहे। सर्बिया और रूमानिया के सफल के फलस्वरूप बाल्कन लोगों में राष्ट्रीयता की भावनाओं पर तीव्र गति से विकास हुआ। सर्वस्लाव आंदोलन ने जोर पकड़ा। रुस ने स्लाव

एकता की स्थापना को अपना प्रबल समर्थन दिया। रूस 1856 ई. में पेरिस संधि को अपमानजनक मानता था, अतः उसने बाल्कन राज्यों की तुर्की के विरूद्ध के लिए उकसाया।

रूस-तुर्की युद्ध (1877-78 ई.) (Russia-Turkey War (1877-78))

युद्ध के कारण–

1. **तुर्की के अत्याचार तथा स्लाव एकता आंदोलन–** बाल्कन राज्यों की ईसाई प्रजा के साथ तुर्की का व्यवहार अन्यायपूर्व एवं अत्याचारी स्वरूप में था। प्रतिक्रिया स्वरूप इस क्षेत्र में पान स्लाव आंदोलन ने जोर पकड़ा। सर्बिया, बोसनिया, मॅारिनिग्रो एवं बल्गारिया आदि आंदोलन के प्रभाव के क्षेत्र थे। इन राज्यों में गुप्त सभाओं का जाल बिछा गया। फलतः ईसाईयों के प्रति तुर्की का व्यवहार और भी अधिक उग्र तथा दमनकारी हो गया।
2. **बाल्कन राज्यों में विद्रोह हत्याकांड और दमन–** टर्की द्वारा दमन चक्र के विरोध में बोस्निया और हर्जेगोविना के किसानों नें विद्रोह कर दिया। विद्रोह की लपटें पूरे क्षेत्र में आंधी की तरह फैल गई। बल्गेरिया के किसानों ने जबरन वसूली करने वाले अनेक अधिकारियों को मार डाला। सुल्तान ने सेना भेज कर हत्याएं करवाना प्रारंभ कर दी। बारह हजार कृषकों को मौत के घाट उतार दिया गया।
3. **युद्ध की परिस्थितियों का निर्माण–** रूस की तुर्की को दी गई चेतावनी के कारण बाल्कन की स्थिति और बिगड़ गई। रूस का अलेक्जेंडर द्वितीय रूस की आंतरिक समस्याओं ओंर इंग्लैंड की स्थिति से चिंतित था। रूस सर्बिया का पक्ष छोड़ना नहीं चाहता था अतः उसने ब्रिटिश राजदूत को आश्वासन दिया कि रूस कस्तुनतुनिया पर अधिकार नहीं करना चाहता, परंतु यदि किसी अन्य राष्ट्र ने इस पर अधिकार का प्रयत्न किया, तब रूस को अकेले बढ़ना होगा। रूस ने समस्या के हक के लिए यह सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव भी दिया था।

रूस की चेतावनी इंग्लैड ने गंभीरता से लिया। इजरायली ने रूस के विरूद्ध कड़ी टिप्पणी करते हुए कहा कि ''इंग्लैंड को साम्राज्य रक्षा के लिए यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि उसे कितना बार युद्ध करना है।'' डिजरावली की टिप्पणी के तुरंत बाद जार ने घोषणा की कि ''यदि तुर्की नें कड़ी शक्तियों की शर्ते स्वीकार नहीं की तो वह बाल्कन की अवस्था का अंत करने का लिए धारण करेगा।''

20 जनवरी 1877 ई. को कस्तुनतुनिया का सम्मेलन हुआ सम्मेलन के निर्णयों में तुर्की के सुल्तान नें असहमति दिखाईं एवं हठधर्मिता के चलते सम्मेलन असफल हुआ। अतः रूस ने इस परिस्थिति को देखते हुए तुर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। **युद्ध की घटनाएं** – रूस की सैनिक कार्यवाही पूर्ण हो चुकी थी। उसने 25 अप्रैल 1877 ई. को तुर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी, इस दिशा में उसने सर्व प्रथम रूमानिया के साथ एक संधि की और डेन्यूब नदी को पार कर तुर्की के साम्राज्य में प्रवेश किया। रूसी सेनाओं ने पांच महीनों की मेहनत के बाद प्लेवेला दुर्ग पर विजय के पश्चात रूसी सेनाएं कस्तुनतुनियां की ओर बढ़ी। 5 जनवरी को वे सोकिया एवं

एड्रियानोपाल पर रूसी सेनाओं का अधिकार हो गया। निरंतर पराजयों से विवश होकर 3 मार्च 1878 ई. में तुर्की साम्राज्य के सुल्तान ने रूस के साथ सेनस्टीफेनो की संधि पर हस्ताक्षर कर दिए।

टिप्पणी

सेनस्टीफेनो की संधि (3 मार्च 1878 ई.)

शर्तें:–

1. रूस ने तुर्की से युद्ध क्षति के रूप में बड़ी राशि मांगी। तुर्की द्वारा दोब्रुजा दिए जाने पर युद्ध क्षति पूर्ति कम होनी थी।
2. तुर्की सुल्तान डेन्यूब नदी पर स्थित दुर्गो को नष्ट करेगा।
3. रूस को दोब्रुजा, बेसरविया का कुछ भाग, अर्दहान बालुम कार्य एवं बायजीद के प्रदेश प्राप्त करने होंगें।
4. बृहद, बल्गारिया को स्वशासित राज्य घोषित किया गया।
5. तुर्की सर्बिया को स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता देगा।
6. तुर्की मोटिंनीग्रो की स्वतंत्रता स्वीकार करेगा।
7. रूमानिया का स्वतंत्र राज्य के रूप में संघटन होगा।
8. तुर्की सुल्तान ने बोस्निया एवं हजैगोविना में सुधार का वचन दिया। उन्हें एक ईसाई गर्वनर जनरल के अधीनस्थ रखा जाना था।

संधि की समीक्षा– सेनस्टीफेनो की संधि रूस की कूटनीति विजय थी। रूस ने बाल्कन पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। वृहद बल्गेरिया के निर्माण से उसे भविष्य में लाभ होना था। संधि के पश्चात इजरायली ने घोषणा कि – **''सेन स्टीफनों की संधि ने यूरोप के मानचित्र से तुर्की साम्राज्य को मिटा दिया है।'' डिजरायली कालासागर पर रूसी प्रभाव बढ़ने से चिंतित था। उसने कहा ''उस्मानी सुल्तान के समस्त यूरोपीय क्षेत्र रूस के प्रशासन के अधीन हो गए है। बातों का कुल प्रभाव यह होगा कि कालासागर भी उसी प्रकार से रूसी झील बन जाएगा, जैसा कि कैस्लियन सागर है।''**

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

3. रुस-तुर्की युध्द के पश्चात संधि कहाँ हुई थी–

(क) बर्लिन	(ख) तुर्की
(ग) सेंटस्टीफेनों	(घ) लंदन

टिप्पणी

2.4 बर्लिन कांग्रेस (1878), युवा तुर्क आंदोलन व बाल्कन युद्ध (Berlin Congress (1878), Young Turk Movement and Balkan Wars)

भूमिका–

रूस ने तुर्की के साथ सेंटस्टीफनों की संधि करते समय यूरोप के उन बड़े राष्ट्रों की उपेक्षा की थी, जिनके हितपूर्वी समस्या से संबंध थे इंग्लैंड रूसी विस्तार की आशंका से चिंतित था। उसका यह विश्वास था कि बल्गारिया एवं अन्य राज्य रूस की हर बात मानेंगे। अतः बाल्कन प्रायदीप से संबंधित व्यवस्थाएं सभी यूरोपीय शक्तियों द्वारा मिलकर निश्चित की जानी चाहिए।

रूस-तुर्की संघर्ष पर विचार करने के लिए बर्लिन में 1878 ई. में यह सम्मेलन हुआ यह सम्मेलन में जो निर्णय हुआ वे रूस के लिए लाभकारी और तुर्की के लिए विनाशकारी सिद्ध हुए। तुर्की का विघटन हुआ और उसको अनेक विश्वस्त प्रदेशों से हाथ धोने पड़े। तुर्की में अब्दुल हमीद द्वितीय ने निरंकुश शासन की स्थापना की। इससे तुर्की में स्थिति बिगड़ गई। निरंकुश शासन के विरूद्ध तुर्की के युवाओं ने एक आंदोलन किया, जिसे युवा तुर्क आंदोलन करते है। इस आंदोलन के परिणाम स्वरूप अब्दुल हमीद का निरंकुश शासन समाप्त हुआ। 1912-13 ई. में बाल्कन का प्रथम एवं द्वितीय युद्ध हुआ। इन युद्धों में संपूर्ण यूरोपीय राजनीति को प्रभावित किया। इन युध्दों ने यूरोप में राष्ट्रवादी भावनाओं को प्रज्वलित किया तथा आगे चलकर उग्र राष्ट्रीयता के कारण विश्व को प्रथम विश्व युद्ध की ज्वाला में ढकेल दिया जिसका खामियाजा संपूर्ण विश्व को भुगतना पड़ा।

बर्लिन कांग्रेस (1878 ई.)

बिस्मार्क की अध्यक्षता में जो कि उस समय एक **'ईमानदार दलाल'** का कार्य कर रहा था। 13 जून 1818 ई. को बर्लिन कांग्रेस बर्लिन में आयोजित की गई। बिस्मार्क एक राजनितिक था। इस समय पर वह शक्ति के सर्वोच्च शिखर पर था। यूरोप की घटनाओं का केन्द्र बर्लिन था। अतः बिस्मार्क को ही सम्मेलन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस सम्मेलन में रूस, ऑस्ट्रिया तथा इटली के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन निर्णायक था। डिजरायली तथः सेलिसबरी ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। रूस का प्रतिनिधित्व मोर्टजाकोप कर रहा था। बशिंगटन फ्रांस की ओर से था। आस्ट्रिया की ओर से एंड्रास्से तथा इटली की ओर से कोर्टो अपने देश का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

सम्मेलन में निम्नलिखित महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए–

1. बृहद बल्गारिया तीन भागों में विभाजित कर दिया गया–

   (i) बल्गारिया – इस भाग को तुर्की के अधीन मान लिया गया। इसकी सीमाएं डेन्यूब नदी तथा बाल्कन के पर्वतीय प्रदेशों के मध्य सीमित कर दी गई।

   (ii) पूर्वी रूमेलिया – वृहद बल्गारिया के दक्षिणी भाग में स्थित पूर्वी रूमेलिया को तुर्की को दे दिया गया। इसका शासन ईसाई गर्वनर द्वारा किया जाना तय हुआ था।

टिप्पणी

(iii) **मेसोडोनिया**– पूर्वी रूमेलिया का दक्षिणी भाग मेसोडोनिया को तुर्की को सौंप दिया गया।

2. बोस्निया और हर्जेगोविना तुर्की प्रभुत्व में बने रहे परंतु इसका प्रशासन आस्ट्रिया को सौप दिया गया।
3. नोवीबाजार के संजक में आस्ट्रिया को अपनी सेनाएं का अधिकार मिला।
4. रूमानिया को स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता मिली।
5. सर्बिया की स्वतंत्रता को मान्यता दी गई। उसे निश एवं वृहद बल्गारिया का कुछ भाग प्राप्त हुआ।
6. मांटिनिग्रो की स्वतंत्रता को मान्यता प्राप्त हुई। उसे एड्रियाटिक सागर पर स्थित एन्टवारी का बंदरगाह मिला।
7. रूस को यूरोप में बेसरबिया मिला। एशिया में रूस को बालुम कार्स तथा अर्दहान, एंटवारी का बंदरगाह मिला।
8. तुर्की को अल्बानिया और मेसोडोनिया के क्षेत्र प्राप्त हुए तथा एपरिस पर उसका अधिकार यथावत बना रहा।
9. इंग्लैंड ने तुर्की से एक अलग उप सृंधि की इसके अनुसार निश्चित हुआ कि रूस का बालुम, कार्य तथा अर्दहान पर अधिकार बना रहेगा, परंतु यदि इसके अतिरिक्त रूस द्वारा तुर्की के अधीन किसी भी भू-भाग पर अधिकार का प्रयास किया गया उस स्थिति में इंग्लैंड तुर्की की सहायता बदलें में तुर्की ने इंग्लैंड को साइप्रस द्वीप दे दिया।

बर्लिन संम्मेलन के निर्णयों के दोष–

1. बर्लिन सम्मेलन के निर्णायको ने की सृंधि पर पूर्वविचार के पश्चात जो प्रादेशिक परिवर्तन किए उसमें दोष थे–

   (i) संतोषजनक निकालने में असफल रहा ।

   (ii) प्रत्येक बाल्कन राज्य असंतुष्ट रहा।

   (iii) आस्ट्रिया को अनावश्यक लाभ देने से नई समस्याओं का जन्म।

   (iv) रूस की महत्वाकांक्षा को रोका नहीं जा सका।

   (v) तुर्की संबंधी इंग्लैंड की नीति असफल होना।

   (vi) निर्बल राष्ट्रों की अवहेलना की जाना।

बर्लिन कांग्रेस की समीक्षा

प्रो. टेलर के अनुसार– ''बर्लिन कांग्रेस एक जल विभाजक (Water Shed) बन गई थी। सम्मेलन के पूर्व 30 वर्ष से संघर्ष और विद्रोह होते रहे थे, इसके पश्चात 35 वर्ष तक शांति बनी रही। 1913 ई. में तक यूरोप के किसी भी राज्य की सीमा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और दो नगण्य युद्धों को छोड़कर यूरोप में कहीं भी गोली नहीं चलाई गई।''

प्रो. टेलर ने बर्लिन सम्मेलन के निर्णयों को यूरोप के लिए आशवादी बतलाया परंतु उन की ओर ध्यान आकृष्ट किया जो यूरोप की शांति के लिए चुनौती बनकर उभरे। मेसोडोनिया और बोस्निया संकटों ने यूरोप में जहर घोला।

यह स्वीकार किया जा सकता है कि, बर्लिन समझौता दीर्घकालीन तक अस्तित्व में रहा। इसके तीन प्रमुख कारण थे। प्रथम, यूरोप के राज्यों में आपसी वैमनस्य था और वे विभाजित थे। द्वितीय, बिस्मार्क की कूटनीतिक गुटबंधि प्रणाली के कारण क्षेत्र में रूस और आस्ट्रिया के मध्य की रूस ले नहीं ले पाई। तृतीय, पूर्वी हुई थी कि उसका सर्वसम्मत हल निकाल संभव नही था।

''युवा तुर्क आंदोलन'' (Young Turk Movement)

20 वी शताब्दी में 'यूरोप के मरीज' तुर्की को नया जीवन प्रदान करने के लिए आटोमन साम्राज्य में एक आंदोलन चला जिसके फलस्वरूप सुल्तान अब्दुल हमीद की निरंकुशता का अंत हो गया। इस आंदोलन को चलानेवाला तुर्की का युवा वर्ग था, इसलिए इसे युवा तुर्क आंदोलन करते है।

युवा तुर्क आंदोलन अब्दुल हमीद के निरंकुश शासन के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट हुआ। सर्वविदित है कि 1887 ई. से 1908 ई. तक के हाल में तुर्की साम्राज्य पर अब्दुल हमीद ने अपना निरंकुश शासन कायम रखा। लेकिन तुर्की के इतिहास में अब्दुल हमीद के इस निरंकुश शासन का भी महत्व है। अत्याचार, निरंकुशता, और भ्रष्टाचार के वातावरण से एक लाभ अवश्य हुआ। इसके विरूद्ध जो प्रतिक्रिया हुई उसने तुर्की में उदारवादी आंदोलन की में सहायता पहुँचाई।

युवा तुर्क आंदोलन के कारणः—

1. अब्दुल हमीद का निरंकुश शासन होना।
2. यूरोप की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रभाव तुर्की पर होना।
3. अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर तुर्की की स्थिति खराब होना।
4. तुर्की में यूरोपीय शक्तियाँ का प्रवेश होना।
5. समाचार पत्र पत्रिकाओं का योगदान रहना।

संगठन एवं संस्थाएं—

अब्दुल हमीद के द्वारा उदारवादियों पकड लिया गया और उनमें से कुछ को देश में निकाल दिया गया। तुर्की के निर्वासित उदारवादी भागकर जेनेवा आए और वहीं से सुल्तान के खिलाफ एक संगठन करने लगे। उनका उद्देश्य तुर्की से राजतंत्र का अंत कर गणतंत्र की स्थापना करना था उदारवादियों ने जेनेवा में एक 'एकता और प्रगति समिति' का निर्माण किया और वहीं से सुल्तान के निरंकुश शासन का अंत करने का प्रयास करने लगे।

युवा वर्क क्रांति 1908 ई.

इन परिस्थितीयों में विदेशो में निर्वासित भक्त निर्मरित तुर्की देश साम्राज्य से बाहर अपने आपको संगठित करने लगे। तुर्की की उन्नति ओंर सुल्तान के निरंकुश शासन का अंत करने का यही एकमान उपाय था इस तरह की पहला संगठन 1889 इ. में इस्ताबूल में हूआ। इस्ताबूल मे इम्पीरियल मिलिटरी कॉलेज में इब्राहिम तेमो नायएक अल्बेनियन छात्रों के इस दल ने गुप्त समिति का संगठन किया। इस संगठन का नाम 'एकता और प्रगति समिति' रखा गया। थोडे ही दिनों में अन्य सैनिक विद्यालयों के नाम इसमे

टिप्पणी

सदस्य हो गए इस समिति का संगठन इटली की करबोनरी सोसायटी के आधार पर हुआ था, इसी ही तरह यह राष्ट्रीय भावनाओं में ओतप्रोत थी और इसका मुख्य उद्देश्य तुर्की को मरने से बचाना था। देशो में हेजन ने ''आधुनिक इतिहास का सबसे अधिक बंधुत्वपूर्ण आंदोलन की संज्ञा दी है।''

युवा तुर्क आंदोलन के उद्देश्य–

1. तुर्कीकी एकता एंव अखंडता की रक्षा करना।
2. संसदीय शासन की स्थापना करना।
3. स्वतंत्रता न्याय एंव भ्रातृत्व की स्थापना करना।
4. तुर्की में आधुनिकीकरण की स्थापना करना।
5. विश्व में तुर्की को प्रतिष्ठित स्थान प्रदान करना।

युवा तुर्क की असफलता के कारण–

1. शासन संचालन का अनुभव प्राप्त न होगा।
2. अपनी नीतीयों सें दूर न रहना।
3. प्रशासनिक अनुभव हीनता।
4. तुर्की करण की नीति को प्रोत्साहन देना।
5. आंतर्राष्ट्रीय स्तर तुर्की की स्थिति दयनीय होना।

युवा तुर्क आंदोलन के प्रभाव–

1. जनतंजात्मक शासन पध्दति का भी प्रवेश होना।
2. सेना में सुधारवादी प्रवृत्ती को जन्म देना।
3. अंतर्जातीय वैमनस्य का विकास।
4. अंतर्राष्ट्रिय राजनीति पर प्रभाव पड़ना।

समीक्षा– इस प्रकार माना जा सकता है कि, युवा तुर्क आंदोलन ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से आंदोलन साम्राज्य संघ विश्व राजनीति को प्रभावित किया। यही कारण है की हेजन महोदय ने युवा तुर्क आंदोलन को तुर्की एवं यूरोप के इतिहास की दृष्टी से अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना माना है।

बाल्कन युध्द 1812-13 ई. (Balkan Wars)

विश्व इतिहास को प्रभावित करने वाली महत्वपुर्ण घटनाओं में दोनों बाल्कन युध्दों 1912-13 का महत्वपूर्ण स्थान है। बाल्कन प्रदेश में आने वाले क्षेत्र में निवास करने वाली यूनानी, सर्व बल्गेरियन आदि जातियों मैं सांस्कृतिक विभिन्नता कारण पारंस्परिक संबंध अच्छें नहीं थे। परंतु युवा तुर्को की नृशंस नीतियों ने उन्हें एक सुर के रुप में संग्रहित होने की ओर प्रेरित किया। वे जिस गुट के रुप में संगठित हुए उसे इसे इतिहास में बाल्कन लीग (Balkan Leagae 1912) के नाम से जाना जाता है।)

टिप्पणी

प्रथम बाल्कन युध्द के कारण–

प्रथम बाल्कन युध्द के कारण निम्नलिखित थे–

1. **युवा तुर्की की तुर्कीकरण की नीति–** युवा तुर्की ने यह सबसे साम्राज्य में एकता स्थापित करने के लिए साम्राज्य में निवास करने वाली अन्य जातियों की सांस्कृतिक भावनाओं का ध्यान नहीं रखा था परिणामस्वरुप वे युध्द हेतू प्रेरित हुए।
2. **गैर तुर्कियों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास–** अपनी संस्कृति एवं के विलय के प्रश्न ने गैर तुर्कीयों में राष्ट्रीयता की भावना को प्रज्वलित कर दिया और वे तुर्की के अधीन न रहकर अब अपनी स्वंतत्रता की मांग करने लगे थे।
3. **तुर्की साम्राज्य में सहजातीय एवं सहधार्मिक भावनाओं का अभाव–** आटोमन साम्राज्य में सहजातीय एवं सह धार्मिक भावनाओं के प्रभाव में प्रथम बाल्कन युध्द की दिशा में महत्वपुर्ण भूमिका मिलाई। अलग-अलग प्रदेशों में निवास करने वाले लोग संघ समान धर्म, जाति एव संस्कृति को, आधार मानकर एक राज्य के रुप में संगठित होने पर विचार करने लगे।
4. **तुर्की साम्राज्य की निर्बलता–** तुर्की साम्राज्य अपनी आंतरिक कलह को दूर करने में असफल थी, इसी कारण गैर तुर्की जातियों ने अपनी सुरक्षा सर्व न्याय मिलने हेतु अलग राज्य के मांग को प्रस्तुत किया।
5. **विदेशी हस्तक्षेप–** तुर्की साम्राज्य में विदेशों से हित निहित थे, कभी-कभी वे परस्पर विरोधी थे। सहधार्मिकता और सहजातीयता के सिध्दांत पर रुस और सुर्बिया एक दूसरे के मित्र थे इसी प्रकार तुर्की की समस्या के प्रश्न पर जर्मनी और जर्मनी और आस्ट्रिया समर्थक थे। ऐसे ही तुर्की साम्राज्य की छोटी सी घटना विदेशी हितों के कारण बड़ा रुप धारण कर लेती थी।

प्रथम बाल्कन युद्ध की घटनाएं

1. यूनान बल्गारिया सर्बिया एवं मॉटीनीग्रों द्वारा तुर्की के विरुद्ध युध्द की घोषणा 15 अक्टुबर 1912 ई. के जवाब में तुर्की ने भी 18 अक्टूबर को यूध्द की घोषणा कर दी।
2. नवंबर 1912 ई. के प्रथम सप्ताह तक यूनान में मेसीडेनिया पर अधिकार कर लिया। सोलोनिका बंदरगाह भी इसके अधीन हो गया।
3. बल्गारिया ने तुर्को को कुर्क किलीसी एवं लूसी बर्गस के यूध्दों में करारी पराजय दी।
4. सर्बिया ने मोनीस्टार पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस पर ग्यूशाफ ने लिखा हैं कि, **''बाल्कन संघ के चार छोटें देशों जिनकी जनसंख्या केवल 10,000,000 के लगभग थी, महान भाक्ति आंदोलन साम्राज्य को एक माहके भीतर ही तहस नहस कर दिया।''**
5. तुर्की के स्थिति को देखते हुए संधि ने बात चिती प्रारंभ कर दी। दिसंबर 1912 में लंदन में एक सम्मेलन आयोजन किया गया, परंतु बल्गारिया द्वारा एंड्रियानोपल की मांग प्रश्न पर तुर्की की सहमति न होने से मार्च 1801 ई. में युध्द प्रारंभ हो गया।

6. पुनः युध्द प्रारंभ होने से मई तक तुर्की को जैमिना, एंड्रियानोपल एंव स्कुटारी भी छिन गया। अतः विवश होकर तुर्की ने संधि हेतू प्रार्थना की और 30 मई 1913 को लंदन की संधि ने प्रथम बाल्कन युध्द का अंत हुआ।

लंदन की संधि – (30 मई 1913 ई.)

शर्ते–

1. क्रीट पर यूनान का अधिकर मान लिया गया।
2. यूनान द्वारा इजियन सामर के जिन टाप्रभो पर अधिकार कर लिया गया था, इसके संबंध में युरोप की महान शक्तियों का फैसला करेगा।
3. अल्बानिया की सीमाओं का निर्धारण यूरोप की महान शक्तियों के निर्णय पर छोड़ दिया गया।
4. इजियन सागर पर अवस्थित एनोज के लगभग संपूर्ण तुर्की प्रदेश को मित्र राष्ट्रों को सौपे दिया गया।

इस प्रकार लंदन की सृंधि मे यूरोप स्थित तुर्की साम्राज्य का लगभग अंत कर दिया गया। हेजन के अनुसार, ''युरोप में सुल्तान की सत्तनत प्रायः शून्य बिन्दु तक पहुच गई। पांच शताब्दियों के गौरवपूर्व अधिकार के पश्चात उसने अपने को युरोप से प्रायः बहिष्कृत पाया।''

द्वितीय बाल्कन युध्द 1913 ई.

द्वितीय बाल्कन युध्द के कारण – प्रथम बाल्कन युध्द की समाप्ति पश्चात हुई लंदन की संधि दीर्घ काल तक लागू नहीं रही। जून 1913 ई.से द्वितीय बाल्कन युध्द प्रारंभ हो गया। इसके निम्नलिखित प्रमुख कारण थे।

1. **भू-भागों के बंटवारे के प्रश्न पर बल्कान राज्यों में मतभेद**– लंदन संधि द्वारा तुर्की से प्राप्त भू-भाग के बंटवारे को लेकर मतभेद हो गया।

   युनान बल्गारिया अधिक से अधिक भाग हड़पना चाहते थे, सभी राज्य अपने निजी स्वार्थ के लिए एक दूसरे के विरोधी हो गए।
2. **सर्बिया और बल्गारिया ही परंपरागत शत्रु भावना**– अनेक कारणों से दोनों मध्य शत्रुता चली आ रही थी। मेसीमोनिया के विभाजन को लेकर यह शत्रुता और मुखर हो गई।
3. **ऑस्ट्रिया के स्वार्थ**– सर्बिया हो एड्रियाटिक तक पहुंचने का मार्ग प्राप्त नहीं हुआ इसके मूल में ऑस्ट्रिया की योजना थी। ऑस्ट्रिया को सर्बिया के नेतृत्व में बड़े स्लाव के निर्माण से अपने साम्राज्यों के लिए खतरा दिखता था। अत, उसने सर्बिया का सदैव विरोध किया अल्बानिया राज्य के निर्माण में ऑस्ट्रिया की रुचि सर्बिया के विस्तार को रोकने की नियत से थी। इस प्रकार ऑस्ट्रिया के स्वार्थों के कारण द्वितीय बाल्कन युध्द की युध्द भूमि तैयार हुई।
4. **प्रमुख युरोपीय शक्तियों की भूमिका**– लंदन की संधि के उपरांत बाल्कन राज्यों में उत्पन्न आपसी मतभेदों को बढ़ाने में बड़ी यूरोपीय शक्तियों ने महत्वपूर्ण भाग लिया। सर्बिया का मित्र रुस था और रुस के साथ उसके मित्र इंग्लैंड एवं फ्रांस थे दूसरी और बल्गारिया मित्र ऑस्ट्रिया था एवं ऑस्ट्रिया का मित्र जर्मनी उसके साथ था।

5. **तुर्की के स्वार्थ**– तुर्की की रुचि इसमें थी बकन संघ टूट जाए और उनमें आपसी युध्द हो ऐसा होने पर तुर्की अपने खोए हुए उस साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने की आशा कर सकता था।

युद्ध की घटनाऐं–

1. मेसीडोनिया के विभाजन को लेकर जब कोई संतोषजनक समाधान सहीं निकला तब जून 1913 में बल्गारिया ने सर्बिया पर आक्रमण कर दिया।
2. मांटीनिग्रो यूनान एवं रुमानिया बल्गारिया से असंतुष्ट थे, अतः वे भी सर्बिया के पक्ष में बल्गारिया के विरुध्द युध्द में शामिल हो गए।
3. तुर्की भी मित्र राष्ट्रों के पक्ष में शामिल हो गया।
4. बल्गारिया को चारों ओर से घेर लिया गया परिणामस्वरुप उसकी पराजय हुई 31 जुलाई 1913 ई. को युध्द विराम हुआ।

बुखारेस्ट की संधि; 10 अगस्त 1913 ई.

बुखारेस्ट की संधि के अनुसार–

1. बल्गारिया ने रुमानिया को दोब्रुजा प्रदेश दिया। इसमे झाइलिष्ट्रया का दुर्ग भी सम्मिलित था।
2. सर्बिया को संपूर्ण दक्षिणी मेसोडोनिया और मोनिस्टर क्षेत्र प्राप्त हुआ।
3. युनान की दक्षिणी मेसोडोनिया, संघटित, सेलोनिका एवं एजियत सागर पर स्थित कैनेला बंदरशाह प्राप्त हुआ।
4. मांटिनीग्रो को नीवीबाजार के संजक पश्चिमी भाग प्राप्त हुआ।
5. बल्गारिया के पास पश्चिमी थ्रेस एवं डेडीगाच बंदरगाह के निकट एक संकरी पट्टी रह गई, जिनमे वह एजियन सागर तक पहुंच सके।

इस संधि के फलस्वरुप बल्गारिया को मेसोडोनिया का बहुत बड़ा भाग छोड़ना पड़ा दस लाख से अधिक बल्गार विदेशी सत्ता में रहने से विदेशी हुए। कैवेला बदंरगाह निकल जाने से बल्गारिया के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

बाल्कन युध्दों के परिणाम/प्रभाव युध्द–

1. **तुर्की के यूरोपीय साम्राज्य का अंत**– तुर्की के युरोपीय साम्राज्य का अंत हो गया। तुर्की के पास यूरोप में कुसतुनतुनिया एड्रियानोपल बास्फोरस तथा इसके मध्य का भाग रहा। तुर्की की प्रतिष्ठा को आघात लगा। तुर्की ने अपनी प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के लिए जर्मनी की सहायता ली।
2. **बाल्कन राज्यों की सीमा में परिवर्तन**– इन युध्दों के परिणाम स्वरुप सर्बिया रुमानिया, युनान एवं मोटिनीग्रों के राज्यों की सीमा में बहुत युध्द हुए। युमान को सबसे अधिक लाभ हुआ, सर्बिया का क्षेत्र फल दुगना हो गया।
3. **बल्गारिया की महत्वाकांक्षा पर तुशारापात**– बल्गारिया को व्दितीय बाल्डन युध्द के पश्चात और अपने कई प्रदेश दूसरे बाल्कन राज्यों को दे देना पड़े। यद्यपि इसरुपि उसकी सीमाएं अभी भी विस्तृत थी परंतु प्रथम बाल्कन युध्द में प्राप्त लाभ उसे खोना पड़े।

टिप्पणी

4. **सर्बिया**– ऑस्ट्रिया के मध्य तनाव में वृध्दि – सर्बिया की एजियन सागर तक पहुंचने की महत्त्वाकांक्षा में ऑस्ट्रिया सबसे बड़ी बाधा थी, उसने अल्बानिया राज्य का निर्माण करवाकर सर्बिया की महत्त्वाकांक्षा को आघात पहुंचाया था। अतः सर्बिया ऑस्ट्रिया से अपना बदला लेना चाहता था।
5. **तुर्की के अत्याचारों से मुक्ति**– बाल्कन राज्य सदियों से तुर्की के अत्याचारों को झेल रहे थे, बल्कान राज्यों ने संगठित होकर इस शोषण से मुक्ति प्राप्त की।
6. **अपार जन-धन की हानि**– इन युध्दों में अपार जन-धन की हानि हुई मेरिअट के अनुसार – ''दोनो बाल्कन युध्दों में 24 करोंड़ 50 लाख पाउंड खर्च होने का अनुमान है लगभग 3 लाख 48 हजार लोग मारे गए अथवा घायल हुए।
7. **प्रथम विश्व युध्द की भूमिका**– बाल्कन युध्दों में प्रथम विश्व युध्द के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने में महत्त्वपूर्ण लिए निभाई। प्रो. के अनुसार ''बाल्कन युध्दों का परिणाम यह हुआ कि यूरोप के सभी राज्यों में शास्त्रोस्त्रों की होड़ प्रारंभ हो गया और इसका यूरोप की शांति पर गंभीर प्रभाव पड़ा।''

शीपरो के अनुसार– ''बाल्कन युध्दों ने इतनी समस्याएँ उत्पन्न कि जिन्होंने यूरोपीय शांति को समाप्त कर दिया, और यह युध्द भावी वैमनस्य के युध्द का कारण बना।''

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

4. बर्लिन की संधि किस वर्ष हुई –
   (क) 1877 ई. (ख) 1878 ई.
   (ग) 1879 ई. (घ) 1880 ई.
5. युवा तुर्क आंदोलन प्रारंभ हुआ –
   (क) 1908 ई. (ख) 1910 ई.
   (ग) 1912 ई. (घ) 1913 ई.
6. प्रथम बाल्डन युध्द के पश्चात संधि हुई –
   (क) बर्लिन संधि (ख) लंदन संधि
   (ग) बुखारेस्ट संधि (घ) सेंटस्टीकेनो संधि
7. द्वितीय बाल्डन युध्द हुआ –
   (क) 1911 ई. (ख) 1912 ई.
   (ग) 1913 ई. (घ) 1914 ई.

2.5 1905 ई. की रूस की क्रांति (1905 A.D. Russia's Revolution)

भूमिका– रुस में निकोलस द्वितीय के निरंकुश शासन से जनता त्रस्त हो चुकी थी उसके शासन काल में रुस में किसी का सम्मान तथा जीवन सुरक्षित नहीं था देश में किसानों की दशा दयनीय हो गई थी यूक्रेन के दो प्रांतों में कृषकों ने विद्रोह कर दिया, भ्रष्ट नौकरशाहों ने जनता पर घोर अत्याचार किए। लोगों को मनमाने दंग से गिरफतार कर दंडित किया गया जनता की स्वतंत्रता को पूरी तरह कुचल दिया गया। गैर रुसियों पर अत्याचार किए गए। जनता पर करों का भारी बोझ डाल दिया। दूसरे जापान द्वारा रुस की पराजय के परिणामस्वरुप जनता ने भारी रोष उत्पन्न हो गया इन्हीं सभी परिस्थितियों ने 1905 ई. की क्रांति को जन्म दिया।

इस क्रांति के परीणाम स्वरुप उपमिकों में संगठन शक्ति का विकास हुआ उद्योगपतियों का राजनीति के प्रति ध्यान आकर्षित किया। किसानों में संगठन तथा राजनीतिक चेतना का संचार हुआ और यह क्रांति रुस की 1917 की क्रांति का आधार बनी।

क्रांति के कारण–

1. **निकोलस द्वितीय का निरंकुश शासन**– निकोलस द्वितीय निरंकुश शासक था। वह थोर प्रतिक्रियावादी सलाहकारों के परामर्श से शासन चलाने लगा। जार के भ्रष्ट नौकरशाहों ने जनता की कठोरतापूर्वक दबा दिया। लोंगों को मनमाने ढंग से गिरफतार कर दंडित किया गया और विश्वविद्यालयों तथा प्रेस पर कठोर प्रतिबंध लगा दिया गया। जनता की स्वतंत्रता पूर्ण रूप से कुचल दी गई। इससे जनता में सरकार के विरूध्द भयंकर ज्वाला फट पड़ी थी।
2. **रूस-जापान युध्द में रूस की पराजय** – 1904 ई. में रूस-जापान युध्द हुआ। जिसने शासन की अयोग्यता एवं अनके भ्रष्टाचार को उजागर किया। युध्द में रूस की सेनाओं की पराजय के समाचारों से जनता में जार के निरंकुश एवं निकम्मे शासन के विरूध्द असंतोष और रोष बढता जा रहा था। रूस की जनता ऐसे शासन को हटाना चाहती थी।
3. **किसानों की दयनीय दशा** – उस समय रूस की आर्थिक दशा दयनीय थी। कृषकों की स्थिति निरंतर बिगड़ती जा रही थी। निरंकुश शासन ने भली जनता पर नए करो का लाभ डाल दिया। ये कर रेलों औंर सेनाओं पर हो रहे खर्च को दूर करने के लिए लगाए गए। कर भार गरीबों ओंर किसानों पर अधिक पडा। किसानों ही स्थिति यह हो गई थी कि वे जितना कमाते थे, वह सब करों मे चला जाता था।
4. **समाजवादियों का प्रभाव** – इस समय रूस में समाजवादियों का प्रभाव बढ़ने लगा था। किसानों की बिगड़ी हुई दशा से क्रांतिकारी समाजवादीयों के दल को अपना प्रचार कार्य बढाने का अवसर मिल गया। इसी काल में आर्थिक मंदी के कारण मजदूरों का स्थिति भी बिगडने लगी थी, प्लेहषे नायक नेता ने जनतंत्रीय समाजवादी दल का गठन किया और इसने मजदूर तथा किसानों को सरकार के विरूध्द संगठित प्रमुख सुरक्षा अधिकारी के नेतृत्व में मजदूर संघ बनाए गए।

टिप्पणी

प्रदर्शन किए गए, हड़ताले की गई। इन प्रदर्शनों का पुलिस ने अमानवीय ढंग से दमन किया।

5. **गैर रूसियों का असंतोश**– निकोलस द्वितीय ने गैंर रूसियों के साथ बहुत ही कठोरता का बर्ताव किया। यहूदियों की सामूहिक हत्याएं की गई। बाल्टिक प्रदेशों में जर्मनी लिथूनिया में यहू दिनों और फिनलेंड में फिनों पर और अत्याचार दिए गए। इन प्रदेशों में रूसी भाषा और रूसी चर्च की जबरदस्ती लादा गया। यही जो भी आंदोलन इस उनको कठोरता पूर्वक कुचल दिया गया।

6. **सैनिक असंतोष**– रूसी सेना में असंतोष व्याप्त था क्योंकि सैनिकों को जो सुविधाएं मिलनी चाहिए, उनका रूस में अभाव था। सैनिकों को हथियार, बर्दी खान-पान तथा अन्य सुविधाएं निम्न स्तर की थी। क्रांतियाँ युध्द तथा जापान के युध्दों में सेना की पराजय हुई। इसमें सेना का मनोबल गिरा। रूस जापान युध्द के समय बहुत से सैनिकों को वर्दियों तक नहीं मिल सकी थी। इससे स्पष्ट है कि, एक ओर असंतुष्ट थी और दूसरी जनता भी सेना से असंतुष्ट थी।

7. **उदारवादी सुधारों की असफलता**– जुलाई 1905 ई. में क्रांतिकारी समाजवादी दल में ही हत्या कर दी थी। उसके पश्चात प्रिंस मिर्सकी गृहमंत्री बना वह उदार तथा दयालु प्रकृति का व्यक्ति था। उसने विरोध की भावना को कम करने के उद्देश्य से समाचार पत्रों पर से सेंसर हटा दिया और प्लेहवे के समय मैं निर्वासित कुछ व्यक्तियों को पुनः रूस में प्रतिष्ट होने की अनुमति दे दी। इसके अतिरिक्त उसमें जेमस्तवों स्वायत्त संस्थावों के प्रति इस प्रतिनिधियों का यह सम्मेलन बुलाया। यह सम्मेलन सेंटपीटर्सबर्ग में हुआ जिसमें प्रमुख उदारवादी नेताओं ने भाग लिया। इस सम्मेलन ने सरकार के सामने कुछ मांगे प्रस्तुत कीं, इसमें व्यैक्तिक स्वतंत्रता धर्म भाषण लेखन यह प्रमुख मांगे थे। रूस के सम्राट ने कुछ प्रशासकीय सुधारों को मानने का आश्वासन दिया, किंतु ऐसा नही किया। अतः सुधारों की असफलता ने क्रांति को अनिवार्य बना दिया।

क्रांति की घटनाएँ–

खूनी रविवार की घटना– 22 जनवरी 1905 ई. की फादर गेपेन के नेतृत्व में मजदूरों का विशाल जूलूस अपनी लोगों के साथ राजमहल की ओर चला। यह जुलूस जब राज महल के निकट पहुंचा तो सैनिकों ने गोली चला दी, जिसमे अनेक सैनिक मारे गए। कादर गेपेन भी घायल हो गए। 22 जनवरी का यह रविवार बर्वरता की कहानी कहता था। अतः उसे 'खूनी रविवार' या 'लाल रविवार' कहा जाने लगा। यह 1905 ई. की क्रांति का आरंभ था।

22 जनवरी 1905 ई. की घटना के पश्चात पूरे देश में सामूहिक रूप से निरंकुशता का अंत की माँग की जाने लगी। मास्को, रिगाँ, वारसा, बिलना आदि बड़े नगरों में हड़ताले हुई। अमिकों व सैनिकों के मध्य संघर्ष हुआ तथा कई व्यक्ति मारे गए।

इन घटनाओं से गृहमंत्री मिर्सकी को त्यागपत्र देना पड़ा। इसका स्थान बुलाईगिन ने लिया। धीरे-धीरे सभी क्षेत्रों में उपद्रव होने लगा। कृषकों ने विद्रोह कर जमीदारों को लूटा, पुलिस अधिकारियों की हत्या की। विद्यार्थियों, रेल्वे, कर्मचारियों, अल्पसंख्य, असंतुष्टों आर्मिनियनों ओंर तातारों ने विद्रोह किया/बाल्टिन प्रांतों में कृषकों

ने क्रांतिकारी समितियों का शासन स्थापित किया 17 फरवरी 1905 ई. के जार के चाचा कृष ग्रैंड ड्यूक ऑफ सर्जे की हत्या कर दी गयी। नौ सेना ने भी विद्रोह किया।

इस परिस्थितियों में 3 मार्च 1905 ई. को जार ने घोषणा की, ''विद्यार्थी का प्रास्तावों तैयार करने तथा उन पर विचार विमर्श करने के लिए जनता द्वारा चुने हुए योग्यतम व्यक्तियों को आंमत्रित किया जाएगा।'' जार ने कुछ सुविधाओं की घोषणा की, परंतु उनसें क्रांतिकारी संतुष्ट नहीं हुए। रूस में सर्दत्र हड़ताले एंव उपद्रव बढ़ते जा रहे थें। इसी समय जेम्सस्तवो ने व्यावसायिक संघो से सहयोग कर ''संघो का संघ'' बनाया। मई 1905 ई में ही कृषक संघ की स्थापना हुई।

19 जून 1905 ई. को जेम्सस्तवो के प्रतिनिधि मंडल ने जार से मिलकर राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा को शीघ्र बुलाने की प्रार्थना की जार ने इसके उत्तर में कहा ''वह जनता के प्रतिनिधि को आमंत्रित करने के निर्णय पर अटल है।'' 19 अगस्त को बुलाइगिन संविधान प्रस्तुत किया गया परंतु संविधान का प्रस्ताव किसी को संतुष्ट नहीं कर सका।

अक्टूबर 1905 ई. तक हड़तालो की संख्या में वृध्दि ने आम जीवन को अस्त व्यस्त कर दिया। सेंट प्रोटर्स में मजदूर प्रतिनिधियों की परिषद सरकार का रुप धारण कर लिया।

इन घटनाओं से चितिंत होकर जार निकोलस द्वितीय ने 30 अक्टूबर 1905 ई. को घोषणा पत्र प्रकाशित किया। इस अक्टूबर घोषणा पत्र में :–

1. अंतः करण ही स्वतंत्रता, भाषण, लेखन, सम्मेलन करने तथा संख्या का संगठन करने की स्वतंत्रता का वचन दिया गया।
2. विस्तृत मताधिकार के आधार पर निर्वाचित ड्यूमा को की पूर्ण वैधनिक शक्ति प्रदान करने का वचन दिया गया।

अक्टूबर की घोषणा द्वारा इस में संवेधानिक शासन की स्थापना के लिए महत्त्वपूर्ण कदम लगाया गया। इस घोषणा पत्र से क्रांतिकारियों में फुट पड गई। मध्यम मार्गी दल इस घोषणा पत्र से संतुष्ट था परंतु संवैधनिक समतंत्रीय दल घोषणा से असंतुष्ट था। क्रांतिकारी समाजवादी दल, समाजवादी जनसंत्रीय दल, कृषक स्वंशासिक भी इससे असंतुष्ट थे। शासन मे विरोधियों में फूट डालकर उनके दमन की नीति अपनायी। इसी समय प्रतिक्रिया वादियों औंर निरंकुश सता के समर्थको ने 'सच्चे रूसी' नाम से संगठन बनाकर प्रलिस की दमन नीति का समर्थन किया।

नवंबर में सेंट पीटर्स वर्ग तथा दिसंबर में मास्को में हड़ताल हुई। हड़तालियों और सैनिकों के मध्य मास्को के संघर्ष में 1000 से अधिक मजदूर मारे गए। 1905 ई. के अंत तक क्रांति समाप्त हो गई।

क्रांति की असफलता के कारण–

1905 की रूसी क्रांति असफल हो गई। इस क्रांति का जार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा राजतंत्र विरोध प्रतिक्रिया रूस के शासन को वैधानिक बनाना चाहती थी उनके प्रयास निरर्थक रहे।

1905 ई. की क्रांति की असफलता के अनेक कारण थे–

1. जार विरोधी राजनीतिक दलों में एकता नहीं थी।
2. रूस के सरकारी अधिकारीयो ने पूर्ण निष्ठा के साथ जार का साथ दिया।

3. सभी सेना जार के साथ थी और इसने निरंकुशता, प्रतिक्रियावाद और रूढ़िवाद की रक्षा के लिए क्रांतिकारियों के दमन में कोई कमी नही थी।
4. गिरिजहारों ने जार की निंकुशता का समर्थन किया।
5. यूरोप में जर्मनी और आस्ट्रिया जैसे देशों ने जार का साथ दिया, क्योंकि वे क्रांति की लहरें उनके देशों तक फैलने से रोकना चाहते थे।

1905 ई. की क्रांति का प्रभाव/परिणाम/महत्व

1905 ई. की क्रांति असफल हो गई, परंतु रूस के इतिहास में उसको महत्वपूर्ण स्थान है। **प्रो. कीप के अनुसार – '' रूस के इतिहास में एक नए युग का आरंभ हुआ।''**

1. **संवैधानिक शासन की स्थापना का प्रयास**– इस क्रांति के कारण जार को संवैधानिक शासन की स्थापना की दिशा में महत्त्वपूर्ण घोषणा करनी पड़ी। ड्यूमा निर्वाचन हुआ।
2. **मजदूर वर्ग का संगठित होना**– क्रांति के कारण ही मजदूरों को संगठित होने का अवसर मिला। मजदूर संखों का निर्माण हुआ। सेंट पीटर्स वर्ग में मजदूरों के प्रतिनिधियों की परिषद में मजदूरों की सरकार का रूप धारण किया।
3. **उद्योगपतियों की रूचि**– क्रांति के पूर्व उद्योगपति राजनीति में रूचि नहीं लेते थे। परंतु क्रांति के पश्चात सरकार ने मजदूरों के लिए कुछ सुधार किए। अतः उन्होंने भी संगठित होकर शासन पर दबाव डालने की नीति अपनायी।
4. **कृषक संघ की स्थापना**– कृषकों ने क्रांति में सक्रियता से भाग लिया और जमींदारों के प्रभाव को समाप्त करने का प्रयास किया। उन्होंने स्वयं को संगठित एवं शक्तिशाली बनाने के लिए कृषक संघ की स्थापना की।
5. **अ-रूसी जातियाँ के प्रति नीति**– इस क्रांति के फलस्वरूप अ-रूसी जातियों के प्रति जार की नीति में परिवर्तन हुआ। रूसी जार ने फिनलैंड में रूसी करण की नीति को लगाकर फिनलैंड की डायट (संसद) की मान्यता प्राप्त की।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

8. 1905 ई. की रूसी क्रांति का कारण था–

   (क) जार की निरंकुशता (ख) प्रशासनिक शिथिलता

   (ग) जापान से रूस की पराजय (घ) इनमें से सभीं

9. 'खूनी रविवार' की घटना कहाँ घटित हुई –

   (क) सेंट पीटर्स वग (ख) मास्को

   (ग) म्यूनिरव (घ) लंदन।

10. 'खूनी रविवार' की तिथि थी –

   (क) 22 जनवरी 1905 (ख) 22 फरवरी 1905

   (ग) 22 मार्च 1905 (घ) 22 मार्च 1906

2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

टिप्पणी

1. (क)
2. (क)
3. (क)
4. (घ)
5. (घ)
6. (ख)
7. (ख)
8. (ग)
9. (ख)
10. (क)

2.7 सारांश (Summary)

शेपीरो के अनुसार, ''इस क्रांति को पूर्णतः असफल नहीं कहा जा सकता वे लिखते है –''1905 ई. की क्रांति वहां के लोगों को शिक्षित करने का पहला महान कदम था इसने उन्हें सिखाया कि जिस राजसत्ता को वे ईश्वर की देन मानकर आदर करते है, वह क्रूर एवं स्वार्थी है।''

2.8 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **विभाजन** – बांटना
- **प्रतिद्वंदी** – सामने से मुकाबला करना
- **समीक्षा** – सार
- **निरंकुश** – एक का शासन या जिस पर कोई अकुंश न हो।

2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. पूर्वी समास्या से आप क्या समझते है?
2. अफ्रीका विभाजन का वर्णन कीजिए।
3. नवीन सम्राज्यवाद के उदय के कारणों पर प्रकाश डालिए।
4. युवा तुर्क आंदोलन से क्या अभिप्राय है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. युवा तुर्क आंदोलन के कारण एवं परिणामों पर प्रकाश डालिए।
2. प्रथम बाल्कन युध्द के कारण एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए।
3. रूस की क्रांति 1905 ई. के कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डालिए।
4. रूस की क्रांति 1905 ई. के असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिते हुए महत्व को स्पष्ट कीजिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. कैटलबी सी.डीम – सहिल्ड्री ऑफ कॉमर्स टाइम्स।
2. हेजन सी डी – मॉडर्न यूरोपिय हिस्ट्री।
3. चौहान देवेन्द्र सिंह – यूरोप का इतिहास – भाग 1 एवं 2।
4. फाइप थी. एच – हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न यूरोप।
5. गूच जी. पी. – हिस्ट्री ऑफ यूरोप।
6. जैन एवं माथुर – विश्व का इतिहास।
7. पांडेय धनपति – आधुनिक रशिया का इतिहास।
8. वर्मा, दीनानाथ – अंतर्राष्ट्रीय संस्था।
9. मेहता बी. एस. – यूरोप का इतिहास।
10. पाल बी. ई. – यूरोप का इतिहास।

इकाई 3 प्रथम विश्व युध्द, 1914-1916, 1917 ई. की रूस की क्रांति, विल्सन के चौदह सूत्र, पेरिस शांति सम्मेलन एवं वसार्य की संधि, राष्ट्र संघ

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 प्रथम विश्व युध्द के कारण, परिणाम एवं प्रभाव
3.3 1917 ई. की रूस की क्रांति
3.4 'वुड्रो विल्सन' के चौदह सूत्र
3.5 पेरिस का शांति सम्मेलन एवं वर्साय की संधि
3.6 राष्ट्र संघ
3.7 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.8 सारांश
3.9 मुख्य शब्दावली
3.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.11 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय (Introduction)

प्रथम इकाई में प्रथम विश्व के कारण परिणाम एवं प्रभाव का उल्लेख प्रमुख रूप से किया जाएगा।

- इस इकाई की द्वितीय भाग में रूसी की क्रांति (1917 ई.) के कारण परिणाम, प्रभाव का अध्ययन प्रस्तावित है।
- इस भाग में प्रथम विश्व युध्द के बाद विल्सन के 14 सूत्र का उल्लेख किया जाएगा।

3.1 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को निम्न विषय से अवगत कराना है।

- 1914 ई. से 1919 ई. तक हुए प्रथम विश्व युध्द – कारण, घटनाएं एवं प्रभावों का विवरण।
- 1917 ई. की रूस की क्रांति का विवरण।
- विल्सन के चौदह सूत्रों को जानना जो प्रथम विश्व युध्द के पश्चात बनाए गए।
- पेरिस शांति सम्मेलन एवं वर्साय संधि का विवरण।
- राष्ट्र संघ स्थापना की आवश्यकता एवं कार्यों का विवरण।

टिप्पणी

3.2 प्रथम विश्व युध्द के कारण, परिणाम एवं प्रभाव (The Causes, Consequences and Effects of the First World War)

भूमिका (Introduction)

यूरोप की राजनीति अपना रूप इस प्रकार बना रही थी कि निकट भविष्य में एक महायुध्द का संसार में सूत्रपात होने वाला है। बिस्मार्क ने जब बर्लिन कांग्रेस में एक **'ईमानदार दलाल'** की हैसियत से काम किया तो यह स्पष्ट हो गया कि जर्मनी और रूस के संबंध अधिक समय तक अच्छे नहीं रह सकते। इस परिस्थिति से आस्ट्रिया तथा जर्मनी के निकट आने की संभावना बन गई। बिस्मार्क द्वारा फ्रांस को एकांत में रखने की नीति ने फ्रांस के लिए स्पष्ट कर दिया कि वह अपना नया मित्र हो। रूस और जर्मनी के अनिश्चित संबंध ने फ्रांस का अलग गटबंधन बनने लगा। इस तरह इन तीनों देशों का मेल एक अद्वितीय कूटनीति की क्रांति हो गई। बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही यूरोप का राजनीतिक वातावरण अधिक अशांत और विषाक्त होता गया। **गूच के अनुसार – ''यूरोप की स्थिति एक बारूद के देर के समान थी, जिसमें आकस्मिक रूप से अथवा किसी पूर्व योजना के अनुसार जलती हुई चिंगारी पड़ जाने का निश्चित परिणाम एक भयंकर विस्फोट के रूप में होता।''**

जिन परिस्थितियों के संयोग से यूरोप का राजनीतिक वातावरण विस्फोटक बना, वे कारण निम्नलिखित थे:–

1. **दल प्रथा**– प्रथम विश्व युध्द का एक अत्यंत प्रमुख कारण दल प्रथा का जन्म होना था। 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ तक यूरोप दो सैनिक दलों में विभक्त हो गया था। सर्वप्रथम 1879 ई. में जर्मनी ने आस्ट्रिया के साथ द्विराष्ट्र संधि की। शीघ्र ही इटली भी 1882 ई. में इस जल में सम्मिलित हो गया, इस प्रकार त्रिराष्ट्र संधि की स्थापना हुई। इस समय तक जर्मनी में बिस्मार्क शक्ति में था तथा उसकी वैदिशक नीति का एक प्रमुख उद्देश्य फ्रांस को रखना था, किंतु 1890 ई. में यह अधिकार दिया जाए कि यह समुद्र तट तक पहुँच सका।

   उसके पतन के पश्चात जर्मनी ने इस ओर ध्यान न दिया। अतः 1894 ई. फ्रांस तथा रूस में संधि हो गई। इंग्लैण्ड बहुत समय पूर्व से इस समय तक शानदार पृथकत्व की नीति का पालन कर रहा था, किंतु इस समय उसे अपनी सुरक्षा के लिए यह सोचने पर विवश होना पड़ा। इंग्लैण्ड ने शानदार पृथकत्व की भी नीति का परित्याग कर 1902 ई. में जापान के साथ संधि कर ली। 1904 ई. में इंग्लैण्ड ने फ्रांस की संधि की स्थापना हुई। 1907 ई. में इसमें रूस भी सम्मिलित हो गया तथा हार्दिक मैजी संबंध की स्थापना हुई। इस प्रकार यूरोप दो सैनिक दलों में विभक्त हो गया। इस प्रकार यूरोप के दो परस्पर विरोधी दलों में विभक्त हो जाते युध्द हुए होना स्वाभाविक था।

2. **गुप्त कूटनीति**– 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ से तक कूटनीति में भी भ्रष्टता व्याप्त होने लगी थी, जिसका आधार धोखा व झूठ हो गया था। संधियां गुप्त होने लगी थी जिनके विषय में जनता व अन्य देशों के राजनीतिज्ञों को कोई जानकारी नहीं रहती थी। गुप्त राजनीति एवं नीति की भ्रष्टता का उदाहरण इटली की नीति

थी। इटली यद्यपि जर्मनी एवं आस्ट्रिया के साथ त्रिराष्ट्र संधि कर चुका था, तथापि गुप्त रूप से इंग्लैण्ड एवं फ्रांस से भी मित्रता की बात कर रहा था।

3. **राष्ट्रवाद की भावना**— प्रथम विश्व युध्द का एक कारण उग्र राष्ट्रीयता की भावना का होना था। इस समय यूरोप में प्रमुख राष्ट्रवाद संबंधी आंदोलन चल रहे थे। जर्मनी में **'पान जर्मन आंदोलन'** चल रहा था, जिसका उद्देश्य जर्मनी को जो यूरोप के विभिन्न राज्यों में रह रहे थे, एक महान जर्मनी के अंतर्गत एक करना था। इसी प्रकार का एक अन्य आंदोलन '**पान स्लाव आंदोलन'** था, स्वयं को संगठित करना चाहती थी। राष्ट्रीयता की उग्र भावना के परिणाम स्वरूप राजनीतिक अराजकता उत्पन्न हो गई थी। फ्रांस व जर्मनी तथा इंग्लैण्ड व जर्मनी के निरंतर कटु हो रहे संबंधों का कारण भी राष्ट्रीयता की भावना ही थी।

4. **साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा**— यूरोप की महान् शक्तियों में से प्रत्येक देश अधिक से अधिक उपनिवेश स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील था क्योंकि देश के समान व आर्थिक कारणों से यह आवश्यक था। औद्योगिक क्रांति ने उपनिदेशों के महत्व को और भी बढा दिया था। इंग्लैण्ड व फ्रांस के पास अनेक उपनिदेश थे। जर्मनी में जब तक बिस्मार्क सत्ता में रहा, उसने इंग्लैण्ड से इस संबंध में प्रतिस्पर्धा करने का प्रयत्न नहीं किया, किंतु बिस्मार्क के पश्चात जर्मनी ने भी उपनिवेश स्थापित करने का प्रयास किया। जर्मनी की इंग्लैण्ड व फ्रांस के उपनिवेशों पर भी दृष्टि थी। ऐसी स्थिति में संघर्ष होना निश्चित ही था।

5. **सैनिकवाद की भावना**— यूरोप में 19 वीं शताब्दी के अंत उग्र सैनिक भावना का जन्म हुआ तथा तीव्रता से चारों ओर इसका प्रसार हुआ। प्रत्येक देश में सेना के विस्तार एवं हथियारों के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई। प्रत्येक देश में यह भावना दृढ होने लगी कि राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के लिए सैनिक शक्ति आवश्यक है।

6. **अंतर्राष्ट्रीय संस्था का अभाव**— प्रथम विश्व युध्द के समय तक यूरोप अथवा विश्व में कोई अंतर्राष्ट्रीय संस्था न थी, जिसके द्वारा विभिन्न देशों की समस्याओं को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाया जा सकता। अतः इस प्रकार की संस्था के अभाव में राष्ट्रों में पारस्परिक वैमनस्य बढ़ता ही जा रहा था जिसका अंत विश्व युध्द के रूप में हुआ।

7. **समाचार पत्र**— अंतर्राष्ट्रीय अराजकता को बढाने में समाचार पत्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। **प्रो. फे. के. अनुसार – ''युध्द का यह अन्य अंतनिर्हित कारण सभी महत्वपूर्ण देशों के समाचार पत्रों द्वारा जनमत में विषाक्तता फैलाना था।''** इन समाचार पत्रों ने जनता की भावनाओं को भड़काया जिससे स्थिति ओर बिगड़ती चली गयी।

8. **युध्द का तात्कालिक कारण**— सराजेवो का हत्याकांड प्रथम विश्व युध्द का तात्कालीन कारण सिध्द हुआ। महायुध्द के विभिन्न कारणों के रूप में बारूद का जो विशाल ढेर यूरोप में इकट्ठा हो गया था जिसमें विस्फोट करने के लिए सराजेवो का हत्याकांड एक चिंगारी के रूप में प्रकट हुआ। 28 जून 1914 ई को बोस्निया की राजधानी सराजेवो में आस्ट्रिया के राजकुमार आर्क ड्युक का

फर्डिनैंड तथा उसकी पत्नी की आस्ट्रियाई सर्वो ने हत्या कर दी। इस घटना से यूरोप में प्रथम विश्व युध्द प्रारंभ हो गया। इस हत्याकांड के पश्चात आस्ट्रिया ने सर्बिया को एक कठोर शर्तो वाला अल्टीमेस्स दिया और 48 घंटे के अंदर उसका उत्तर मांगा। सर्बिया ने अधिकांश शर्ते स्वीकार कर ली। इस संबंध में जर्मनी की सहानुभूति आस्ट्रियाके साथ तथा रूस की सहानुभूति सर्बिया के साथ थी। इसी के चलते प्रथम विश्व युध्द प्रारंभ हुआ।

युध्द की घटनाएँ–

1914 ई. में युध्द– जर्मनी ने बेल्जियम की तटस्थता को भंग करते हुए फ्रांस की सीमाओं में प्रवेश किया। उसका उद्देश्य पेरिस पर अधिकार करने का था, किंतु अपने इस उद्देश्य में वह अंत तक सफल हो न सका। दूसरी ओर रूस को परास्त करने मे उसने प्रारंभिक सफलता प्राप्त की। रूस की सेनाओं को जर्मनी ने टनेनबर्ग के युध्द में परास्त किया।

1915-16 ई. में युध्द– मित्र राष्ट्रों ने मैसोपोटामिया एवं गैलीपोली पर अधिकार करने का प्रयत्न किया किंतु असफल हो न रहे। इस वर्ष लड़े गए अन्य प्रमुख युध्द आस्ट्रिया द्वारा सर्बिया पर अधिकार करने का प्रयत्न करना था, जर्मनी द्वारा फ्रांस के प्रमुख दुर्ग वर्डन पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना था, जर्मनी सफल न हो सका। स्थल युध्द के साथ-साथ जल युध्द भी चल रहा था। 1916 ई. में जर्मनी एवं इंग्लैंण्ड की नौ सेनाओं में जेटलैड का प्रसिध्द युध्द हुआ जिसमें दोनों ही पक्षों की अपार क्षति हुई।

1917 ई. में युध्द– इसी समय जर्मन पनडुब्बी के कारण अमेरीका का जहाज जिसमें बारह सौ व्यक्ति थे डुब गया। अमेरिका जर्मनी के इस कार्य से अत्यंत क्रोधित हुआ और वह मित्र-राष्ट्रों का साथी बन गया। 1917 ई. की यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस वर्ष की एक अन्य प्रमुख घटना रूस में क्रांति का होना था जार के स्थान पर बोल्शेविक की साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई। बोल्शेविको ने जर्मनी को परास्त करने प्रयास किया किंतु वह असफल रहा उन्हें ब्रिज्टलीवास्क की संधि करनी पड़ी। इस प्रकार युध्द से रूस पृथक हो गया जिसमें मित्र राष्ट्रों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रथम विश्व युध्द में पहली बार वायुयानों का भी प्रयोग किया गया। लंदन शहर में हवाई बम वर्षा में हजारों नागरिकों की मृत्यु हो गई।

1918 ई. की घटनाएँ– 1918 ई. में परिवर्तन हुआ। यद्यपि इस वर्ष प्रारंभ में तो जर्मनी को विजय प्राप्त हुई तथा वह पेरिस के निकट पहुँच गया, किंतु बाद में उसकी स्थिति खराब हो गई क्योंकि अमेरिका की शक्तिशाली सेना तथा अस्त्र, शस्त्र मित्र राष्ट्रों की सहायता के लिए पहुँच गए। जर्मनी की सेनाएं प्रत्येक स्थान पर परास्त होने लगी। आस्ट्रिया की सेनाएं भी परास्त होने से जर्मनी की स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई। नवंबर 1918 ई. के प्रारंभ में जर्मनी के सेनापति हिंडनबर्ग ने विलियम कैसर द्वितीय को परामर्श दिया कि जर्मनी की आंतरिक स्थिति भी विस्फोटक हो गई। अतः वह अपने लिए सुरक्षित स्थान खोज ले क्योंकि जर्मनी की जनता किसी भी समय उसके विरूध्द विद्रोह कर सकती थी। विलियम कैसर ने हिंडनबर्ग की इस सलाह पर विशेष ध्यान न दिया अतः 8 वनंबर 1818 ई. को बर्लिन में क्रांति हो गई तथा विलियम कैसर द्वितीय को सपरिवार हालैंड भागना पड़ा। जर्मनी में गणतंत्र की स्थापना हुई तथा मित्र राष्ट्रों

से संधि वार्ता प्रारंभ हुई। 11 नवंबर 1918 ई. को जर्मनी ने युध्द विराम संधि पर हस्ताक्षर कर दिए इस प्रकार प्रथम विश्व युध्द समाप्त हो गया।

प्रथम विश्व युध्द के परिणाम एवं प्रभाव

प्रथम विश्व युध्द चार वर्ष, तीन माह और ग्यारह दिन तक चला। इस युध्द में 32 राज्य एक पक्ष में और चार दूसरे पक्ष में थे। संपूर्ण विश्व में केवल चौदह राज्य ऐसे थे जो इस युध्द में तटस्थ रहे थे यह युध्द अभूतपूर्व इसलिए था क्योंकि इतिहास में इसके पूर्व किसी भी युध्द में इतने अधिक राज्य एक साथ रणक्षेत्र में आमने सामने नहीं आए थे। यह युध्द जितना लम्बा चला परिणामों की दृष्टि से उनसे भी लंबी अवधि तक मानव जाति को पीड़ा पहुँचाता रहा।

1. **जन और धन का भारी विनाश**– इस युध्द में जनहानि हुई इस युध्द में 36 देशों के 6 करोड़ लोगों ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से भाग लिया इस युध्द में 80 लाख लोग मारे गए तथा लगभग 3 करोड़ लोग घायल तथा अपंग हो गए। एक सर्वेक्षण के अनुसार दोनों पक्षों की 13,200 करोड़ की संपत्ति नष्ट हो गई थी। युध्द ने जर्मनी को दिवालिया बना लिया था। दोनों पक्षों पर लगभग 40 हजार करोड़ का ऋण हो गया। कई देश आर्थिक रूप से अत्याधिक कमजोर हो गए।
2. **साम्राज्य तथा राजतंत्रों का समाप्ति**– प्रथम विश्व युध्द के परिणामतः जर्मनी में राजतंत्र समाप्त होकर गणतंत्र की स्थापना हो गई। रूस की जारशाही का अंत होकर रोमेनाफ वंश का राज्य समाप्त हो गया। आस्ट्रिया में हेप्स वर्ग वंश का शासन तंत्र समाप्त हो गया। टर्की की सल्तनत रसातल में पहुँच गई। राजतंत्र एवं साम्राज्यों के अंत में नवीन राष्ट्रवादी शक्तियों का जन्म हुआ।
3. **नवोदित राष्ट्रों का जन्म**– युध्दोपरांत संधियों के कारण चैकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड, हंगरी, एक्टोनिया तथा फिनलैंड नामक नवीन राष्ट्रों का निर्माण हो गया। ये राष्ट्र युध्द के पूर्व यूरोप के मानचित्र पर अस्तित्व में नहीं थे।
4. **विश्व शक्ति के रूप में अमेरिका का प्रादुर्भाव**– संयुक्त राज्य अमेरिका ने अंतिम समय पर युध्द में मित्र राष्ट्रों की ओर से युध्द में भाग लिया। अमेरिका के प्रवेश के पश्चात ही युध्द निर्णायक दौर में पहुँचा था। मित्र राष्ट्रो की विजय के पश्चात अमेरिका का गौरव बंद हो गया और संसार की राजनीति में वह विश्व शक्ति के रूप में छा गया।
5. **रूसी क्रांति**– इस युध्द से रूस में समाजवादी क्रांति का प्रथम चरण पूर्ण हो गया। जारशाही का अंत हो गया इस युध्द में जारशाही के खोखलेपन तथा रूस की हार से रूसी जनता में क्रांति की भावना तीव्र हो गई थी।
6. **विश्वव्यापी गरीबी और भुखमरी**– प्रथम विश्वयुध्द में कल कारखानों में केवल युध्द के लिए उपयोगी सामग्री तथा अस्त्र शस्त्रों का ही निर्माण हो रहा था। राष्ट्रों का व्यापार व्यावसाय चौपट हो गया था तथा दैनिक उपयोग की सामग्री बाजारों से गायब हो गई। इस युध्द के पश्चात ही 'कालाबाजारी' उत्पन्न हुई तथा विश्व की जनता गरीब एवं दरिद्री बन गई। **जर्मनी स्थित न्यूयार्क हेराल्ड के संवाददाता ने लिखा ''युध्द के पूर्व में जेब में मार्क (जर्मन मुद्रा) लेकर**

जाता था तथा टोकनियां भरकर सामग्री खरीदता था किंतु युध्द के पश्चात में टोकनी भरकर मार्क लेकर जाता है और जेब भरकर वस्तुएं खरीदता हूँ।'' मुद्रास्फीती में वृद्धि हो गई थी। जनता महंगाई से परेशान हो चुकी थी।

7. **जापान का उदय–** नवोदित एशियाई राष्ट्र जापान ने मित्र राज्यों के पक्ष में युध्द में भाग लिया था। विजय के पश्चात जापान एक एशियाई शक्ति के रूप में नहीं वरन् विश्व शक्ति के रूप में छा गया।

8. **एशिया में राष्ट्रीयता का अभ्युदय** – मित्र राष्ट्रों के एशियाई उपविभागों ने भी यूरोपीय सैनिकों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर भाग लिया था भारतीय गोरखा रेजीमेंट के शौर्य और वीरता से मित्र राष्ट्रों की सेनाएं आश्चर्यचकित हो गई। एशियाई सैनिकों ने यूरोप की धरती पर पनपते उग्र राष्ट्रवाद की लहर को प्रत्यक्ष देखा था। अतः एशिया में भी राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ।

9. **जारी आम का महत्व–** यूरोपीय राष्ट्रों के 18 वर्ष से ऊपर लगभग सभी युवक सैनिक बन गए थे। अतः आंतरिक प्रशासक में स्त्रियों का महत्व बढ़ गया। नर्स, डॉक्टर, सचिव, लिपिक, टायपिस्ट आदि गैर सैनिक कार्यों पर महिलाओं की क्षमता तथा श्रम से प्रशासन आश्चर्य चकित हो गया।

10. **नस्लों की समानता–** विश्व युध्द से पूर्व यूरोप के श्वेत नस्ल के लोग विश्व के अन्य भागों के निवासियों की तुलना में अपने को श्रेष्ठ नस्ल का मानते थे। युध्द की आवश्यकताओं के कारण यूरोप के श्वेत नस्ल वाले सैनिकों को अन्य नस्ल के सैनिकों के साथ मिलकर लड़ना पड़ा। इससे उनकी यह भाँति निराधार सिध्द हुई, क्योंकि भारत एवं अफ्रीका के सैनिकों ने उतनी ही वीरता का प्रदर्शन किया था, जितना श्वेत सैनिक करते थे।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. प्रथम विश्व युध्द का आरंभ कब हुआ–
   (क) 26 जुलाई 1914 (ख) 1 अगस्त 1914
   (ग) 10 अगस्त 1914 (घ) 26 अगस्त 1914
2. संयुक्त राज्य अमेरिका ने प्रथम विश्व युध्द में कब प्रवेश किया?
   (क) 1914 ई. (ख) 1915 ई.
   (ग) 1916 ई. (घ) 1917 ई.
3. प्रथम विश्व युध्द का तात्कालिक कारण किस देश से संबंधित था?
   (क) आस्ट्रिया (ख) सर्बिया
   (ग) इंग्लैंड (घ) फ्रांस

3.3 1917 ई. की रूस की क्रांति (1917 A.D. Russia's Revolution)

टिप्पणी

भूमिका (Introduction)

किसी भी व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन क्रांति कहलाता हैं। किसी भी देश में होने वाली क्रांति के बीज उस देश की जनता की स्थिति और मनोदशा में निहित रहते है। असंतोष को जन्म देने वाली भौतिक परिस्थितियाँ क्रांति हेतू आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करती है। ऐसी स्थिति में जब सरकार के लिए पुरानी लीक पर चलना कठिन हो जाता है और वह सफल सुधार योजना द्वारा समयानुकूल नया पथ खोजने में असमर्थ हो जाती है तो देश में क्रांति का होना स्वाभाविक हो जाता है।

18 वीं शताब्दी से 20 सदी तक का यूरोप का इतिहास क्रांतियो से भरा है। यूरोप के लगभग सभी देश क्रांति से अछूते न रहे थे, रूस भी इसका अपवाद नहीं रहा। रूस में 1917 ई. की समाजवादी क्रांति हुई जो कि यूरोप के इतिहास को ही नहीं, अपितु विश्व इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी इससे रूस को ही नहीं अपितु संसार के समस्त देशों को प्रभावित किया।

रूसी क्रांति के दो चरण

1917 ई. में रूस की दो क्रांतियाँ हुई। एक **'मार्च की क्रांति'** कही जाती है और दूसरी **'नवंबर की क्रांति'** परंतु यदि कहा जाए कि ये दोनों क्रांतियाँ एक ही क्रांति के दो दौर या दो अध्याय थे, तो अनुचित न होगा। वास्तव में, मार्च की क्रांति का स्वरूप राजनीतिक और नवंबर की क्रांति का सामाजिक दौर था।

रूस की क्रांति के कारण

1. **निरंकुश राजतंत्र**– रूस में निरंकुश शासन था। वहाँ का जार सम्राट निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी था। शासन की स्थल सेना का प्रधान सेनापति था। जार निकोलस ने संपूर्ण रूस के ऑटोक्रेट की उपाधि धारण की थी। संपूर्ण जनता उसको पिता के नाम से संबोधित करती थी। संपूर्ण पृथ्वी का छटा भाग उसके अधीन था। रूसी चर्च का भी वही प्रधान था। रूसी शासन व्यवस्था में अनेक दोष थे। प्रथम महायुध्द में भी रुसी सेना को भारी हानि उठाकर पराजित होना पड रहा था, इससे जनता स्वेच्छाचारी, एकतंत्रवादी शासन विरोधी हो गई। जनता का यह असंतोष अंत में क्रांति का कारण बना।
2. **सामाजिक विषमता**– इस समय रूस की सामाजिक अवस्था वैसी ही थी जैसी की 1789 से पूर्व फ्रांस की थी। समस्त रूसी समान दो भागों में विभक्त किया जा सकता था–
   - **(अ) अधिकारयुक्त वर्ग**– इसमें राजा के कृपापात्र कुलीन लोग थे। ये लोग राज्य की निरंकुशता तथा स्वेच्छा चारिता को आवश्यक समझते थे। यह वर्ग बहुत धनी था राज्य के अधिकांश महत्वपूर्ण पदों तथा अधिकांश भूमि पर इन्होंने अधिकार कर रखा था।
   - **(ब) अधिकार विहिन वर्ग**– इसके अंतर्गत किसान तथा मजदूर थे, इनकी आर्थिक व्यवस्था बहुत खराब थी, इनको कुलीन वर्ग के अनेक अत्याचारों

को सहन करना पड़ता था। दास प्रथा की समाप्ति पर भी इस वर्ग की दशा में कोई सुधार नहीं हो पाया था। इस प्रकार रूसी समाज में भारी आर्थिक विषमता थी। फलतः यह वर्ग संघर्ष रूसी क्रांति का एक महत्वपूर्ण कारण बना।

3. **जार निकोलस की अयोग्यता**– जार निकोलस व उसकी रानी दोनों के ऊपर रासप्ररित नामक एक सुविख्यात साधु का प्रभाव हो गया। इसमे शासन में अव्यवस्था तथा भ्रष्टाचार में वृध्दि हुई। फलतः जनता राज परिवार की विरोधी हो गई। यदि सम्राट निकोलस द्वितीय सोच-समझकर कार्य करता तो 1917 ई. की रूसी क्रांति या तो होती नहीं अथवा टल जाती। जार निकोलस द्वितीय ने अपनी मूर्खता से इस क्रांति को अनिवार्य बना दिया।

4. **जार की रूसीकरण की नीति**– रूस में अनेक अल्पसंख्यक जातियाँ रहती थी, जार सम्राट उनका रूसीकरण करना चाहता था। अतः वे जार की विरोधी हो गई और उन्होंने भी जार के विरूध्द आंदोलन में सक्रिय भाग लिया।

   डा. बौध्दिक क्रांति– टाल्सटाय टगेनेव तथा डोस्टोविस्की के उपन्याओं ने रूस की शिक्षित जनता को बहुत प्रभावित किया। इसी प्रकार मार्क्स, मैनिसम, गोर्की तथा बाकुनिन के समाजवादी तथा अराजकतावादी विचारों ने रूसी समाज मे भारी क्रांति पैदा कर दी। शून्यवादी तो रूस की वर्तमान व्यवस्था का पूर्ण विनाश करना चाहते थे।

6. **अन्य वादों का उदय**– इस समय रूस में समाजवाद अराजकतावाद तथा शून्यवाद आदि नए वादों का उदय हुआ। इन वादों ने समाज में क्रांतिकारी विचारों का प्रचार किया। इन वादों ने प्राचीन मान्यताओं का खंडन कर उनके स्थान पर नवीन मान्यताओं का प्रतिपादन किया।

7. **व्यावसायिक क्रांति**– इस समय रूस में भी व्यावसायिक क्रांति होने के कारण अनेक कल–कारखानों की स्थापना हो गई थी। इन कारखानों में कार्य करने के लिए लाखों मजदूर गांव छोडकर शहरों में आ गए थे। मशीनों के प्रयोग के कारण देश में बेकारों की संख्या में बढोत्तरी हुई। फलतः देश में भारी असंतोष उत्पन्न हो गया।

8. **रूसी नौकरशाही की अयोग्यता**– पीटर (1683-1721) ने शासन के संचालन के लिए एक विशाल नौकरशाही का आयोजन किया था। नौकरशाही के उच्च पदाधिकारी कुलीन वर्ग के व्यक्ति थे। जनता से इनको सहानुभूति नहीं थी अतः ये मनमाने ढंग से शासन करते थे तथा जनता का शोषण करते थे। नौकरशाही के कुछ उच्च पदों पर जर्मन पदाधिकारी नियुक्त थे। इनको भी रूस की जनता से कोई सहानुभूति नहीं थी। इस प्रकार रूस की नौकरशाही बहुत भ्रष्ट तथा अयोग्य थी।

9. **सेना की अयोग्यता**– रूसी नौकरशाही की भाँति रूसी सेना भी अयोग्य थी। क्रीमिया युध्द तथा रूसी-जापानी युध्द में वह बुरी तरह पराजित हुई थी। युध्द के लिए एकत्र की जाने वाली धन राशि का उच्च पदाधिकारी दुरूपयोग कर रहे थे। राष्ट्र सेवा तथा कर्तव्यपालन की भावना का उसमें सर्वथा अभाव था। दो वर्ष तक भी युध्द का कोई निर्णय न होने पर रूसी सेना तथा नौकरशाही

दोनों घबरा गए। इससे असंतोष में बहुत वृद्धि हुई तथा सर्वत्र क्रांति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे।

10. **प्रथम महायुध्द में रूस का प्रवेश एवं आर्थिक संकट**– अगस्त 1914 में प्रारंभ हुए प्रथम विश्व युध्द में रूस ने मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ना स्वीकार किया। इसी समय संसद के लगभग सभी सदस्यों ने इसे स्वीकार भी किया, परंतु जार व जरीना की विवके हीनता, युध्द कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप व कर्तव्यहीनता ने सेना के मनोबल को गिरा दिया। सैनिक युध्दों में व्यस्त हो गए जिससे आर्थिक संकट और बढ गया।

''मार्च की 1917 ई. की क्रांति''

मार्च 1917 ई. में रूस की राजधानी पेट्रोगाड में क्रांति अप्रत्यशित रूप से हो गई। फिशर ने लिखा है कि – ''क्रांति जो बहुत पहले से घुमड़ रही थी, एक उग्र और संगठित विप्लव के रूप में नहीं अपितु आकस्मिक और पहले से अचिंतित घटनाओं के रूप में फैली ''वास्तव में लग तो ऐसा रहा था कि क्रांति फूट पड़ेगी, परंतु एकाएक 7 मार्च को ही इसके फूट पड़ने की कल्पना तक किसी ने न की थी।''

7 मार्च को भूख प्यास से पीड़ित असहाय मजदूरों ने पेट्रोगाड के सड़को पर जुलूस निकाला। सड़को के किनारे घेटलों पर गरम गरम डबल रोटियों के अम्बारों को देखकर वे उस पर टूट पड़े। वे रोटी के नारे लगाते हुए सड़कों पर घूमने लगे। जार ने सेना को आदेश दिया कि इन पर गोलियाँ चलाए, परंतु सैनिकों ने आज्ञा पालन नहीं किया। 6 मार्च को कारखानों में काम करने वाले मजदूरों ने हड़ताल कर दी। शहर की सड़कों पर **''रोटी दो युध्द बंद करो, अत्याचारी शासन का नाश हो।''** जैसे नारे सुनाई देने लगे। 11 मार्च को डयूमा को भंग कर दिया। सैनिक आंदोलनकारियों से ना मिलें। 13 मार्च को राजधानी पर मजदूरों का अधिकार हो गया। 14 मार्च को डयूमा को रोजियांको के नेतृत्व में कार्यकारिणी बनाई। 14 मार्च के दिन दोनों समितियों को मिलाकर एक कर दिया गया और अस्थायी सरकार बनाई गई। इस अस्थायी सरकार का नेता प्रिंस ल्वाव था। इसमें एलैक्जैंडर करेन्सकी मिल्यूकोव, गूचकोव की शामिल किया गया। 15 मार्च 1917 ई. को जार को विश्वास हो गया कि स्थिति पर काबू नहीं पाया जा सकता अतः उसने सिंहासन से त्याग पत्र दिया। **''इस प्रकार रोमनॅाक नायक वंश के अंतिम शासक जार निकोलस द्वितीय का राज्यकाल समाप्त हुआ इस वंश ने 300 वर्षो से अधिक तक रूस पर शासन किया।''** लिप्सन ने लिखा है ''जार से शासन सत्ता मजदूरों ने छीनी थी, पर उन्होंने उसे तुरंत ही मध्यम वर्ग को सौंप दिया।

अस्थायी सरकार का कार्य

अस्थायी सरकार ने अग्रलिखित महत्वपूर्ण कार्य किए–

1. लेखन, भाषण, प्रकाशन तथा सभी सोसायटी बनाने की स्वतंत्रता प्रदान की।
2. राजनीतिक बंदियाँ को मुक्त कर दिया गया। राजनीतिक रूप से जार द्वारा निर्वासित लोगों को देश में पुनःआने की अनुमति दी।
3. मृत्युदंड समाप्त कर दिया गया।

4. यहूदी विरोधी कानूनों को रद्द कर दिया गया।
5. ग्रीक चर्च के विशेषाधिकार छीन लिए।
6. पौलैंड को स्वतंत्र शासन देने का वचन दिया गया।
7. फिनलैंड में वैध अधिकारों की प्रथा स्थापना की गई।
8. अस्थायी सरकार ने देश के नए संविधान के निर्माण के लिए वयस्क पुरूष मताधिकार के आधार पर सह संविधान सभा की स्थापना की घोषणा की।
9. युद्ध अभी चल रहा था सरकार ने इसमें पुनः नए उत्साह से ध्यान दिया।

अस्थायी सरकार की कठिनाइयाँ

1. रूस को निरंतर मिल रही पराजय के कारण सरकार के समक्ष बहुत बडी समस्या खडी हो गई थी।
2. दूसरी समस्या आंतरिक अव्यवस्था को समाप्त करने संबंधी थी।
3. अस्थायी सरकार यवं पट्रोगाड की मजदूरों यवं सैनिकों के प्रतिनिधियों के सोवियत में आपसी मतभेद थे।
4. अस्थायी सरकार युद्ध को यथावत जारी रखने के पक्ष में थी जबकि पट्रोगाड सोवियत युद्ध को बंद करने के पक्ष में थे।

''अस्थायी सरकार के विरुध्द बोल्शेविकों का प्रदर्शन''

1 जुलाई 1917 ई. को पट्रोगाड सोवियत के बोल्शेबिक समर्थकों ने विशाल प्रदर्शन किया। उन्होंने 'युद्ध बंद करों पूंजीवादी दस मंजियों से ऐ हराओं, सारी सत्ता सोवियतों को दो के नारे लगाएँ। 3 जुलाई को मजदूरों और सैनिकों ने प्रश्न प्रदर्शन किया।

''बोल्शेविक क्रांति''

बोल्शेविक क्रांति नवबंर 1917 ई. में रूस में हुईं। 7 नवबंर को रात को पट्रोगाड के 9 मुख्य शायकीय भवनों पर बोल्शविक सैनिको ने अधिकार कर लिया। सभी मेजियो को बंदी बना लिया। लेकिन केरेन्सकी भाग गया, 7 नवबंर की रात्री को सोवियतो का सम्मेलन हुआ जिसमें लेनिन की अध्यक्षता में नवीन सरकार का गठन किया गया। इस प्रकार बिना रक्तपात एक महान क्रांति हो गई। **बोल्शेविक क्रांति के कारण निम्नलिखित थे।**

1. अस्थायी सरकार का देश और सेना पर प्रभावशाली अधिकार नहीं था।
2. सरकार आकांक्षाओं के विरुध्द युद्ध जारी रखना चाहती थी, जो सैनिकों को स्वीकार नहीं था।
3. अस्थायी सरकार को श्रमिकों तथा कृषकों के विरोध का सामना करना पडा, क्योंकि इन वर्गो को क्रांति से कुछ नही मिला।
4. अस्थायी सरकार में प्रभावशाली नेतृत्व नहीं था।
5. वास्तविक सत्ता सोवियतों के पास थी।
6. बोल्शेविकों ने जब आकांक्षाओं की अनुसार प्रचार करके सैनिकों, कृषिकों तथा श्रमिकों में लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी।

7. लेनिन के दूढ नेतृत्व ने इस क्रांति को सफल बनाया था वह प्रारंभ से ही सर्वहारा के अधिनायकतंत्र की स्थापना का प्रयास कर रहा था।

बोल्शेविक की सफलता के कारण

टिप्पणी

1. बोल्शेविको की सफलता का अन्य कारण लेनिन का नेतृत्व या प्रारंभ से ही उसने सत्ता पर अधिकार करने की योजना बनाई। उसे जन भावनाओं को समझाने की दूरदर्शिता प्राप्त थी उसने कृषकों को भूमि, श्रमिकों को कारखाने और सैनिकों को शांति का नारा देकर इन सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त कर लिया था।
2. बोल्शेविको ने सोवियतों में अपना बहुमत बना लिया था, सोवियतों पर नियंत्रण हो जाने से उनका राज्य की वास्तविक सत्ता तथा सेनाओं पर नियंत्रण स्थापित हो गया था।
3. बोल्शेविकों ने प्रारंभ में युद्ध का विरोध किया, और इसे साम्राज्य बंदी तथा जन विरोधी घोषित किया था। उनकी घोषणा थी कि, सत्ता प्राप्त करते ही वे इस को युद्ध से अलग कर देगें। केटलबी लिखता है – **''युद्ध और शांति दोनो एक साथ जारी रखने के निष्कल प्रयास के पश्चात् केरेन्सकी सरकार की नरम दल की सरकार नवम्बर 1917 ई. मे लेनिन और के नेतृत्व में बोल्शेविकों द्वारा पलट दी गई। बोल्शेविक पार्टी का यद्यपि अल्पमत था, किंतु उनकी स्थिति फ्रांस के जेकोबिनों के समान कार्य और निर्णय करने वालों की थी।''**
5. बोल्शेविकों की सफलता का यह कारण था कि युद्ध चल रहा था और मित्र राष्ट्र रूस में हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं थे।
6. बोल्शेविकों ने उचित समय पर सत्ता पर अधिकार किया उस समय केरेन्स की और उसकी सरकार की स्थिति अत्यंत दुर्बल हो गई थी।

बोल्शेविक क्रांति का महत्व

1917 ई. की रूसी क्रांति का विश्व इतिहास में विशेष महत्व था इस क्रांति का विश्व व्यापी प्रभाव पडा था। यद्यपि रूस में दो क्रांतियाँ हुई थी। मार्च क्रांति और नवबंर क्रांति लेकिन इन्हें एक क्रांति के दो अध्याय मानना अधिक उपयुक्त होगा। लिप्सन के अनुसार– **''मार्च क्रांति इसका राजनीतिक अध्याय था और नवबंर क्रांति मजबूत जनतंत्र को जन्म देने वाला अध्याय था।''**

इस क्रांति का महत्व निम्नलिखित है–

1. इससे रूस में निरंकुश जार शासन समाप्त हुआ और गणतंत्र स्थापित हुआ।
2. इससे रूस में साम्यवादी शासन स्थापित हुआ। जिससे नवीन सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था स्थापित हुई। यह पहला श्रमिक गणतंत्र था।
3. पहली बार रूस में मार्क्स के सिद्धांतों को क्रियान्वित किया गया। पूंजीवाद का विनाश किया गया और संपूर्ण संपत्ति भूमि का राष्ट्रीयकरण किया गया।
4. फ्रांस की क्रांति ने अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद का आदर्श रखा और दूसरे देशों में भी साम्यवादी आंदोलन कराने का उद्देश्य घोषित किया, इससे विश्व के सभी देशों में अधिक आंदोलन आरंभ हुआ।

5. साम्यवादियों ने लेनिन के नेतृत्व में योजना बद्ध आर्थिक नियंत्रण का आदर्श विश्व के समक्ष रखा जिससे रूस महान राष्ट्र बना।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

4. बोल्शेविक क्रांति कब हुई–
   (क) मार्च 1917 ई. (ख) अप्रैल 1917 ई.
   (ग) अगस्त 1917 ई. (घ) नवम्बर 1917 ई.
5. मार्च 1917 ई. की क्रांति किस शहर से प्रारंभ हुई–
   (क) मास्को (ख) लेनिनग्राद
   (ग) अल्मारी (घ) पट्रोगाड

3.4 'वुड्रो विल्सन' के चौदह सूत्र (Fourteen Sessions of 'Woodrow Wilson')

वुड्रो विल्सन संयुक्त राज्य अमेरिका राष्ट्रपति था वह एक सुंदर, द्वेष रहित एवं शांति से युक्त संसार का स्वप्न देखा करता था। जिस समय युध्द समाप्त हुआ संपूर्ण संसार विल्सन की ओर ऐसे देख रहा था मानो उससे किसी चीज की याचना कर रहा हो। शेपिरो ने लिखा है – ''युध्द से जर्जरित विश्व विल्सन की ओर इस भावना से निहार रहा था कि वह उस राष्ट्र का प्रतिनिधि था जिसे अपने लिए कोई स्वार्थ नहीं था और जिसने विश्व के सहयोग के द्वारा हमेशा के लिए मानव को युध्द के ताप से वियुक्त करने का स्वप्न देखा था।

विल्सन आदर्शवादी था। वह धूर्वता एवं कुटिल चालो से परे था उसने अपने 14 सिध्दांतों के आधार पर विश्व शांति का स्वप्न देखा था उसने 14 सिध्दांत निम्नवत् है :–

1. गोपनीय तरीकों से अंतर्राष्ट्रीय समझौते नहीं किए जाएंगे, राजनय सदैव निष्कपट रुप में तथा सार्वजनिक प्रस्टि से कार्य करेगा, संधियां खुले रुप से की जाए।
2. समुद्रतटीय भागों के अलावा युध्द अथवा शांति काल दोनों अवस्थाओं में जहाज चलाने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।
3. आंतरिक सुरक्षा के लिए जितने अस्त्र-शास्त्र पर्याप्त हो उतने ही रखे जाए।
4. औपनिवेशिक दावे बिना पक्षपात के निर्णीत हो।
5. रूस से सेनाएं हटा ली जाए तथा उसकी स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान हो।
6. बेल्जियम को खाली किया जाए तथा उसकी स्वतंत्रता मान्य हो।
7. संपूर्ण फ्रांसीसी भूमि स्वतंत्र कर दी जानी चाहिए आल्सेस या लारेन के प्रदेश फ्रांस को लौटा दिए जाए।
8. इटली की राष्ट्रीयता के आधार पर उसकी सीमाएं पूनः निर्धारित की जाए।
9. आपसी वापार में चुगियाँ कम से कम हो।

10. रुमानिया, सर्बिया, मोटीनीग्रो खाली किए जाए, सर्बिआ को यह अधिकार दिया जाए कि यह समुद्र तट तक पहुँच सके।
11. तुर्की का शासक अपने शासन के अंतर्गत रटने वाली सभी चालियों के प्रति समानता की नीति अपनाएगा डार्डनलीज का अंतर्राष्ट्रीयकरण किया जाए।
12. आस्ट्रिया हंगरी के विकास हेतू साधन उपलध कराए जाय।
13. पौलॅड की स्वतंत्रता मान्य हो। पौलँड में वे क्षेत्र मिला दिए जाए जो निर्विवाद रुप से पोल हो। उसकी प्रादिशिक अखंडता आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता को मान्यता दी जाए।
14. विश्व शांति के लिए छोटे बड़े सभी राष्ट्रों का संगठन हो जिससे दोनों प्रकार के राष्ट्रों की प्रादिशिक अखंडता एवं राजनीतिक स्वतंत्रता की गारंटियाँ समान रुप से दी जा सके।

उपयुक्त 14 सूत्रों पर भाषण देते हुए विल्सन ने कहा था – ''जिस कार्यक्रम को मैने प्रस्तुत किया है उसमें एक सिध्दांत निहित है यह सिध्दांत है कि प्रत्येक राष्ट्रों को चाहे वह शक्तिशाली हो अथवा दुर्बल सामान्य रुप से न्याय प्राप्त होना चाहिए और स्वतंत्रता तथा सुरक्षा की समान शर्तों पर उन्हें जीवित रहने का अधिकार मिलना चाहिए।''

वास्तव में विल्सन के 14 सिध्दांत केवल राजनीतिक भाषण थे। कुछ अपने आप में परस्पर विरोधी थे। फिशर के अनुसार वह अपने ही देश में अकेले थे परंतु यह तो कहना ही होगा कि विल्सन के 14 सूत्र अपने आप में महत्वपूर्ण थे और जितना भी उनका पालन हुआ उसने पेरिस शांति समझौते की कठोरता को कम करने में काफी मद्द की।''

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

6. वुड्रो विल्सन ने अमेरिकी कांग्रेस के समक्ष 14 सूत्रों की घोषणा कब की?

(क) 8 जनवरी 1918 ई.	(ख) 18 जनवरी 1918 ई.
(ग) 2 फरवरी 1918 ई.	(घ) 18 मार्च 1918 ई.

3.5 पेरिस का शांति सम्मेलन एवं वर्साय की संधि (Peace Conference of Paris and Treaty of Versailles)

भूमिका (Introduction)

प्रथम विश्व युद्ध के लगभग चार साल के भीषण संघर्ष और विनाश के बाद 11 नवबंर 1918 ई. को प्रथम विश्व युद्ध विधिवत समाप्त हुआ। विश्व युद्ध तो समाप्त हो गया परंतु वह अनेक भीषण और जटिल समस्याएँ छोड गया। युद्ध समाप्ति के बाद सबसे बिकट समस्या शांति समझौता की थी, यह समस्या इतनी जटिल थी कि इसका समाधान शीघ्र होना असंभव था।

शांति सम्मेलन का आयोजन

शांति सम्मेलन का आयोजन फ्रांस की राजधानी पेरिस में किया गया। 1919 ई. के प्रारंभ से विभिन्न देशों के प्रतिनिधि मंडल पहुँचने लगे। कई प्रतिनिधि मंडलों की संख्या तो सैंकडों में थी, जिनमें मंत्री, राजनीतिश, कानून और आर्थिक विशेषज्ञ, सैनिक पूंजीपति, मजदूरों के नेता, संसदीय सदस्य और प्रमुख नागरिक थे। इसके अतिरिक्त संसार के कोने-कोने से पत्र प्रतिनिधि एवं संवाददाता भी पेरिस पहूँचे थे। सम्मेलन के अवसर पर पेरिस में स्वंय अमेरिका के राष्ट्रपती तथा विभिन्न देशों के ग्यारह प्रधानमंत्री और बारह विदेश मंत्री मौजूद थे। इस विशिष्ट जन समूह में निम्नलिखित लोगों के नाम उल्लेखनीय है – फ्रांस के क्लीमेशों पिसों, टाडियू और कैम्बो, अमेरिका के लासिंग और कर्नल हाउस, ब्रिटेन के लायड जॉर्ज, बालफर और बोनरली इटली के ओर क्रैडों और सोनिनों, बेल्जियम के हईमन्स, पौलेंड के डिमोस्स, यूगोस्लाविया के पाशिष, चैकोस्लोवाकिया के बेनेस, यूनान के वेनिजेलोस तथा दक्षिण अफ्रीका के स्मट्स तथा वोथा इत्यादि। सोवियत रूस को सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए नियंत्रित नहीं किया गया था। पराजित राष्ट्रों को भी सम्मेलन में भाग लेने के लिए नहीं बुलाया गया था, क्योंकि उनका काम केवल इतना था कि संधि का मसविदा पूर्ण हो जाने के पर अपने हस्ताक्षर कर दे। **ई. एच. कार ने लिखा – ''विजय के आनंद के नीचे चिंता के अल्फूट स्वर सुनाई दे रहे थे।''**

पेरिस शांति सम्मेलित के उद्देश्य

1. यूरोप के भविष्य का मानचित्र तैयार करना।
2. स्थायी शांति स्थापित करने के उपायों पर निर्णय करना।
3. पराजित राज्यों के साथ स्थाई समझौते करना।
4. विजयी राज्यों को क्षतिपूर्ति दिलवाना।
5. दीर्घ कालीन युद्ध के कारण विध्वंसित यूरोप की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं को नए आधार पर पुनस्थांपित करना।

समस्याएँ

पेरिस का प्रथम शांति सम्मेलन 18 जनवरी 1919 ई. को प्रारंभ हुआ इस सम्मेलन में अनेक समस्याएँ थी –

1. सम्मेलन में कुछ सदस्य चाहते थे कि पराजित राष्ट्रों के साथ पहले प्रारंभिक संधि की जाय और कुछ समय उपरांत इसे अंतिम रूप दिया जाए। कुछ प्रतिनिधि संधि को एक मुख्य अंतिम रूप देना चाहते थे। अंतिम द्वितीय विकल्प की विजयी हुई।
2. सम्मेलन में भाग लेने के लिए राज्यों के 70 प्रतिनिधि आए थे। इतनी बडी संख्या को एक साथ बिठाकर किसी निर्णय पर पहुँचना कठिन कार्य था। अतः सम्मेलन की बागडोर पांच बडे राष्ट्रों के दो प्रतिनिधियों की दस की परिषद को सौपी गई।
3. सम्मेलन के समक्ष एक समस्या यह थी कि उसके निर्णायकों को ऐस समझौते की रूप रेखा तैयार की थी। जिससे स्थायी शांति की स्थापना हो।
4. राष्ट्रीयता की सीमाओं के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन एक अन्य दुःष्कर कार्य था।

5. विजेता राष्ट्र पेरिस शांति सम्मेलन को अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति का साधन बनाना चाहते थे, ये राष्ट्र राष्ट्रीय स्वार्थो की पूर्ति के लिए किसी भी सीमा तक जाने तैयार थे।

''वर्साय की संधि'' (28 जून 1919 ई.)

पेरिस शांति सम्मेलन में अनेकानेक संधियों एवं समझौतों का मसुदा तैयार किया गया और उन पर हस्ताक्षर किए गए लेकिन इन सभी संधियों जर्मनी के साथ जो वर्साय की संधि हुई, वह अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है और सभी संधियों में प्रमुख है। चार महीने के परिश्रम के बाद संधि का मसविदा तैयार हुआ। 230 पृष्ठों में अंकित यह संधि 15 भागों में विभक्त थी और उसमें 440 धाराएं थी 6 मई 1919 को यह सम्मेलन के सम्मुख देश हुई और स्वीकृत की गई।

30 अपैल को ही विदेश मंत्री काउन्ट फॉन ब्रौकडोक गन्टाजु के नेतृत्व में जर्मन प्रतिनिधि मंडल वर्साय पहुँचा। प्रतिनिधियों को ट्रयनन पैलेस में ठहराया गया। मित्र राष्ट्रों के अफसर उनकी सुरक्षा की देखभाल कर रहे थे। घटेल को कांटेदार तारों से घेर दिया गया था और जर्मन प्रतिनिधियों के मनाही कर दी गई थी कि वे मित्र राष्ट्रों के किसी प्रतिनिधि या किसी पत्रकार से किसी प्रकार का संपर्क रखें। 7 मई को क्लिमेशों ने अन्य प्रतिनिधी मंडलों के समक्ष इयनन घटेल में जर्मन प्रतिनिधि मंडल मे उनका कहना था कि जर्मनी की नई सरकार पूर्ण रूप से प्रजावांचिक है और राष्ट्र संघ की सदस्यता के लिए इच्छुक है निःशस्त्रीकरण की शर्त केवल जर्मनी पर ही नहीं अपीतू समस्त राज्यों पर लागू की जानी चाहिए।

विश्व युद्ध के लिए एक मात्र जर्मनी को जिम्मेदार ठहराना गलत है। जर्मन प्रस्ताव में यह भी कहा था कि संधि की सभी शर्तो को मानना असंभव है। एक बडे राष्ट्र को कुचलकर तथा उसे गुलाम बनाकर शांति स्थापित नही की जा सकती।

मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी के प्रस्तावों पर विचार किया और कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन के बाद जर्मनी को पांच दिनों के भीतर ही संशोधित संधि पर हस्ताक्षर करने को कहा गया। इस बार जर्मनी को यह अवसर नहीं दिया गया किवह संधि को संमति देने के संबंध में किसी प्रकार का संशोधन या निवेदन प्रस्तुत कर सके। मित्र राष्ट्रों ने स्पष्ट कर दिया था, कि हस्ताक्षर नहीं करने का अर्थ जर्मनी पर पुनः आक्रमण होगा। अंत में जर्मन सरकार ने संधि पर हस्ताक्षर करना स्वीकार कर लिए।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

7. पेरिस शांति सम्मेलन का उद्‌घाटन किस देश के राष्ट्रपति द्वारा किया गया?
   (क) जर्मनी (ख) फ्रांस
   (ग) आस्ट्रिया (घ) रूस
8. वर्साय की संधि किस देश के साथ की गई थी?
   (क) आस्ट्रिया (ख) फ्रांस
   (ग) जर्मनी (घ) रूस

3.6 राष्ट्र संघ (League of Nations)

भूमिका (Introduction)

टिप्पणी

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद अंतर्राष्ट्रीय संगठन के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपाल हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप ही राष्ट्र संघ का जन्म से पूर्व यूरोप में अनेक अंतर्राष्ट्रीय संगठन पाए जाते थे परंतु इन संगठनों में कोई ऐसा संगठन न था, जो विश्व शांति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न को हल करने के लिए कायम किया गया हो। युध्द काल में मानवता ने बर्बादी का जो तांडव देखा उससे व्यथित होकर संसार के सभी मनुष्यों ने एक ऐसे संगठन को कायम करने की इच्छा की जो युध्द को सदैव के लिए असंभव बना दे। राष्ट्र संघ मनुष्य की इसी इच्छा के परिणामस्वरूप स्थापित हुआ था।

राष्ट्र संघ की स्थापना

राष्ट्रसंघ की स्थापना 10 जनवरी 1920 ई. को जेनेवा; स्विट्जरलैंडद्ध में की गई थी।

राष्ट्र संघ के उद्देश

1. अंतर्राष्ट्रीय सहयोग शांति और सुरक्षा की स्थापना करना।
2. भविष्य में युध्द न कर विश्व शांति को प्रोत्साहित करना।
3. शांति संधियो का न्यायोचित ढंग से पालन करना।
4. राष्ट्रों के मध्य सद्भावना तथा सम्मानीय संबंध स्थापित कर प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली की रक्षा करना ।

राष्ट्र संघ का संगठनात्मक स्वरूप

राष्ट्र संघ के विधान की दुसरी धारा के अनुसार राष्ट्र संघ का कार्य एक कौसिल तथा एक स्थाई सचिवालय द्वारा होगा। राष्ट्र संघ के यह तीन प्रधान भंग थे, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय और अंतर्राष्ट्रीय संघ भी राष्ट्र संघ के महत्वपूर्ण अंग थे, इसके अतिरिक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत विविध आयोग जैसे संरक्षण आयोग, सैनिक आयोग, परामर्श दाता आयोग इत्यादि थे।

साधारण सभा

राष्ट्र संघ की प्रतिनिधि सभा थी और इसमें देशों के प्रतिनिधि रहथे थे इसके सभी सदस्य राज्यों के अधिकार समान थे। नए उम्मीदवारों को राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्रदान करना इसी का काम था। यह एसेम्बली का एक बहुत बड़ा अधिकार था, एक सदस्य राज्य अधिक से अधिक तीन प्रतिनिधि भेज सकता था, लेकिन वाटे देने का अधिकर एक को ही प्राप्त था।

परिषद

परिषद राष्ट्र संघ की एक छोटी, परंतु साधारण सभा में अधिक शक्तिशाली संख्या थी इसकी सजावट साधारण सभा से भिन्न थी। एसेम्बली में राष्ट्र संघ के सभी सदस्य थे स्थाई और अस्थाई। कौसिल राष्ट्र संघ की कार्यकारिणी समिती थी, कौसिल के निर्णयों का सर्व सम्मति द्वारा पास होना आवश्यक था।

संचिवालय

राष्ट्र संघ से प्रशासकीय कार्यों के लिए सेवा में स्थित एक स्थाई सचिवालय था राष्ट्र संघ का प्रबंध पत्र व्यवहार और व्यवस्था आदि के कार्य इसी के द्वारा होता था सचिवालय का प्रधान महासचिव कहलाता था। राष्ट्र संघ के सभी कार्यों को संचलित करना उसका मुख्य काम था।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय

राष्ट्र संघ विधान की 14 वीं धारा के अनुसार राष्ट्र संघ के तत्वधान में एक स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की गई। न्यायालय के लिए प्रारंभ में 112 न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई। परंतु बाद में 15 कर दी गई।

राष्ट्र संघ की संरक्षण प्रणाली

पेरिस शांति सम्मेलन के पूर्व ही यह बात पता थी कि उपनिवेशों का मित्र राष्ट्रों के बोध बंटवारा हो जाएगा युध्द के समय स्वशायन के सिद्धांत का नारा बुलंद किया गया था विल्सन के 14 सूत्रों में भी इस बात की चर्चा की गई थी, किंतु मित्र राष्ट्र और परोपकारी नहीं थें, उसकी आँखे इन प्रदेशों पर बडी हुई थी और वे इनको हडप लेना चाहती थी पर यह काम इतना आसान भी नहीं था। अतः मित्र राष्ट्र एक ऐसे उपाय की खोज में थें और इसके लिए जनरल समइस ने एक रास्ता बंद निकाला जिनको तथाकथित संरक्षण प्रणाली कहते है।

इस प्रणाली के अनुसार शत्रु पक्ष कें उपनिदेशों पर उसी राज्य का विधिवत अधिकार कायम नहीं हुआ। ये प्रदेश राष्ट्र संघ की सौप दिए गए और राष्ट्र संघ ने अपनी तरफ से इनके विविध मित्र राष्ट्र के सदस्यों ब्रिटेन फ्रांस बेल्जियम दक्षिणी अफ्रीका जापान इत्यादि की संरक्षता में कर दिया। यह कहा गया कि विजिल शत्रुओं के उपनिवेशों पर जो कब्जा मित्र राष्ट्रों को दिया गया है वह वस्तुतः राष्ट्र संघ की और से उपनिदेशों के अनुशासन और सुव्यवस्था मात्र के लिए निर्यामत किए गए है। इसके अनुसार यह मान लिया गया कि जर्मनी या तुर्की के मतपूर्व औपनिवेशक देशों पर शांसन का जो अधिकार सब ब्रिटेन या फ्रांस को दिया गया है वह राष्ट्र संघ के आदेश द्वारा उन्हें प्राप्त हुआ है और वे उपनिवेश वस्तुत राष्ट्र संघ की ही अधीनता में है। विल्लत के सिद्धांतों की उपहास करने के लिए और दुनिया को धोखा देने के लिए इससे बढकर दूसरा अच्छा उपाय हो ही नहीं सकता।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

9. राष्ट्र संघ का वैधानिक जन्म कब हुआ?

(क) 1919	(ख) 1920
(ग) 1923	(घ) 1925

3.7 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

टिप्पणी

1. (क)
2. (क)
3. (क)
4. (घ)
5. (घ)
6. (ख)
7. (ख)
8. (ग)
9. (ख)

3.8 सारांश (Summary)

विश्व के इस प्रथम विश्व युद्ध के लिए अनेक कारण जिम्मेदार थे। इनमें से अनेक कारणों में से एक महत्वपूर्ण कारण निम्नानुसार थे (1) गुटो मे प्रतिद्वंद्विता, (2) सैन्यवाद एवं शस्त्रीकरण, (3) साम्राज्यवाद, (4) समाचार पत्रों द्वारा व्याप्त उत्तेजना (5) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को नियंत्रित करने वाली किसी अंतर्राष्ट्रीय संख्या का अभाव प्रथम विश्व युद्ध के अत्यंत दूरगामी प्रभाव पड़े, जैसे – (1) राष्ट्रीयता का विकास, (2) नवीन राष्ट्रों की स्थापना (3) अंतर्राष्ट्रीय भावना का विकास, (4) मजदूर आंदोलनों का आरंभ, (5) आर्थिक प्रभाव इत्यादि।

रूस कि क्रांति का मसीहा महान साम्यवादी विचारक हार्ल मार्क्स को माना जाता है, कार्ल मार्क्स के दर्शन को रूस की जमीन पर उतारकर गति प्रदान करने का श्रेय लेनिन को था, इस क्रांति के पश्चात् विश्व इतिहास में प्रमि वार सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तंत्र की स्थापना हुई। 1917 ई. की क्रांति ऐसी क्रांति थी, जिसने मानव के इतिहास में एक ऐसी प्रथम क्रांति हुई जिसने सामाजिक आर्थिक और राजनितिक ढ़ाँचे को मूल रूपसे परिवर्तित कर उसे नया स्वरूप प्रदान किया। यह क्रांति पूर्ण रूप से सफल रही, क्योंकि इसके द्वारा निरंकुश स्वेच्छाचारी जार के शासन का अंत हुआ और मार्क्सवादी सिद्धांत पर आधारित सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तंत्र स्थापित हुआ।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर पराजित राष्ट्रों के साथ संधि करने के उद्देश्य से फ्रांस की राजधानी पेरिस में एक शांति सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें राज्यों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया था इस सम्मेलन की दो प्रमुख विशेषताएँ थी – (1) अमेरिकी राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन के 14 बिंदु, (2) वर्साय कि संधि। पर्साय की संधि की प्रायः सभी विद्वानों ने आलोचना की ही और इसीलिए कहा जाता है, कि इस संधि द्वितीय विश्व युद्ध के बीज विद्यमान है।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद समाप्त राष्ट्रपति का उद्देश्य यह था कि भविष्य में महायुद्ध की पुनरावृत्ति न हों। इस दिशा में राष्ट्र संघ का निर्माण पहला कदम था जिसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा की स्थापना करना था। राष्ट्र संघ कुछ वर्षों तक सफल रहा फिर असफल हो गया।

3.9 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

टिप्पणी

- प्रथम विश्व युध्द रूस की क्रांति।
- विल्सन के चौदह सूत्र।
- पेरिस शांति सम्मेलन।
- वर्साय की संधि।
- राष्ट्र संघ।

3.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercise)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. प्रथम विश्व युध्द के कारणों का वर्णन कीजिए।
2. रूस की 1917 ई. क्रांति कारणों की व्याख्या कीजिए।
3. विल्सन के 14 सूत्रों पर प्रकाश डालिए।
4. वर्साय संधि का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
5. राष्ट्र संघ के कार्यों की व्याख्या कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. प्रथम विश्व युध्द के कारणों एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए।
2. रूस की 1917 ई. क्रांति कारण परिणाम एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. वर्साय संधि को आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. राष्ट्र संघ की संरचना का वर्णन कीजिए।

3.11 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. कैटलबी सी. डीन – ए हिस्दी ऑफ कॉमर्स टाइम्स।
2. हेजन डी. सी. – मार्डन यूरोपियन हिस्ट्री।
3. चौहान देवेन्द्र सिंह – यूरोप का इतिहास।
4. जैन एवं माथुर – विश्व का इतिहास।
5. पांडेय धनपति – आधुनिक एशिया का इतिहास।
6. वर्मा दीनानाथ – अंतर्राष्ट्रीय संबंध।
7. मेहता बी. एस. – यूरोप का इतिहास।

इकाई 4 चीन और जापान– चीन और जापान में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद, प्रथम व द्वितीय अफीम युद्ध, ताईपिंग विद्रोह, चीनी क्रांति 1911 ई., जापान में मेईजी पुर्नस्थापना, आधुनिकीकरण, सैन्यवाद का उदय, चीन-जापान युद्ध 1894, रूस-जापान युद्ध 1905, चीन-जापान युद्ध 1937

संरचना (Structure)

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 चीन और जापान में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद
4.3 प्रथम व द्वितीय अफीम युद्ध
4.4 जापान में मेईजी की पुर्नस्थापना
4.5 चीन-जापान युद्ध 1894 ई., रूस-जापान युद्ध 1905 ई., चीन-जापान युद्ध 1937 ई.
4.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय (Introduction)

यूरोपीय देशों ने एशिया के प्रायः सभीं देशों को अपनी साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा का शिकार बनाया और अपने उपनिवेश स्थापित किए। जब इन देशों ने उपनिवेशों में जनता का आर्थिक शोषण करने के विविध प्रयास किए, तो एशिया में उपनिवेशवाद के विरूद्ध प्रतिरोध आरंभ हो गया। चीन में अफीम युद्ध और बॉक्सर विद्रोह हुआ। जापान में मेईजी पुर्नस्थापना के पश्चात् सैन्यवाद का विकास हुआ एवं आर्थिक क्रांति भी हुई।

अंग्रेजों ने चीन में अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए वहाँ के नागरिकों को अफीम का आदी बनाया। चीन में मांग दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। इससे चीन में आर्थिक व नैतिक संकट उपस्थित हो गया। फलतः चीन की मंचू सरकार को अफीम के व्यापार पर प्रतिबंध लगाना पड़ा। अंग्रेजों ने इसका विरोध किया। परिणामस्वरूप चीन को ब्रिटेन के साथ दो युद्ध लड़ने पड़े। मंचू सरकार इन युद्धों में पराजय हुई उसे चीन में ताईपिंग व बाक्सर विद्रोहों का सामना करना पड़ा। इस सबकी विस्तृत विवेचना यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

टिप्पणी

1867 ई. में मेईजी की पुर्नस्थापना के पश्चात् जापान का कायाकल्प हो गया। मेईजी पुनर्स्थापना जापान के इतिहास की युगांतकारी घटना सिद्ध हुई। इसके बाद जापान ने आधुनिकीकरण की ओर कदम बढ़ा दिए। जापान में पश्चिमी शक्तियों ने वर्चस्व स्थापित करने के प्रयास किया। मगर अन्य उपनिवेशों की भाँति पश्चिमी शक्तियों की बराबरी नहीं कर पाए। आधुनिकीकरण के पश्चात् जापान में सैन्यवाद का उत्कर्ष हुआ और पूर्व में शीघ्र ही जापान एक महाशक्ति बनकर उभरा। 1894-1895 ई. में उसने चीन को और 1904-05 ई. में रूप को पराजित किया। जापान जैसे छोटे राष्ट्र द्वारा चीन और रूस जैसे बड़े राष्ट्रों को परास्त करने से विश्व में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। हिटलर एवं मुसोलिनी जैसे अधिनायकों के साथ रोम-बर्लिन-टोकियो धुरी का निर्माण कर उसने मिश्र राष्ट्रों को सशक्त चुनौती दी। इस चुनौती को मिटाने के लिए विश्व इतिहास में प्रथम बार अमेरिका ने परमाणु बम का प्रयोग किया। उक्त समस्त घटनाक्रम की विस्तृत एवं तथ्यपरक विवेचना इस इकाई में की जाएगी।

4.1 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को निम्न वस्तु से अवगत कराना है:

- यूरोपीय राष्ट्रों द्वारा चीन और जापान का शोषण किस प्रकार से किया गया?
- चीन में प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध अंग्रेजों से क्यों हुआ? चीन में बॉक्सर विद्रोह एवं ताईपिंग विद्रोह की क्या भूमिका थी, एवं 1911 की चीनी क्रांति से चीन में क्या बदलाव देखने को मिले।
- जापान में मेईजी शोषण की पुर्नस्थापना किस प्रकार हुई? जापान का आधुनिकीकरण कैसे हुआ एवं जापान में सैन्यवाद का उदय कैसे हुआ?
- 1894 ई. का चीन-जापान युद्ध का विवेचन, 1905 के रूस-जापान युद्ध का विवेचन एवं 1937 के चीन-जापान युद्ध का विवेचन।

4.2 चीन और जापान में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद (Colonialism and Imperialism in China and Japan)

जब एक अपेक्षाकृत शक्तिशाली राष्ट्र अपने से दुर्बल पिछड़े हुए और कमजोर देशों पर अधिकार स्थापित कर वहाँ के निवासियों की स्वतंत्रता एवं सार्वभौमिक अधिकारों का अपहरण करके अपने राजनीतिक सत्ता स्थापित करता है तो इस नीति और प्रक्रिया को **''साम्राज्यवाद''** कहते हैं।

जब किसी विकसित राष्ट्र के कुछ निवासी अपनी मातृभूमि को त्यागकर किसी अन्य पिछड़े देश में जाकर बस जाते हैं, अपने बल और बुद्धि द्वारा उन देशों की भूमि तथा प्राकृतिक संपदा पर अधिकार करके उनका शोषण करते हैं और अपने मातृदेश की राजनीतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं को वहाँ स्थापित करते हैं नए स्थानों में जाकर बसने के बाद भी अपने मातृदेश से संबंधों को बनाए रखते हैं और उसकी राजनीतिक अधीनता को स्वीकार करते हैं इस प्रक्रिया को **''उपनिवेशवाद''** कहते हैं।

साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के उदय के कारण

टिप्पणी

1. भौगोलिक खोजकर्ता और साहसिक व्यक्तियों द्वारा नवीन प्रदेशों की खोज करना।
2. तत्कालीन साम्राज्यवादी नीतियाँ एवं देशों की आपसी प्रतिद्वंदिता रहना।
3. जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण।
4. साहित्य एवं समाचार पत्रों के द्वारा नवीन प्रदेशों पर अधिकार करने की प्रेरणा मिलना।
5. धर्म का प्रचार करना।
6. खाद्यान्न एवं कच्चे माल के लिए उपनिवेश स्थापित करना।
7. अतिरिक्त पूंजी निवेश कर लाभ कमाना।
8. अतिरिक्त उत्पादन होने से खपत हेतु उपनिवेशों की खोज करना।
9. विकृत राष्ट्रीयता के कारण साम्राज्यवाद के लिए प्रेरित होना।
10. यूरोपीय देशों द्वारा सभ्यता, संस्कृति और प्रगति की आड़ में साम्राज्यवाद की भावना को प्रोत्साहित करना।

4.3 प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध (First and Second Opium Wars)

यूरोप के व्यापारियों के लिए चीन में व्यापार करना इतना सरल नहीं था। उन पर कठोर प्रतिबंध लगे हुए थे परन्तु यूरोपीय व्यापारी चीन में व्यापार का परित्याग नहीं करना चाहते थे वे चीन में अफीम का व्यापार कर यथेष्ट लाभ कमाना चाहते थे, इन अफीम के व्यापार में अंग्रेजों ने अन्य प्रतिद्वन्दियों को काफी पीछे छोड़ दिया। 18 वीं सदी के अंत तक कैंटन व्यापार अधिकांशतः आंग्ल व्यापार हो गया, जिस पर 'ईस्ट इंडिया कंपनी' का अधिकार था। कंपनी द्वारा अफीम के व्यापार को लेकर इंग्लैण्ड व चीन के मध्य दो युद्ध हुए, जिन्हें इतिहास में प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध के नाम से जाना जाता है।

प्रथम आंग्ल– चीन (अफीम) युद्ध (1840-1842 ई.)

कारण–

(1) चीनी सरकार की अलगाव नीति– चीनी सरकार दीर्घकाल से पृथकता और अलगाव की नीति अपना रही थी। वह विदेशी शक्तियों से किसी प्रकार का सम्पर्क और सम्बन्ध नहीं चाहती थी। इसलिए चीन के द्वारा विदेशियों के लिए बन्द थे। चीन की नीति का मूलभूत सिद्धांत विदेशी व्यापार व्यवसाय विरोधी था। चीन की सरकार अन्य विदेशों के लिए स्वतंत्रता प्रभुत्वता सम्पन्न हुई और अपने समकक्ष नहीं मानती थी।

(2) व्यापारिक विषमता– चीन साम्राज्य में प्रारंभ में विदेशी व्यापार एक तरफा था यूरोपीय वस्तुओं की चीनी लागों को कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी, चीन के साथ व्यापारिक संतुलन स्थापित करने के लिए विदेशी व्यापारियों के पास कोई

ऐसी वस्तु नहीं थी, जिसे चीन को बेचकर व्यापारिक संतुलन कर ले। यही कारण था चीन के सम्राट ने **लार्ड मैकार्टन** से व्यापार के प्रति अपने रवैये के विषय में यह कहा था– **''हमारे स्वर्ग के समान एवं अद्‌भुत साम्राज्य में प्रत्येक वस्तु की बहुतायत है। हमें किसी भी वस्तु को आयात करने की आवश्यकता नहीं है, जिसको हम निर्यात के बदले बर्बर देशों के व्यापरियों से स्वीकार करें।''**

टिप्पणी

(3) **व्यापारिक संतुलन के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रयास**– चीन के व्यापार में अपना आधिपत्य जमाने के लिए अंग्रेजों के लिए यह नितांत आवश्यक था कि वे चीन के व्यापारिक असंतुलन को तोड़ें। अतः अंग्रेजों ने व्यापारियों से सम्पर्क बनाकर चीन में अफीम के सेवन के प्रचार को बल देना प्रारंभ कर दिया। प्रारंभ में उन्होंने तम्बाकू के साथ अफीम को मिलाकर लोगों को मुफ़्त में देना प्रारंभ किया जब चीनी अफीम के आदी होने लगे तो उन्होंने शुद्ध अफीम को बेचना प्रारंभ किया।

(4) **आंग्ल चीनी सम्बन्ध**– 1934 ई. में कैंटन में ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त कर अन्य स्वतंत्र व्यापरियों को भी व्यापार करने की अनुमति दे दी। ब्रिटिश सरकार कैंटन में ब्रिटिश व्यापारिक हितों की पक्षपाती थी। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी और अब इंग्लैण्ड को कच्चे माल एवं बाजार की आवश्यकता थी। अतः नेपियर ने कैंटन के वायसराय से व्यापारिक संपर्क बनाने का प्रयास किया, परंतु चीनी अधिकारी व्यापार को राजनीतिक रूप देने के पक्षपाती नहीं थे। कैंटन के चीनी आयुक्त लिन-त्से-सू विदेशी व्यापारियों को अफीम की पेठियाँ सौंप देने के लिए बाध्य किया। ब्रिटिश व्यापारियों को लगभग 20 हजार अफीम की पेटियाँ सौंपनी पड़ी। 60 लाख डॉलर के मूल्य की इस अफीम को समुद्र में फेंक दिया गया। ब्रिटिश व्यापारी इस वृहद धनराशि के नष्ट हो जाने से अत्याधिक क्षुब्ध थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर नष्ट अफीम की क्षतिपूर्ति एवं चीन में विशेष व्यापारिक सुविधाएँ अर्जित करने के लिए दबाव डालना प्रारंभ कर दिया।

(5) **राज्यक्षेत्रातीत अधिकार**– कैंटन में व्यापार करने वाले सभी विदेशी व्यापारियों पर चीन की परम्परा के अनुसार चीनी कानून लागू होते थे। अंग्रेज व्यापारी इस नियम से असंतुष्ट थे क्योंकि इस नियम के अनुसार अंग्रेज अभियुक्त का निर्णय चीनी अदालत में होता था अंग्रेज व्यापारी चाहते थे कि अंग्रेज व्यापारी अभियुक्त का मामला उनके अपने देश के न्यायालय में हो एक प्रकार से वे राज्याक्षेत्रातीत अधिकार की मांग कर रहे थे।

प्रमुख घटनाएँ– अंग्रेज व्यापारियों को कैंटन एवं मकाओं से निष्कासित कर दिया गया । इलियट ने तुरन्त कैंटन की नाकेबंदी कर दी तथा अप्रैल 1840 ई. में ब्रिटिश संसद में चीन के विरूद्ध युद्ध के प्रस्ताव के पास होते ही कैंटन पर अधिकार कर लिया। यांग-त्सी नदी की नाकेबंदी कर चीनी सेना पर आक्रमण किया गया। सिक्यांग पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। अतः विवश होकर चीनियों को संधि के लिए बाध्य होना पड़ा। इस संधि को इतिहास में नानकिंग की संधि के नाम से जाना जाता है।

टिप्पणी

नानकिंग की संधि (1842 ई.)

अनुबन्ध–

(1) हांगकांग का द्वीप अंग्रेजों को प्राप्त हो गया।

(2) कैंटन, अमाय, फुचाओ, निंगपो एवं शंघाई नामक पाँचों बंदरगाह ब्रिटिश व्यापारियों के लिए खोल दिए गए। इन बंदरगाहों पर ब्रिटेन अपने वाणिज्य दूत नियुक्त करेगा।

(3) ब्रिटिश व्यापारियों को चीनी व्यापारियों से सीधे क्रय-विक्रय का अधिकार दे दिया गया।

(4) आयात-निर्यात पर सामान एवं नरम शुल्क पद्धति लागू होगी। शुल्क की वसूली का उत्तरदायित्व वाणिज्य दूतों का होगा।

(5) चीन ने क्षतिपूर्ति के रूप में 2 करोड़ 10 लाख डॉलर देना स्वीकार कर लिया।

(6) अंग्रेजों के मुकदमें उन्हीं की अदालतों में अंग्रेजी कानून के अनुसार होंगे।

परिणाम–

(1) ब्रिटेन को लाभ– नानकिंग की संधि से ब्रिटेन की जो महत्वपूर्ण व्यापारिक लाभ हुए थे उससे ब्रिटेन ने चीन में साम्राज्यवादी पताका का पहला झंडा गाड़ दिया। ब्रिटेन को क्षतिपूर्ति के रूप में 2 करोड़ 10 लाख डॉलर की धनराशि प्राप्त हुई उसका चीन के पाँच बंदरगाहों पर प्रभुत्व स्थापित हो गया।

(2) चीन में साम्राज्यवाद– नॉनकिंग की संधि से प्रभावित होकर अब फ्रांस अमेरिका, बेल्जियम, प्रशा, हालैण्ड और पुर्तगाल आदि भी चीन में अपने प्रभाव की वृद्धि की ओर उन्मुख हुए। एक दशक के भीतर इन राष्ट्रों ने भी इन अधिकारों को प्राप्त कर लिया।

द्वितीय आंग्ल–चीन (अफीम) युद्ध (1856 ई.)

कारण–

(1) चीन में आंतरिक अराजकता– प्रथम अफीम युद्ध में पराजय के पश्चात् भी चीनी शासक भ्रम में थे। वे अपनी प्रथम हार को अस्थाई दुर्भाग्यपूर्ण एवं भयावह मानते थे, परंतु छालक नहीं मानते थे। वास्तविक स्थिति यह थी कि अफीम युद्ध में चीन की पराजय ने मंचू शासकों की अयोग्यता को उजागर कर दिया था देश में भ्रष्टाचार, शोषण, बेकारी, भुखमरी तथा षड़यंत्रों के कारण अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी।

(2) चीनी जनता में नॉनकिंग की संधि के प्रति असंतोष– चीनी लोग नानकिंग की संधि से असंतुष्ट थे। चीनी इसे अपमानजनक मानते थे। कैंटन में विदेशियों के विरूद्ध विद्वेष की भावना तीव्र थी वहाँ के पोस्टरों में विदेशियों को चेतावनी दी जाती थी एक पोस्टर पर लिखा था– **कि ''यदि बर्बर विदेशी कैंटन में इधर-उधर जाएंगे तो उन्हें मार डाला जाएगा और सारे नगर की घास और पेड़ पत्ती तक छीन ली जाएगी, ताकि विदेशी भूख से मर जाएंगे।''**

(3) **विदेशियों द्वारा चीनियों को मजदूर बनाकर विदेश भेजना**– मंचू शासकों की दुर्बलता एवं चीन में व्याप्त बेकारी तथा भुखमरी का लाभ विदेशियों ने उठाया। उन्होंने चीनियों को मजदूरों के रूप में क्यूबा, पेरू आदि स्थान पर भेजा। इसके लिए उन्होंने बल का प्रयोग भी किया। मंचू शासकों ने इसका विरोध किया परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।

(4) **विदेशियों द्वारा समुद्री शक्ति का दुरुपयोग**– विदेशियों ने अपनी समुद्री शक्ति का दुरुपयोग किया। उन्होंने जलदस्युओं को पकड़ने के बहाने चीनी जहाजों से उनकी रक्षा के नाम पर बड़ी धनराशियाँ वसूल कीं।

(5) **तात्कालिक कारण ऐरो जहाज की घटना**– 8 अक्टूबर 1856 ई. को चीनी अधिकारियों द्वारा लोर्चा ऐरो नामक समुद्री जहाज पर छापा मारकर उसमें स्थित 12 सदस्यों को समुद्री लूट के अभियोग में गिरफ़्तार करना था ब्रिटिश दूत ने सदस्यों की रिहाई की मांग की 22 अक्टूबर 1850 ई. को चीन ने बंदियों को रिहा कर दिया, परन्तु के साथ कोई उच्च चीनी पदाधिकारी नहीं आया था। अतः केवल इस बात को लेकर कि बंदियों को छोड़ने कोई उच्च अधिकारी नहीं आया और न ही चीन ने क्षमा प्रार्थना की है, ब्रिटिश सेना ने कैंटन पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। इसी प्रकार फ्रांस ने भी एक फ्रांसीसी धर्म प्रचारक की चीन में हत्या के मुकाबले को लेकर चीन के विरूद्ध युद्ध की घोषणा की। इस प्रकार द्वितीय अफीम युद्ध में फ्रांस व इंग्लैण्ड ने मिलकर चीन के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की। फ्रांसीसी सेनाएँ बमबारी करती हुई तिन्तसीन नामक स्थान पर जा पहुँची। अंत में विवश होकर विजयी राष्ट्रों एवं चीन के मध्य **तिन्तसीन** की संधि हुई।

तिन्तसीन की संधि

शर्तें:–

(1) चीन ने 11 नए बंदरगाह व्यापार एवं निवास के लिए खोल दिए।

(2) विदेशी जहाजों को रक्षा और व्यापार के लिए यांगत्सी नदी में प्रवेश की अनुमति मिली।

(3) विदेशी राष्ट्रों को पीकिंग में राजदूत रखने की अनुमति मिली।

(4) विदेशियों को चीन के आंतरिक भागों में आने-जाने की सुविधा प्राप्त हुई।

(5) चीन में ईसाई धर्म प्रचारकों के धर्म प्रचार की अनुमति मिली उनकी रक्षा का दायित्व चीन सरकार का था।

(6) चीन ने इंग्लैण्ड एवं फ्रांस को युद्ध की क्षतिपूर्ति देना स्वीकार किया।

(7) चीन ने शुल्क की नई एवं उदार दरें स्वीकार की।

(8) अफीम के व्यापार को कानूनी मान्यता प्राप्त हुई।

तिन्तसीन की संधि के क्रियान्वयन के प्रश्न पर पुनः युद्ध

तिन्तसीन की संधियों को पीकिंग सरकार ने संतुष्ट किया परन्तु इनको लागू तभी होना था जब इन संधियों की प्रतियों का आदान-प्रदान पीकिंग में हो जाए परन्तु चीनी पक्ष

द्वारा अड़ंगा लगाए जाने के कारण पुनः युद्ध आरंभ हुआ। चीनी सेनाएं अंग्रेजों तथा फ्रांसीसी सेनाओं से पुनः पराजित हुईं।

टिप्पणी

पीकिंग की संधि– अक्टूबर 1860 ई.

(1) तिन्तसिन को विदेशी व्यापार के लिए खोला गया।

(2) हांगकांग के सामने कोलून प्रायद्वीप ब्रिटेन को प्राप्त हुआ।

(3) पीकिंग में ब्रिटिश प्रतिनिधि को स्थाई रूप से निवास की सुविधा मिली।

(4) चीन ने 1724 ई. में जब्त संपत्ति रोमन कैथेलिक चर्च को वापस देने का आश्वासन दिया।

(5) चीनी मजदूरों को विदेश भेजा जाना वैध घोषित हुआ।

परिणाम–

(1) मंचू शासन की नींव हिल गई।

(2) चीन के सोलह बंदरगाह व्यापार के लिए खुल गए।

(3) विदेशियों को चीन के आंतरिक भागों में प्रवेश करने तथा चुंगी व्यवस्था में हस्तक्षेप का अधिकार प्राप्त हुआ।

(4) 1861 ई. में चीन के द्वार पूरी तरह से पश्चिमी देशों के लिए खुल गए।

(5) चीनी जनता एवं प्रशासन के दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वे अभी भी अपने को दुनिया में सबसे श्रेष्ठ मानते थे। परिस्थितियों से उन्होंने कोई सबक नहीं सीखा।

ताइपिंग विद्रोह'–

(1) चीन में विद्रोह की परम्परा– चीन में प्रशासनिक अव्यवस्था एवं असफलता के विरोध में विद्रोह की परम्परा अत्यंत प्राचीनकाल से थी, चीनी जनता कन्फ्युषियस के इस सिद्धांत पर विश्वास करती थी कि "जब कोई राजवंश शासन करने की शक्ति को खो देता है तो यह समझ लेना चाहिए कि ईश्वर ने अपने अधिकारों को वापस ले लिया है।" चीनी जनता सम्राट को अपना संप्रभु मानती थी, परन्तु यदि सम्राट निर्बल होता तो उसे सम्राट के पद पर ही बने रहने का कोई अधिकार नहीं था। चीन में इस प्रकार के विद्रोह हो चुके थे।

(2) परवर्ती मंचू शासकों की दुर्बलता– चीन में मंचू शासन की स्थापना के साथ ही एक वर्ग ने यह प्रचार करना आरंभ कर दिया था कि "चीन के स्वर्गिक साम्राज्य को मंचू वंश के शासन से मुक्ति दिलाना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि मंचू शासन चीन का हन्ता है।" प्रारंभिक मंचू शासक योग्य थे, अतः उन्होंने स्थिति को नियंत्रित रखा परन्तु परवर्ती मंचू शासक अयोग्य एवं शक्तिहीन सिद्ध हुए।

(3) आंतरिक अव्यवस्था– सिएन फेंग के निर्बल शासन काल में भ्रष्टाचार की जिस गति से वृद्धि हो रही थी उससे प्रशासनिक एवं सैनिक अधिकारियों में विलासिता की भावना घर कर गई। अतः राजकीय अधिकारी अपने नैतिक कर्तव्यों से गिर गए। अतः देश में अव्यवस्था एवं अशांति फैल गई।

(4) सामाजिक एवं आर्थिक असंतोष– चीन की जर्जरित सामाजिक एवं आर्थिक अव्यवस्था ने ताईपिंग विद्रोह की पृष्ठभूमि तैयार की। वास्तव में, ताईपिंग विद्रोह के समय चीनी समाज मूलतः दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग निर्धन, कृषक, निर्धन मध्यम वर्ग एवं ग्रामीण सर्वहारा वर्ग था तो द्वितीय वर्ग में व्यावसायिक एवं शासकीय प्रतिष्ठानों से संबंध उच्च अधिकारी तथा सम्पन्न वर्ग था। प्रथम वर्ग का जिस प्रकार सम्पन्न वर्ग द्वारा शोषण किया जा रहा था उससे प्रथम वर्ग में अत्यंत असंतोष था।

(5) दक्षिण चीन में दुर्भिक्षा एवं बाढ़द का प्रकोप– चीन की दुर्बल आर्थिक स्थिति पर 1846-47 में क्वांगषी हुनान एवं क्वांगतुंग में लगातार होने वाले दुर्भिक्ष एवं वाद ने तीव्र घातक प्रहार किया। मंचू शासक वाद व दुर्भिक्ष से पीड़ित लोगों की सहायता कर पाने में असमर्थ रहे। अतः दक्षिणी चीन में गरीबी, महामारी एवं उत्पीड़न का जो भीषण जानलेवा दौर चल रहा था उसने जन असंतोष को जन्म दिया।

(6) गुप्त समितियों की क्रियाशीलता– केन्द्रीय शासन की निर्बलता ने चीन में अनेक समितियों के जन्म में योगदान दिया। पाइल्यान-चिकाओ, सान हो हुई, थिएन ती हुई तथा हुंग मेनप्रमुख गुप्त समितियाँ थीं। ये गुप्त समितियाँ क्रांतिकारी विचारों से ओतप्रोत थीं तथा इन्होंने अपने-अपने छोटे-छोटे संगठन बना लिए थे।

(7) सैन्य दुर्बलता– मंचू शासन सैनिक तंत्र पर आधारित था अतः प्रारंभिक मंचू शासकों ने सैन्य संगठन एवं सैन्य व्यवस्था पर विशेष बल दिया था परन्तु उत्तरवर्ती मंचू शासनकाल में प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार ने सैन्य संगठन को भी प्रभावित किया।

ताईपिंग विद्रोह का प्रसार–

हुंग हसिऊ चुआन ने शांग ती हुई (ईश्वर पूजकों की संस्था) नामक समिति का गठन कर मंचू प्रशासन की नीतियों के विरोध में 1851 ई. में विद्रोह कर दिया जो कि इतिहास में ताईपिंग के विद्रोह के नाम से जाना जाता है। हुंग ने स्वयं को इसी का अनुज कहना प्रारंभ किया एवं यह घोषित किया कि ईश्वर ने उसे भ्रष्ट मंचुओं के शासन का अन्त करने के लिए भेजा है। उसने एक नूतन शांति व्यवस्था पूर्ण शांति की स्थापना का दावा किया।

हुंग की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और उसके अनुयायिओं की संख्या तीस हजार तक जा पहुँची। अतः मंचू प्रशासन के कान खड़े होना स्वाभाविक था। अतः शाही सैनिकों को हुंग के आंदोलन को कुचलने के आदेश दे दिए गए परन्तु ताईपिंग विद्रोहियों ने 25 सितम्बर 1851 ई. को यूनान पर अधिकार कर तेपिंग-ती एन कुओ (महान शांति का दैवी साम्राज्य) की घोषणा कर दी। इसके उपरांत विद्रोहियों ने हुवान एवं नॉनकिंग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

ताईपिंग विद्रोहियों की उक्त सफलताएँ क्षणिक सिद्ध हुई 1864 ई. तक तो विद्रोह में गतिशीलता बनी रही, परन्तु इसकी गतिशीलता ने विदेशी शक्तियों के कान खड़े कर दिए। विदेशी शक्तियाँ अपने हितों के लिए मंचू शासन को चीन में स्थिर देखना चाहती थी। अतः विदेशी शक्तियों (ब्रिटेन, फ्रांस, रूस एवं अमेरिका) ने मंचू प्रशासन के सम्मुख

यह प्रस्ताव रखा कि यदि चीन 30 लाख ताएल विदेशी शक्तियों को दे तो वे ताईपिंग का दमन करने को तैयार है मंचू प्रशासन ने इसकी स्वीकृति दे दी अतः विदेशी शक्तियों की सेनाओं ने ताईपिंग विद्रोहियों का दमन प्रारंभ कर दिया। 1863 ई. में विदेशी सेना ने सुचाऊ पर अधिकार कर लिया। 1864 ई. में नानकिंग विद्रोहियों से खाली करा दिया गया। 1864 ई. में इस असफलता से दुखी होकर ताईपिंग विद्रोह के नेता हुंग हसिऊ चुआन ने आत्महत्या कर ली और विद्रोह का अन्त हो गया।

ताईपिंग विद्रोह के परिणाम/प्रभाव/महत्व–

(1) इस विद्रोह के कारण चीन को काफी नुक़सान उठाना पड़ा जिससे केन्द्रीय शासन की कमजोरी मालुम हुई।

(2) ताईपिंग विद्रोह में मंचू सरकार को व्यापक जन-धन का अपव्यय करना पड़ा।

(3) विद्रोह का प्रभाव कर प्रणाली पर भी पड़ा। आंतरिक व्यापार समाप्त होने लगा।

(4) चीनवासियों ने राष्ट्रवादी और देशभक्तिपूर्ण भावनाएँ आईं।

(5) स्त्रियों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया गया।

(6) चीन में विदेशी प्रभुत्व बढ़ने लगा।

इस विद्रोह के कारण चीन में राजनीतिक अस्थिरता आई। देश की आर्थिक दशा खराब हुई। मंचू शासन का खोखलापन दिखाई दिया। विदेशी सहायता से यह विद्रोह कुचला गया।

''बॉक्सर विद्रोह''

भूमिका– चीन के इतिहास में बॉक्सर विद्रोह का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है यह विद्रोह 'इ-हो-चुआन-अटूट भ्रातृत्व – Society of Religious Harmony) नामक एक गुप्त संस्था से संबंधित है। इस संस्था के सदस्यों का विश्वास था कि शक्ति व्यक्ति के हाथों में निहित होती है। संभवतः यह इनकी संगठनात्मक शक्ति की महत्ता पर विश्वास का प्रतीक था। इस संस्था के सदस्यों ने चीन की परिस्थिति का अवलोकन करते हुए 1899 ई. के अन्त में विदेशियों को एक विदेशी विरोधी अभियान किया। मुक्का मार कर विदेशियों को बाहर निकालने की भावना के कारण इस अभियान को बाक्सर विद्रोह कहा जाता है।

बॉक्सर विद्रोह के कारण–

(1) विदेशी विरोधी भावना– 1842, 1858, 1860 एवं 1894-95 हमें चीन को विदेशी शक्तियों के साथ संघर्ष में पराजय का मुँह देखना पड़ा था। यह चीन का राष्ट्रीय अपमान था चीन में विदेशियों की आक्रामक कार्यवाहियों के कारण चीन को विवश होकर उनसे अपमान और असमान संधियाँ करनी पड़ीं। इन संधियों से विदेशियों के निवास और व्यापार के लिए अनेक बंदरगाह खुल गए और उन्होंने बर्बरता से चीन का शोषण करना प्रारंभ कर दिया था इससे चीनियों में विदेशियों के प्रति घोर असंतोष उत्पन्न हो गया। चीन में सर्वत्र नारा गूंजने लगा, ''देश को बचाओ, विदेशियों का नष्ट करो''।

(2) चीनी सरकार की निर्बलता– चीन में शासन कर रही मंचू सरकार ने जिस प्रकार चीन के आंतरिक विद्रोहों का दमन करने के लिए विदेशी शक्तियों का

आश्रय लिया था उसने मंचू सरकार की निर्बलता को स्पष्ट कर दिया। सरकार की निर्बलता उस समय और भी स्पष्ट रूप से सामने आई जब वह अकाल पीड़ितों की आवश्यक और सामाईक मदद देने में असफल रही।

(3) **चीन पर विदेशी शासन की स्थापना का भय**– जिस समय चीन में साम्राज्यवादी अपने शिकंजे कस रहे थे, उस समय तक भारत, फिलीपाइन एवं वर्मा आदि देशों में पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपना साम्राज्य कायम कर लिया था। चीनी इस बात से अत्यंत भयभीत थे कि कहीं चीन भी प्रत्यक्ष रूप से भारत आदि देशों की भाँति साम्राज्यवादी शक्तियों का गुलाम न बन जाए।

(4) **यूरोपीय पूंजीपति वर्ग के प्रति घृणा**– यूरोपीय चीन में एक पूंजीपति या व्यापारी की हैसियत से व्यापार करने आए थे, परन्तु उन्होंने धीरे-धीरे व्यापार को जिस तरह अपने शिकंजे में लेना प्रारंभ कर दिया था, वह चीन के हित में नहीं था। देश के उद्योग धन्धों, खानों, रेल्वे आदि पर विदेशी अर्थजाल फैल चुका था।

(5) **धार्मिक कारण**– चीन में यूरोपीय पूंजीपति वर्ग के साथ-साथ ईसाई धर्म प्रचारक एवं पादरी भी आए थे अपने प्रयत्नों से उन्होंने कई चीनियों को ईसाई बना दिया। धीरे-धीरे चीन की प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता परम्पराओं रीति-रिवाजों का खण्डन आरंभ हो गया। इस प्रकार सामान्य चीनी वर्ग को यह आशंका हो गई कि उनकी सभ्यता एवं संस्कृति खतरे में है, अतः उन्होंने ईसाईयों के विरूद्ध अपना आक्रोश विद्रोह के रूप में प्रकट किया।

(6) **चीन में पाश्चात्य आर्थिक नियंत्रण**– चीन में रेल्वे लाईन निर्माण और विकास में तथा खानों की खुदाई में विदेशियों ने अधिक पूंजी लगाई इससे रेल्वे क्षेत्र का प्रशासन और पुलिस अधिकार इन देशों के हाथ में आ गया। युद्धों के बाद क्षतिपूर्ति के लिए धन देने हेतु चीन ने रूस, ब्रिटेन और जर्मनी से ऋण लिए। सीमा शुल्क के निर्धारण और उसमें की गई 5 प्रतिशत की वृद्धि भी विदेशी शक्तियों के हाथों में रही। इस प्रकार चीन इन यूरोपीय राज्यों की पूंजी में फंसता चला गया और चीन पर विदेशी शक्तियों का आर्थिक नियंत्रण स्थापित हो गया।

आंदोलन का प्रारंभ एवं प्रसार–

आई-हो-चुआन संगठन ने अपना अभियान शालुंग प्रान्त में 1899 ई. में प्रारंभ किया। मिशनरियों और विदेशियों को कई तरह से क्षति पहुँचाई गई। गिरिजाघर जला दिया गया, तार एवं रेल मार्ग उखाड़ दिए गए अनेकों की हत्याएँ कर दी गईं। 1900 ई. के बसंत तक यह आंदोलन विद्रोह चीन के सभी बड़े नगरों में फैल गया। राजधानी बीजिंग में जर्मन राजदूत की हत्या कर दी गई। अब औपचारिक रूप से मंचू राजदरबार ने और प्रांतों में चीनी अधिकारियों ने आंदोलन का समर्थन किया और अब विदेशियों को चीन से मार भगाने का योजनाबद्ध प्रयास आरंभ हो गया। बाद में विदेशियों के भय से मंचू सरकार ने समर्थन बंद कर दिया।

टिप्पणी

बॉक्सर विद्रोह की असफलता के कारण–

बॉक्सर विद्रोह की असफलता के कारण निम्नलिखित है–

(1) **विदेशी सेना का हस्तक्षेप–** जर्मन राजदूत की हत्या होते ही जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका एवं जापान ने इस पश्चिमी शक्तियों के स्वार्थ की पूर्ति में बाधा देख प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाते हुए अपनी-अपनी सेनाएँ बीजिंग भेज दी। विदेशियों की सम्मिलित सेना से विद्रोहियों का जूझना अत्यंत दुष्कर था, सबल विदेशी सेना ने विद्रोहियों को कुचलकर रख दिया।

(2) **मंचू सरकार द्वारा विदेशियों से समर्थन वापस लेना–** विद्रोह की व्यापकता को देखकर मंचू प्रशासन ने प्रारंभ में विद्रोहियों का साथ दिया और विदेशियों को 24 घंटे के भीतर राजधानी छोड़ने के आदेश भी दिए। परन्तु विदेशी सेनाओं से युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर मंचू सरकार ने अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए विद्रोह को समर्थन देना बन्द कर दिया। इससे विद्रोहियों को अकेले ही विदेशी सेनाओं से मुकाबला करना पड़ा, वास्तव में मंचू सरकार का यह विश्वासघात विद्रोह के दमन का प्रमुख कारण बना।

(3) **विद्रोह सीमित होना–** विद्रोह का उद्देश्य राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत था परन्तु यह विद्रोह अपने विस्तार के क्रम में अत्यंत सीमित रह गया। दूसरे शब्दों में यह जन आंदोलन नहीं बन पाया। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि विद्रोही नेताओं ने सामान्य जनता का सहयोग प्राप्त करने का कोई महत्वपूर्ण प्रयत्न नहीं किया।

(4) **चीनी अधिकारियों का रुख–** चीनी अधिकारियों ने बॉक्सर विद्रोह को कुचलने में विदेशी शक्तियों का साथ दिया। तित्सीन, नॉनकिंग एवं वूचूंग के प्रांतपति के कारनामे इसके स्पष्ट प्रमाण है। प्रांतपति विद्रोहियों के नेता थे उन्होंने भी कालांतर में विद्रोहियों के साथ विश्वासघात किया।

अतः स्पष्ट है कि बॉक्सर विद्रोह की असफलता का मूल कारण उसे चीनी सरकार व अधिकारियों का उस समय सहयोग न मिलना था जबकि उसे विदेशी शक्तियों की सेना से जूझना पड़ा।

बॉक्सर विद्रोह के परिणाम– क्लाइड के शब्दों में– ''बॉक्सर विद्रोह ने चीन की आगामी राजनीति को अत्यंत प्रभावित किया। इसने मंचू वंश के पतन एवं गणतंत्र के उदय का मार्ग प्रशस्त कर दिया।''

(1) विद्रोह दमन में विदेशियों के हाथों चीन की पराजय होने से विदेशियों से समझौते करने में चीन को अत्याधिक अपमानित होना पड़ा।

(2) लोगों में यह धारणा हो गई कि चीन के अपमान और तिरस्कार के लिए मौजूदा सरकार जिम्मेदार है। अतः ऐसी सरकार खत्म हो जाना चाहिए और इसीलिए जब 11 वर्ष बाद चीन में क्रांति हुई, तो उसके हल्के झटके से ही मंचू राजवंश और शासन धराशाही हो गया। इस प्रकार यह विद्रोह मंचू राजवंश के लिए घातक सिद्ध हुआ।

(3) चीन को अत्याधिक आर्थिक क्षति हुई।

(4) विदेशी राजदूतों अधिकारियों और सेनाओं का चीन से व्यवहार ऐसा हो गया, कोई एक सार्वभौमसत्ता अपने अधीनस्थ और आश्रित राज्य से करती है।

चीन की क्रान्ति 1911 ई.

सन् 1911 ई. में चीन में मंचू राजवंश के विरूद्ध क्रान्ति हुई। चीन में मंचू वंश के स्थान पर गणतंत्र की स्थापना हुई। इस क्रांति के मुख्य प्रणेता डॉ. सुनयात सेन थे।

चीनी क्रान्ति के कारण–

(1) **विदेशियों का बढ़ता प्रभाव**– 1842-1910 ई. तक के युग में विदेशियों ने बार-बार चीन पर आक्रमण किए थे और देश के अनेक प्रांतों को हड़प लिया था, शेष जो बच रहा था उसके बड़े भाग को उन्होंने अपने-अपने हित क्षेत्रों में बाँट लिया था। हर विदेशी शक्ति अपने हित क्षेत्र की खुलकर लूट करती थी और चीन की जनता का शोषण करती थी मंचू सरकार इन विदेशी लुटेरों के मुकाबले नितांत अयोग्य और निकम्मी सिद्ध हुई थी। वह सभीं क्षेत्रों में शस्त्रास्त्रों समरनीति तथा कूटनीति में विदेशियों की तुलना में घटिया सिद्ध हुई। ऐसी सरकार के खिलाफ जनता में असंतोष का उमड़ना स्वाभाविक था।

(2) **बॉक्सर विद्रोह की विफलता**– मुक्का विद्रोह की असफलता भी 1911 की क्रान्ति का कारण थी। चीन की जनता ने ठीक ही समझ लिया था, विदेशी लुटेरे उसकी सारी विपदाओं के लिए जिम्मेदार थे, इसलिए पहले वे ही उसके रोष के शिकार बने और बॉक्सर विद्रोह हुआ। विद्रोह की पहल जनता के कुछ वर्गों ने की किन्तु सरकार उस विद्रोह को संगठित करने और व्यापक रूप देने में असफल रही। यद्यपि सरकार को विद्रोहियों से सहानुभूति थी और आगे चलकर उसने उनको कुछ सहायता भी दी थी, किन्तु उसके निकम्मेपन के कारण विद्रोह कुचल दिया गया। इससे जनता में उसके खिलाफ रोष उत्पन्न हुआ।

(3) **चीन में भयंकर अकाल**– पाश्चात्य देशों के शोषण के कारण चीन की आर्थिक दशा अत्यंत शोचनीय हो गई थी। 1901 ई. के बॉक्सर प्रोटोकाल के कारण चीन को क्षतिपूर्ति में विशाल धनराशि पाश्चात्य देशों को देनी पड़ी थी। इससे चीन के कृषि उद्योगों पर दुष्प्रभाव पड़ा। दुर्भाग्य से चीन में 1910-11 ई. में भयंकर बाढ़ें आई जिससे कृषि नष्ट हो गई और अकाल के कारण तीस लाख चीनी भूख से मर गई। इससे चीन में विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गई जो अयोग्य मंचू राज्य के विरूद्ध थी।

(4) **प्रवासी चीनी श्रमिकों का प्रभाव**– आर्थिक संकट के कारण लाखों चीनी चीन छोड़कर अमेरिका, मलाया, फिलीपींस, दक्षिणी अमेरिका के देशों में बस गए थे। इन प्रवासी चीनियों की संख्या लगभग 25 लाख थी इन प्रवासी चीनियों को उन देशों की जनता के सम्पर्क में आने का अवसर मिल गया जिससे उनमें वैचारिक परिवर्तन हुए। अब वे चीनियों में भी उसी प्रकार का सुधार चाहते थे। गणतंत्र की मांग तथा 1911 ई. की क्रांति में इन चीनियों की प्रमुख भूमिका थी।

(5) **चीन में क्रांतिकारी दलों का निर्माण**– पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त चीनी नवयुवक चीन में क्रान्ति के द्वारा गणतंत्र स्थापित करना चाहते थे। इस प्रकार के गुप्त क्रान्तिकारी दलों का निर्माण चीन में हो रहा था। इन क्रान्तिकारी दलों में डॉ. सुनयात सेन का दल तुंग मेंग हुई दल प्रमुख था। डॉ. सुनयात सेन ने

1898 ई. में केंटन में विद्रोह का प्रयास भी किया था जिसके असफल हो जाने पर वह जापान भाग गए थे। चीन के नगरों में भी इसकी शाखाएँ स्थापित हो गई। इस दल का प्रभाव सेना पर भी था।

टिप्पणी

(6) उच्च शिक्षा का प्रसार– इस समय चीन में स्थान-स्थान पर कॉलेजों की स्थापना की जा रही थी। इन कॉलेजों में चीनी विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे इन विद्यार्थियों पर क्रांतिकारी विचारों का गहरा प्रभाव था। वे गणतंत्र के समर्थक थे और 1911 ई. की क्रांति में उन्होंने क्रांति को सफल बनाने में योगदान दिया था।

(7) समाचार-पत्रों का प्रभाव– शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ चीन में राष्ट्रवाद का प्रचार हो रहा था, चीनी अपने देश को सम्मान दिलाना चाहते थे और पाश्चात्य देशों को चीन से निकालना चाहते थे। इस समय समाचार पत्रों का प्रकाशन बड़ी संख्या में हो रहा था। इन समाचार पत्रों ने जनता में नई भावनाओं को विकसित करने और लोकतंत्र शासन की स्थापना के लिए आंदोलन करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

(8) सूबेदारों में असंतोष– इस समय रेलमार्गों के निर्माण के प्रश्न पर केन्द्रीय सरकार तथा कुछ प्रांतीय सूबेदारों में मतभेद हो गया। चीन की केन्द्रीय सरकार रेलमार्गों का निर्माण विदेशी पूंजी से करा रही थी और रेलमार्गों पर अपना नियंत्रण रखना चाहती थी। दूसरी ओर ऐसे प्रांतीय सूबेदार थे जो अपने प्रांतों के राजस्व से पूंजी की व्यवस्था करके रेलमार्गों का निर्माण कराना चाहते थे। उनका विरोध यह था कि विदेशी पूंजी के कारण इन पाश्चात्य देशों का चीन पर नियंत्रण बढ़ता जा रहा था। अतः वे केन्द्रीय सरकार की नीति के विरोधी थे। क्रांति के समय इन सूबेदारों ने क्रांतिकारियों का साथ दिया, जिससे क्रांति सफल हो सकी।

(9) हेंको की घटना-तात्कालिक कारण– 10 अक्टूबर 1911 ई. को हेंको में एक बम का विस्फोट हुआ। जाँच से ज्ञात हुआ कि जिस मकान में बम विस्फोट हुआ था, वह क्रांतिकारियों के शस्त्र निर्माण का अड्डा था। पुलिस ने बड़ी संख्या में क्रांतिकारियों को बंदी बनाया। अनेक सैनिक और सैनिक अफसरों को भी संदेह में बंदी बनाया गया। इससे सेना में असंतोष फैल गया। सैनिकों को आशंका थी कि क्रांतिकारियों से सहानुभूति रखने के कारण उन्हें बंदी बनाया जा सकता है अतः बूचांग प्रदेश की सेना ने विद्रोह कर लिया। इस प्रकार 1911 ई. की गणतंत्रीय क्रांति आरंभ हुई।

क्रांति की घटनाएँ–

बूचांग स्थित क्रांतिकारियों ने क्रांतिकारी परिषद् की स्थापना के उद्देश्य से सभी स्वतंत्र प्रांतों को अपना-अपना प्रतिनिधि वूचांग भेजने के लिए अपील की। प्रतिनिधियों ने एक वचन पत्र तैयार किया। यही वचन पत्र आगे चलकर प्रारंभिक काम चलाऊ संविधान के रूप में नानकिंग में स्वीकृत हुआ। शंघाई में शीघ्र ही एक सैनिक सरकार का गठन हो गया। इधर केन्द्रीय सरकार ने घबराकर विद्रोह का दमन करने के लिए युआन शिकाई को प्रधानमंत्री बनाया, परन्तु युआन शिकाई अत्यंत महत्वाकांक्षी व्यक्ति था उसने पूर्ण निष्ठा के साथ विद्रोह दमन का प्रयत्न नहीं किया।

चीनी क्रांति की असफलता के कारण–

(1) युआन शिकाई का उत्तरदायित्व– चीन की क्रांति का असफलता का सबसे बड़ा कारण युआन शिकाई का प्रतिक्रियावादी दुख था। वह क्रांति के परिणामस्वरूप चीनी गणराज्य का राष्ट्रपति नियुक्त हुआ, परन्तु उसकी महत्वाकांक्षी ने उसे तानाशाह बनने की ओर प्रेरित किया। मई 1914 ई. में उसने चीन के लिए कमी थी। वस्तुतः हर दृष्टि से अधिकार उसने अपने पद में सुरक्षित कर लिए थे। उसके सलाहकार फ्रेंक ने तो यहाँ तक कहना प्रारंभ कर दिया था कि **''चीन में गणतंत्र की उपेक्षा राजतंत्रात्मक प्रथा अधिक उपयुक्त है, जिस देश में लागों का बौद्धिक स्तर ऊँचा नहीं है। वहाँ गणतंत्रात्मक सरकार बेकार हो जाती है।''** अतः युआन शिकाई ने दिसम्बर 1915 ई. में अपनी पीछे उन जनता के 1834 प्रतिनिधियों को बुलाकर अपना राज्याभिषेक तक की भूमिका बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु विद्रोह के कारण उसका स्वप्न पूरा न हो सका। उसने क्रांति के मूल उद्देश्य चीन को विदेशी प्रभाव से मुक्त रखने की नीति का भी परित्याग कर दिया। वह आजीवन विदेशियों के प्रभाव में रहा।

(2) राष्ट्रीयता की भावना का अभाव– चीन जैसे विशाल देशों को कभी भी मंचू शासकों ने केन्द्रीकृत करने का प्रयत्न नहीं किया। मंचू प्रशासन के समय चीन अनेक प्रदेशों में विभक्त था और प्रत्येक प्रदेशों में सामंती शासक प्रायः स्वतंत्रतापूर्वक शासन करता था प्रत्येक प्रदेश की शासन व्यवस्था अलग थी। अतः प्रांतीय सामंती शासक सदा अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाते हुए केन्द्रीय सरकार की उपेक्षा करते थे। इससे राष्ट्रीयता की भावना विकास नहीं हो पाया। अतः राष्ट्रीयता की भावना के अभाव में क्रांति असफल हो गई।

(3) जनमानस का जागृत न होना– चीन की अधिकांश जनता अशिक्षित थी तथा वह क्रांति या गणराज्य के अर्थ को समझने में असमर्थ थी। अतः चीन को नवोदित गणराज्य को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा।

(4) आर्थिक स्थिति– नई सरकार ने चीन की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कोई विशेष कदम नहीं उठाया। चीन की जनता नई सरकार से सुदृढ़ आर्थिक स्थिति की अपेक्षा करती थी, परन्तु जब स्थिति में कोई अंतर नहीं आया, तो उनके लिए गणराज्य एवं मंचू प्रशासन में कोई विशेष समझ नहीं आया। चीन की गणतंत्रीय सरकार के लिए भी वह असंभव था इतनी जल्दी वह चीन की आर्थिक स्थिति को ठीक कर पाती, क्योंकि मंचू प्रशासन ने देश को आर्थिक रूप से बिल्कुल जर्जरित कर दिया था।

अतः स्पष्ट है कि चीन में क्रांति के पश्चात् आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। मंचू राजवंश का राजवंश का पतन अवश्य हो गया। परन्तु युआन शिकाई ने पुनः उन्हीं कदमों पर चलकर क्रांति को असफल कर दिया।

4.4 जापान में मेईजी की पुर्नस्थापना (Replacement of Meiji in Japan)

टिप्पणी

मेईजी पुर्नस्थापना से तात्पर्य सम्राट की शक्ति पुर्नस्थापना से है तात्पर्य यह है कि तोकूगोवा शोगून के हाथों से शक्ति अब पुनः सम्राट के हाथ में आ गई। मेईजी सम्राट की अवधि थी 1786 ई. में जापान में जब यह महान परिवर्तन हुआ था उस समय जापान का सम्राट मत्सुहितो था। 1867 में वह सिंहासनारूढ़ हुआ था सम्राट बनने पर उसने मेईजी की उपाधि ग्रहण की। इस प्रकार जापान में प्रबुद्ध शासन प्रारंभ हुआ, परन्तु इसे सम्राट का व्यक्तिगत शासन समझना भूल थी।

मेईजी पुर्नस्थापना के कारण–

(1) **पाश्चात्य सम्पर्क–** उगते हुए सूर्य की शोगून सत्ता को 19 वीं शताब्दी में पाश्चात्य शक्तियों के सामने झुकना पड़ा एवं जापान में व्यापार की अनुमति देनी पड़ी। कनगावा की संधि 1854 ई. एवं 20 जून 1858 ई. को अमेरिका के साथ होने वाली द्वितीय संधि ने अमेरिका को जापान में व्यापारिक एवं राज्य क्षेत्रातीत अधिकार प्रदान कर दिए। अमेरिका को इस दौड़ में आगे बढ़ता देख, फ्रांस, ब्रिटेन एवं हालैण्ड कहाँ पीछे रहने वाले थे। उन्होंने भी जापान में अलग-अलग संधियाँ कर व्यापारिक एवं राज्याक्षेत्रातीत अधिकार प्राप्त कर लिए।

(2) **विदेशियों द्वारा जापान की प्राचीन परम्पराओं की अवहेलना–** विदेशियों का व्यापारिक प्रभुत्व जैसे-जैसे जापान पर बढ़ता गया शोगुन विरोधी सामंत उग्र होते गए। ये सामंत विदेशियों से घृणा करते थे तथा उन्हें जापान से बाहर निकाल देना चाहते थे। विदेशियों के प्रति उनके मन में बढ़ रही कटुता का प्रमुख कारण यह था कि विदेशी जापान की प्राचीन परम्पराओं की अवहेलना करते थे तथा उच्च कुल के सामंतों की अपेक्षा करते थे। जापानी शिष्टाचारों के अनुसार उच्च कुल के सामंत के जुलूस के निकलने पर उसके लिए मार्ग छोड़ दिए जाने की परंपरा थी। 1862 ई. में रिचर्डसन नायक एक अंग्रेज ने सत्यूमा कुल के सामंत के जुलूस के आने पर मार्ग नहीं छोड़ा तथा उसके प्रति अपेक्षित सम्मान का प्रदर्शन नहीं किया। इससे क्रोधित जापानियों ने रिचर्डसन की हत्या कर दी। ब्रिटिश सरकार ने इस घटना पर अपना विरोध दर्ज किया।

(3) **कानोशीमा पर गोलाबारी की घटना से शोगुन की प्रतिष्ठा को आघात–** ब्रिटिश सरकार ने रिचर्डसन की हत्या कर विरोध प्रदर्शित करते हुए सत्सूमा से अपराधियों को सौप देने की मांग की। ब्रिटिश मांगों को स्वीकृत न किए जाने पर अंग्रेजी सेना ने सत्सूमा की राजधानी कानो शीमा पर गोलाबारी कर दी। इस घटना ने जापान की सैनिक दुर्बलता को उजागर कर दिया। जापान में विदेशी–विरोधी भावना और प्रबल हुई। शोगुन विदेशियों का सक्षम प्रतिरोध करने में असमर्थ रहा, इससे शोगुन की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा।

(4) **शोगुन विरोधी सामंत वर्ग में एकता की स्थापना–** इन घटनाओं के कारण जापान में अशांति व्याप्त हो गई। शोगुन विरोधी कुल के सामंतों को यह समझ में आ गया था कि विदेशियों के मुकाबले जापानी ठहर नहीं सकते। अतः उन्होंने सम्राट को नियंत्रण में लेने तथा एक प्रकार की नई शोगुन संस्था बनाने

का षड़यंत्र किया। परन्तु यह षड़यंत्र सफल नहीं हुआ। इसी समय 1866 ई. शोगुन इदीसासू लोकूगावा की मृत्यु हो गई तथा केईकी नया शोगुन बना। 1867 ई. में सम्राट की मृत्यु हो गई तथा मुत्स्तुहितो जापान के नए सम्राट बने। इन बदली परिस्थितियों में शोगुन विरोधी सामंतो को शोगुन की शक्ति को नष्ट करने का अवसर मिला।

(5) **ताकूगावा उल के शोगुन का त्याग पत्र**– 1867 ई. की शरद ऋतु में चोषू सत्सूमा टोसा तथा हीजेन कुलों ने नए शोगुन को एक संयुक्त स्मृति पत्र देकर शासन की वास्तविक शक्ति सम्राट को सौंप देने को कहा। नया शोगुन जापानी जनता की मनोभावनाओं को समझता था। तत्कालीन परिस्थितियों में उसके लिए यह संभव नहीं था कि वह अधिक समय तक शासन का संचालन कर सके। अतः उसने शोगुन पद से त्यागपत्र दे दिया। इस प्रकार शोगुन संस्था समाप्त हो गई तथा सम्राट की शक्ति के पुर्नस्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

जापान का आधुनिकीकरण

जापान में विदेशी हस्तक्षेप के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में मेईजी पुर्नस्थापना हो चुकी थी, परन्तु विदेशी हस्तक्षेप से प्रतिरक्षा हेतु जापान का नवनिर्माण अत्यंत आवश्यक था। इसके लिए आवश्यक था कि पश्चिमी ज्ञान एवं विज्ञान की आधुनिकतम जानकारी प्राप्त कर जापान का पुर्नगठन आधुनिक राष्ट्र के रूप में किया जाए, जिससे यूरोपीय राष्ट्रों को जापान को अपने समकक्ष प्रतिष्ठित करने में विवश होना पड़े अतः प्रत्येक क्षेत्र में आधुनिकीकरण के ठोस कदम उठाए गए।

संक्षेप में इनका वर्णन निम्नानुसार है–

(1) **सामंती व्यवस्था का अन्त**– मेईजी पुर्नस्थापना में सामंत वर्ग का महत्वपूर्ण हाथ था परन्तु शासन के केन्द्रीयकरण के लिए सामंत वर्ग के अस्तित्व की समाप्ति की परमावश्यक थी।

मेईजी की पुर्नस्थापना के समय पर यह सोचा भी नहीं जा सकता था कि मेईजी की सत्ता की पुर्नस्थापना से सामंत वर्ग का अंत होगा, परन्तु राष्ट्रीयता की भावना एवं शासन की सुदृढ़ता के लिए समुराई वर्ग सामंत वर्ग की सत्ता को समाप्त करना चाहता था। इधर सामंत अब नाममात्र के सामंत रह गए थे। उनकी शक्ति समुराई वर्ग पर निर्भर हो गई थी अतः समुराई वर्ग के प्रभाव में आकर उन्होंने अपने अधिकारों के त्याग को स्वीकार कर लिया।

(2) **शासन तंत्र में सुधार**– प्रशासनिक ढाँचे के स्वरूप के निर्धारण हेतु एक आयोग का गठन कर उसे 1882 ई. में विश्व की विभिन्न शासन व्यवस्थाओं के अध्ययन हेतु विभिन्न स्थानों पर भेजा गया। आयोग की रिपोर्ट के आधार पर एक नया संविधान बनाकर उसे 1889 ई. में लागू किया गया। संविधान के अनुसार सर्वोच्च स्थान सम्राट का रखा गया। वह प्रशासनिक सेवाओं का संगठनकर्ता था। सैनिक व असैनिक पदों पर नियुक्तियाँ एवं पदच्युति का अधिकार उसे था अधिकारियों को वेतन का निर्धारण भी वही करता था। संधि एवं युद्ध की घोषणा उसी के निर्णयानुसार होती थी। सेना का वह सर्वोच्च अधिकारी था प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक विधायिका की

टिप्पणी

स्थापना की गई। इसे डायट कहा जाता था इसको दो सदन थे। प्रथम उच्च सदन एवं द्वितीय निम्न सदन। उच्च सदन में सम्राट द्वारा मनोनीत व्यक्ति था। कुलीन एवं सामंतो के प्रतिनिधियों को भी इसमें शामिल किया गया था। निम्न सदन के सदस्यों को मतदाता निर्वाचित कर भेजते थे। निम्न सदन को वित्तीय अधिकार नहीं थे।

(3) **सेना का आधुनिकीकरण**– जनसाधारण के प्रत्येक वर्ग के लिए सेना के द्वार खोल दिए गए। एक सैनिक विभाग की स्थापना की गई। सामंतों के सैन्य संगठनों को समाप्त कर दिया गया। 1872 ई. में सेना के संगठन एवं सेवा के संबंध में महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। 21 वर्ष की आयु वाले प्रत्येक स्वस्थ पुरुष के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य हो गई। जापान को सैनिक दृष्टि से छह जिलों में विभक्त कर दिया गया। प्रत्येक जिले में एक सैनिक विभाग की स्थापना की गई। रिकूगन देगाको में सैनिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देने हेतु प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया गया। 1872 ई. में नौ सेना विभाग का गठन किया गया। 1882 ई. तक नौ सेना के क्षेत्र में जापान ने आश्चर्यजनक विकास कर दिया।

(4) **शिक्षा का पुनर्गठन**– पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान से जापानी जनमानस को परिचित कराना चरित्र निर्माण सम्राट एवं राष्ट्र के प्रति भक्ति एवं निष्ठा का विकास शिक्षा के महत्वपूर्ण मानदंड निश्चित किए गए। 1871 ई. में शिक्षा विभाग का गठन हुआ। प्रत्येक वर्ग के स्त्री एवं पुरुष के लिए शिक्षा अनिवार्य है इसका मूल उद्देश्य यह है कि समाज में कोई भी परिवार का कोई भी व्यक्ति अज्ञानी एवं अशिक्षित न रहे। 1871 ई. में होसी 1877 ई. में टोकियो विश्वविद्यालय, 1880 में शैन्यू विश्वविद्यालय एवं 1882 में वाशेडा विश्वविद्यालय खोले गए। स्त्रियों की शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया गया।

(5) **पत्रकारिता का विकास**– शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तनों से पत्रकारिता पर विशेष प्रभाव पड़ा। सबसे पहला जापानी दैनिक समाचार पत्र **'याकोहामा माइचीनी शीम्बून'** 1870 ई. में प्रकाशित हुआ। 1875 ई. तक लगभग 100 समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं की बाढ़ ने जापानी जनमानस को बौद्धिक एवं शैक्षिक रूप से जागरूक कर दिया।

(6) **धार्मिक जीवन में परिवर्तन**– मेईजी पुर्नस्थापना के पश्चात् राष्ट्रीयता के विकास के दृष्टिकोण से प्राचीन 'शिन्तो धर्म' को लोकप्रिय बनाया गया। शिन्तो धर्म के प्रसार के लिए इसे राजधर्म भी घोषित किया गया।

(7) **आर्थिक विकास**– जापान में पाश्चात्य औद्योगिक विकास की ही नीति का अनुगमन कर औद्योगिक विकास की ओर ध्यान दिया गया। 1870 ई. में उद्योग मंत्रालय की स्थापना की गई। 1871 ई. में मशीनों के पुर्जे और सामग्री बनाने का कारखाना 1875 ई. में सीमेन्ट का कारखाना एवं 1876 ई. में कांच का कारखाना खोला गया। कपड़ा निर्माण हेतु भी कई कारखाने खोले गए। टोकियो एवं ओसका में गोला बारूद, बंदूक एवं तोप के कारखाने खोले गए।

यातायात एवं संचार साधनों के विकास की ओर ध्यान दिया गया। जापान का अधिकांश भाग पहाड़ी होने पर भी वहाँ रेल्वे लाइनों के निर्माण का श्रीगणेश हुआ 1893 ई. तक 1,520 मील तक की रेल की पटरी बिछा दी गई। संचार साधनों

टिप्पणी

के विकास हेतु डाक विभाग का संगठन किया गया। 1895 ई. तक 762 टेलीग्राफ घर खोल दिए गए। 1897 ई. में जापान को अंतर्राष्ट्रीय डाक संघ का सदस्य बना लिया गया। जापान में बैंकिंग व्यवस्था का भी विकास किया गया। 1873 ई. में नेशनल बैंक की स्थापना हुई। 1880 ई. तक 150 से भी अधिक बैंक अस्तित्व में आ गए।

(8) **न्यायिक सुधार**– निष्पक्ष न्यायपालिका की व्यवस्था की गई। दीवानी और फौजदारी कानूनों का नए सिरे से निर्माण किया गया।

(9) **जापानी जीवन शैली का पश्चिमीकरण**– जापान के सामाजिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन के लक्षण स्पष्ट चिंहित होने लगे। जापानी वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान एवं अन्य सामाजिक क्रियाकलापों में जापानियों ने पश्चिम की नकल प्रारंभ कर दी। 1872 ई. में सभी राजकीय पदाधिकारियों का पश्चिमी पोषाक धारण करना अनिवार्य घोषित कर दिया गया। बालों में गांठ लगाने की प्रथा का अंत हो गया। जापानियों ने पश्चिमी शैली की नृत्य कला को अपनाया। इस प्रकार जापानी शैली का पश्चिमीकरण हुआ।

इस प्रकार संपूर्ण विवरण स्पष्ट करता है कि राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में जापान ने प्राचीनता के विचार छोड़कर नवीन पाश्चात्य शैली को अपनाया जिससे जापान का आधुनिकीकरण हो गया।

जापान में सैन्यवाद के उदय के कारण–

मेईजी पुर्नस्थापना के पश्चात् जापान पश्चिमी देशों में प्रभावित होकर आधुनिकता की ओर अग्रसर हुआ। इसी लहर में जापान में सैनिकवाद का उदय हुआ। जापान में सैनिकवाद के उदय के प्रमुख कारण निम्नलिखित थेः–

(1) **सेना का आधुनिकीकरण**– जापान में सैन्यवाद के उदय के मूल कारण जापान के शासकों द्वारा सेना का आधुनिकीकरण था इससे प्राप्त लाभों का फल जापान ने 1877 ई. के भयंकर सत्यूमा विद्रोह का सफलतापूर्वक दमन करने एवं 1894-95 ई. में चीन-जापान युद्ध में चीन को पराजित करने के रूप से चख लिया था। अतः सैन्यीकरण के विकास की प्रक्रिया की ओर अधिक बल दिया।

(2) **जापान का औद्योगिकीकरण**– जापान ने वृहद औद्योगिकीकरण की नीति को अपनाया। अब जापान को जापान में तैयार माल की प्राप्ति के लिए उपनिवेशों की आवश्यकता महसूस होने लगी। जापान को अब औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उपनिवेशों की होड़ में लगे पश्चिमी राष्ट्रों के साथ आगे बढ़ता था अतः वर्चस्व स्थापित करने के लिए आवश्यक था कि जापान शक्ति का संवर्धन करता। इसी शक्ति संवर्धन करना। इसी शक्ति संवर्धन की प्रवृत्ति ने सैन्यवाद का विकास किया।

(3) **जापान राष्ट्रीय परम्परायें**– जापान प्राचीनकाल से ही सैन्य शक्ति की परम्परा वाला देश रहा है जापानी समाज में सदा से ही सैनिक को सर्वाधिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता था पश्चिम का जापान में प्रवेश जिस प्रकार हुआ था उसने जापान की सैन्य शक्ति की दुर्बलता को स्पष्ट कर दिया था। अपनी सैनिक परम्परा का अपमान जापान कैसे सहन कर सकता था।

(4) सैनिक अधिकारियों का उग्र स्वभाव– जापान में सैन्यीकरण की प्रवृत्ति के विकास में महत्वाकांक्षी एवं उग्र स्वभाव वाले देशभक्त सैनिक अधिकारियों का भी महत्वपूर्ण योगदान था उन्होंने इस बात पर बल देना प्रारंभ कर दिया कि राष्ट्र की शक्ति एवं एकता को कायम रखने के लिए जापान का सैन्यीकरण आवश्यक है।

(5) जनसमर्थन– शोगून की सत्ता स्थापित करने तक सेना के द्वार केवल समुराई वर्ग के लिए खुले थे। साधारण वर्ग का व्यक्ति सेना में प्रवेश नहीं पा सकता, परन्तु मेईजी पुर्नस्थापना के विधान शपथ के अनुसार सेना के द्वार सभी योग्य पात्रों के लिए खोल दिए गए। इससे जनसाधरण वर्ग में भी सैन्यीकरण की प्रवृत्ति का विकास हुआ। जनसाधारण वर्ग जो कि सेना में प्रवेश नहीं कर सकता था उसने इस बंधन से मुक्त होकर अपने देश के अपमान का बदला लेखा चाहता था। अतः जनसमर्थन ने सैन्यीकरण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(6) साम्राज्यवाद की भावना– राष्ट्र की शक्ति और सत्ता में वृद्धि करने के लिए तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रभाव बढ़ाने के लिए जापान के शासक वर्ग ने सैन्यवाद और साम्राज्यवाद को प्रोत्साहित किया।

(7) सैनिकवाद की परम्परायें– जापान में 12 वीं सदी से शोगून प्रणाली चली आ रही थी शोगून सर्वोच्च सैनिक अधिकारी का महत्वपूर्ण पद था। सम्राट इनके द्वारा ही शासन संचालन करता था। फलतः शासन का स्वरूप सैनिक बन गया था। जापान में सदियों तक यह सैन्य व्यवस्था बनी रही। शासन के आधार सैन्य प्रधान बन गए। यद्यपि 1868 में शोगून व्यवस्था समाप्त कर दी गई पर सैनिक परम्पराएँ बनी रहीं। इन्होंने जापान साम्राज्यवाद को प्रोत्साहित किया।

(8) राष्ट्रीय सेना का गठन और अनिवार्य सैनिक सेवा– मेईजी ने सामंती सेना का अंत कर जापान में राष्ट्रीय सेना गठित की जिसमें योग्यता के आधार पर सभी वर्ग के लिए लोग सेना में नियुक्त हो सकते थे। इसके साथ-साथ 1872 ई. में जापान में अनिवार्य सैनिक सेवा प्रारंभ कर दी गई, जिसके अंतर्गत प्रत्येक स्वस्थ युवक को सैनिक प्रशिक्षण लेकर सैनिक सेवा में रहना पड़ता था। वह जापान के सैन्यवाद का महत्वपूर्ण क्रांतिकारी कदम था। इस राष्ट्रीय सेना को आधुनिक अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित किया गया। गोला बारूद, हथियारों, तोपों आदि के निर्माण के लिए विशिष्ट कारखानें स्थापित किए।

(9) युद्ध एवं नौसेना मंत्री का सैनिक सेवा से सम्बद्ध होना– जापानी मंत्रिमंडल में युद्ध मंत्री और नौ-सेना मंत्री के दो पद कायम किए गए थे। इन पदों पर वे ही व्यक्ति नियुक्त हो सकते थे जो सैनिक सेवा से संबंधित रहे हों ये भेजी महत्वपूर्ण मामलों पर विचार करने के लिए प्रधानमंत्री से मिले बिना सीधे सम्राट से भेंट करते थे और निर्णय लेते थे।

4.5 चीन-जापान युद्ध 1894 ई., रूस-जापान युद्ध 1905 ई., चीन-जापान युद्ध 1937 ई. (Sino-Japanese War 1894 AD, Russia-Japan War 1905 AD, Sino-Japanese War 1937 AD)

भूमिका– 19 वीं सदी के चतुर्थांश में जापान ने पश्चिमी देशों के समान साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण प्रारंभ किया। जापान की साम्राज्यवादी नीति के मूल में वहाँ की अभूतपूर्व औद्योगिक क्रांति उन्नति सैनिकवादी मनोवृत्ति का विकास एवं यूरोपीय देशों के साथ समानता की इच्छा प्रमुख थी। जापान ने साम्राज्यवाद के प्रारंभिक काल 1875-90 ई. में तीन द्वीप समूहों पर अधिकार किया। अन्य पाश्चात्य शक्तियों की तरह जापान भी चीन के मूल्य पर अपना साम्राज्य विस्तार करना चाहता था और कोरिया का प्रश्न लेकर जापान को इसके लिए अवसर हो गया।

युद्ध के कारण-बिनाके के अनुसार– ''जापानी राजनीतिक, परिस्थिति महाद्वीप में प्रसार के लिए कोरिया के द्वार घुसने की सदियों पुरानी जापान की इच्छा, किसी सशक्त विदेशी राष्ट्र द्वारा कोरिया पर कब्जा जमाने का जापान का राष्ट्रीय भय कोरिया प्रायद्वीप के साधनों का नियंत्रण में नई-नई पैदा हुई दिलचस्पी तथा कोरिया को बाजार के रूप में प्रयोग करने की संभावना।''

इस युद्ध के निम्नलिखित कारण थे–

(1) **चीन का पिछड़ापन एवं जापान का संकल्प**– चीन औद्योगिक और सैनिक दोनों ही क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ था उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठाकर यूरोपीय राष्ट्रों ने उसकी लूट-खसोट आरंभ कर दी थी। अतः जापान ने उस देश में प्रवेश करने संकल्प किया। चीन के बड़े बाजार में जापानी माल की खपत हो सकती थी। साथ ही साथ उसे वहाँ से कच्चा माल भी भारी मात्रा में और सस्ते मूल्य पर उपलब्ध हो सकता था। स्वयं जापान में कच्चे माल की कमी थी।

(2) **जापान की सैन्यवादी आक्रामक नीति**– जापान में उग्र सैन्यवादी वर्ग उभर रहा था यह वर्ग जापानी जनता और सरकार को प्रेरित कर रहा था कि वह अपने हित संर्वधन के लिए उग्र सैन्यवादी और आक्रामक नीति अपनाए।

(3) **जापान की प्रगति और महत्वाकांक्षी**– 19 वीं सदी में जापान में अभूतपूर्व प्रगति कर ली थी वह अपने प्रभुत्व और प्रभाव के विस्तार के लिए महत्वाकांक्षी था उसकी महत्वाकांक्षा का प्रथम लक्ष्य कोरिया था। कोरिया-चीन के सम्प्रभुत्व और नियंत्रण में माने जाने से चीन और जापान में तनाव बढ़ा।

(4) **कोरिया की स्थिति**– कोरिया की भौगोलिक स्थिति की महत्ता ने जापान एवं चीन को प्राचीन काल से ही आकर्षित किया था। कोरिया प्राचीनकाल से ही जापान को एक विजेता राष्ट्र मानते हुए वार्षिक उपहार प्रदान करता था। यह प्रथा मध्य युग में जापान में गृह युद्ध की स्थिति को छोड़कर अबाध रूप से जारी रही। दूसरी ओर कोरिया ने स्वयं को चीन का करद राज्य (Vassal State) माना था। कोरिया की जनता में चीन के प्रति सद्भाव कृतज्ञता एवं प्रेम की भावना थी,

टिप्पणी

तो जापान के प्रति हिड़योशी के बर्बर आक्रमण के कारण घृणा एवं रोष था। यूरोप के अन्य देशों को कोरिया तक बढ़ने में जापान एवं चीन सदा ही बाधा के रूप में सामने आऐ। इस कारण कोरिया का संबंध भी इन्हीं देशों तक बना रहा। इस प्रकार जापान एवं चीन दोनों ही कोरिया राज्य पर अपना-अपना प्रभुत्व मानते थे और इस प्रभुत्व में कमी नहीं आने देना चाहते थे।

(5) **कच्चे माल एवं बाजार तथा बढ़ती जनसंख्या के लिए चावल की आवश्यकता**– मेईजी पुर्नस्थापना के पश्चात् जिस प्रकार जापान का औद्योगिक विस्तार हुआ था उससे जापान को बृहद मात्रा में कच्चे माल एवं बाजार की नितान्त आवश्यकता थी जापान अपनी इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति कोरिया से कर सकता था। जापान की बढ़ती हुई जनसंख्या उसके लिए सिरदर्द बनती जा रही थी ऐसी स्थिति में जापान को कोरिया के बृहद मात्रा में चावल भी प्राप्त हो सकता था, क्योंकि चावल का बृहद मात्रा में उत्पादन करने वाला देश था पर कोरिया में चावल के निर्यात पर लगा प्रतिबन्ध जापान के लिए बड़ी बाधा था।

(6) **रूसी व ब्रिटिश हस्तक्षेप का भय**– जापान को कोरिया में रूसी हस्तक्षेप का भय था रूस की सुदूरपूर्वी सीमाएं कोरिया की उत्तर-पश्चिम सीमाओं से मिलती थी। इधर रूस ने 1868 ई. में ऊसरी नदी के पूर्व भाग पर आधिपत्य स्थापित करते हुए कोरिया की उत्तरी सीमा के पास ब्लाडीवोस्टोक नामक बंदरगाह स्थापित करने में असफलता प्राप्त कर ली। इधर रूसी प्रभाव की समाप्ति के लिए इंग्लैण्ड प्रयत्नशील था अतः इंग्लैण्ड ने उक्त उद्देश्य से दक्षिण कोरिया के हेमिल्टन बंदरगाह पर अधिकार कर लिया। इस समय ब्राह्य संसार से अलग एवं राष्ट्रीय अज्ञानता से अनभिज्ञ कोरिया किसी को भी यूरोपीय शक्ति के हस्तक्षेप का सामना करने की क्षमता नहीं रखता था अतः जापान के कान खड़े होना स्वाभाविक था, क्योंकि यदि कोरिया में रूस व इंग्लैण्ड का अधिपत्य स्थापित हो जाता तो जापान की प्रादेशिक एकता एवं अखंडता को खतरा उत्पन्न हो सकता था।

(7) **जापान द्वारा कोरिया की स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान करवाना**– युद्ध के लिए कृतसंकल्प विस्तारवादी नेताओं की मांग को उस अत्यधिक बल मिल गया। जब 1975 ई. में एक जापानी जहाज के कोरिया पहुँचने पर उस पर गोलाबारी कर नष्ट कर दिया गया। युद्ध की मांग की प्रबलता से प्रभावित होकर जापानी सरकार ने 1876 में एक दूत मंडल कोरिया की राजधानी सिओल भेजा। जापानी दबाव में उत्तर कोरिया को जापान के साथ एक संधि करनी पड़ी। इस संधि के द्वारा जापानी व्यापार के लिए कतिपय कोरियाई बंदरगाह खुल गए जापान को राज्याक्षेत्रातीत अधिकार एवं अनेक व्यापारिक विशेषाधिकार भी प्राप्त हो गए। जापान को सीमा शुल्क निर्धारण की सार्वभौमिकता प्राप्त हुई। जापान के देखा देखी अन्य देशों ने भी कोरिया से संधि की। इससे कोरिया एक सार्वभौमिक एवं स्वतंत्र सत्ता के रूप में सामने आया।

(8) **कोरिया के आंतरिक विद्रोह**– चीन के समर्थक दल ने कैथोलिक धर्म प्रचारकों के विरोध में तोंगडाक दल का गठन किया। इस दल के नेतृत्व में कोरिया की जनता ने तत्कालीन भ्रष्ट प्रशासन के विरोध में विद्रोह कर दिया जो

तोंगहाक विद्रोह के नाम से जाना जाता हे प्रशासन ने इस विद्रोह को दबाने में चीन की सहायता मांगी अतः चीन ने सैनिकों की एक टुकड़ी सिओल भेज दी। जबाव में जापान ने भी अपनी सेना की एक टुकड़ी वहाँ भेज दी। दोनों सेनाओं के सिओल पहुँचने से पहले से ही विद्रोह शांत हो गया। जापान ने इसी बीच चीन के सम्मुख कोरिया में सम्मिलित रूप से सुधार का प्रस्ताव रखा जिसे चीन ने ठुकरा दिया। इस पर जापान ने कोरिया सरकार पर जापानी सुधार योजना की स्वीकृति मांगी। कोरिया से स्वीकृति न मिलने पर जापान अत्याधिक रुष्ट हो गया और युद्ध का बहाना ढूँढने लगा।

(9) **तात्कालिक कारण**– 25 जुलाई 1894 को जापानी जंगी जहाजी बड़े 'नानीवा' ने चीनी नौ सेना के लिए रसद ले जाने वाले ब्रिटिश बेड़े 'कोसिंग' को नष्ट कर दिया। इस पर दुखी होकर चीन ने अगस्त 1894 ई. को जापान के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी अतः स्पष्ट है कि चीन-जापान युद्ध का वास्तविक कारण जापान एवं चीन दोनों के लिए कोरियामें प्रभुसत्ता स्थापित करना था। चीन और जापान के ऐतिहासिक संबंध कोरिया में ही केन्द्रित है और कोरियाको लेकर ही एशिया के इन दो महान राष्ट्रों में पहली बार गंभीर संघर्ष हुआ। इस युद्ध में जापान की जीत हुई और चीन को आत्म समर्पण कर 17 अप्रैल 1895 ई. की शिमोन्स्की की संधि के लिए बाध्य होना पड़ा।

शिमोन्स्की की संधि (1895)–

इस संधि के अनुसार–

(1) चीन ने कोरिया की स्वतंत्रता को मान्यता दी।

(2) चीन ने फारमोसा, पेस्काडोर्स द्वीप समूह एवं दक्षिण मंचूरिया के लियाओतुंग प्रायद्वीप पर जापान का प्रभुत्व स्वीकार किया।

(3) चीन ने जापान को 30 करोड़ ताएल की क्षतिपूर्ति देना स्वीकार किया। यह निश्चित हुआ कि जब तक चीन यह धन राशि नहीं चुकाएगा, जापानी सेनाएं वाई, हाई-वाई के बंदरगाह पर आधिपत्य रखेंगी।

(4) चीन ने जापान को व्यापार के लिए शासी चुंग किंग सूचाऊ एवं हैगचाउ बंदरगाह खोल दिए। चीन ने जापान को वे सभी सुविधाएं प्रदान की जो उसने अन्य यूरोपीय राज्यों को प्रदान की थी।

युद्ध के परिणाम एवं महत्व

इस युद्ध के परिणाम एवं महत्व का वर्णन निम्नवत है–

(1) **जापान के प्रभाव में वृद्धि– क्लाइड के अनुसार– ''जापान की सैनिक और नाविक विजय ने सुदूरपूर्व में एक नए युग का आरंभ अंकित किया, जिसका प्रभाव एशिया और यूरोप पर समान रूप से पड़ा।''** चीन से प्राप्त धन एवं भूमि तथा कोरिया में व्यापारिक एवं व्यावसायिक अधिकारों की प्राप्ति ने जापान के राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जापान के सैनिकवाद को प्रोत्साहन मिला जापान की गणना विश्व की महान् शक्तियों में की जाने लगी।

(2) **चीन पर प्रभाव**– जापान की विजय ने चीन के खोखलेपान एवं उसकी शक्तिहीनता को स्पष्ट कर दिया। अब यूरोपीय साम्राज्यवादी देशों ने खुलकर चीन को लूटना प्रारंभ कर दिया। रूस, जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैण्ड ने चीन से संधियाँ कर पट्टे प्राप्त करने रेल्वे लाइन बिछाने, कोयले की खदानें खोदने आदि अनेक रियासतें प्राप्त की। यही नहीं, चीनियों के हृदय में मंचू सरकार के प्रति घोर निराशा की भावना का जन्म हो गया और सरकार के प्रति इस घृणा भावना से चीन में बॉक्सर विद्रोह एवं 1911 की चीनी क्रांति की पृष्ठभूमि तैयार दी।

(3) **यूरोपीय हस्तक्षेप तथा जापान द्वारा लियाओतुंग की वापसी**– 17 अप्रैल 1895 ई. को सम्पन्न शिमोन्सकी संधि द्वारा जापान शक्तिशाली देशों की श्रेणी में आ गया। उससे यूरोपीय शक्तियाँ चौकन्नी एवं आश्चर्यचकित हो गईं। सबसे अधिक हरकत में रूस आया, क्योंकि उसकी उत्तरी सीमा कोरिया और मंचूरिया से टकराती थी। रूस ने फ्रांस और जर्मनी के साथ मिलकर जापान पर यह दबाव डाला कि वह लियाओतुंग चीन को वापस कर दे। फ्रांस भी रूस का साथ देने को तैयार था। अमेरिका ने भी अपना विरोध दर्ज किया था अतः विवश हो कर जापान को 8 नवम्बर 1895 ई. को एक समझौते के तहत् लियाओ तुंग छोड़ना पड़ा।

(4) **आंग्ल जापान संधि**– शिमोन्सकी की संधि के विरोध में जर्मनी, रूस और फ्रांस द्वारा लियाओतुंग से जापान को हटाने के प्रयास से ब्रिटेन ने जिस प्रकार खुद को अलग रखा था उससे जापान ने स्पष्ट अनुमान लगा लिया था कि भविष्य में ब्रिटेन से कोई समझौता या अनुबंध किया जा सकता है। वास्तव में ब्रिटेन पूर्व में जापान को रूस के प्रतिद्वंदी के रूप में खड़ा करने का पक्षपाती था इधर इस घटना ने जापान व हालैण्ड को नजदीक लाने में पर्याप्त भूमिका निभाई और 1902 ई. की आंग्ल-जापान संधि की पृष्ठभूमि तैयार की और जिसकी अभिपुष्टि से जापान की शक्ति बहुत बढ़ गई। उसका अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में काफी प्रभाव बढ़ गया। 1902 ई. की यह संधि 1903 ई. और 1911 ई. में पुनः दोहराई भी गई।

(5) **रूस-जापान युद्ध**– शिमोन्सकी संधि का जिस तरह रूस ने विरोध किया था उससे जापान ने रूस को घोर शत्रु मान लिया। जापान को जिस प्रकार लियाओलुंग छोड़ना पड़ था उसे वह भूल नहीं सकता था। अतः उसने सामरिक शक्ति में वृद्धि कर रूस से युद्ध कर उससे अपने अपमान का बदला लेने का निश्चय कर लिया। इस प्रकार चीन-जापान युद्ध ने रूस-जापान युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

रूस-जापान युद्ध 1904-05 ई.

1904–05 ई. रूस-जापान युद्ध विश्व इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी इस युद्ध के समय रूस का जार निकोलस द्वितीय (1894-1917) था जापान में सम्राट मुत्सुहितो (1867-1912) का शासन था यह युद्ध जापान के सैन्यवाद का परिचायक था। जापान ने मेईजी काल के आरंभ में ही पश्चिमी साम्राज्यवाद से मुक्त होकर शीघ्र ही शक्ति और महत्वकांक्षा का शानदान प्रदर्शन करने में सफलता प्राप्त की थी। जापान की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा इस युद्ध का प्रमुख कारण था।

टिप्पणी

रूस-जापान युद्ध के कारण–

इस युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

(1) रूस-जापान की स्वभावगत शत्रुता– रूस और जापान की महत्वाकांक्षाएँ एक-दूसरे से टकराती थी। दोनों देशों ने सखालीन और क्यूरिल द्वीपों का झगड़ा सुलझा लिया था परन्तु इसे मन से स्वीकार नहीं किया था। इसी प्रकार शिमोनस्की की संधि (1895) कोरिया और मंचूरिया में विशेषाधिकार का प्रश्न तथा रूस द्वारा सुविधाएँ प्राप्त करना जापान के लिए दुखदाई था दोनों के हितों में टकराव की स्वाभाविक परिणिति युद्ध था।

(2) मंचूरिया का प्रश्न– मंचूरिया का प्रदेश भौगोलिक दृष्टि से चीन के उत्तर में स्थित है यह प्रदेश उद्योगों के लिए महत्वपूर्ण था। उद्योगों को चलाने के लिए आवश्यक सामग्री कोयला, लोहा यहाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। रूस और जापान दोनों ही पक्ष इस क्षेत्र का आर्थिक दोहन करना चाहते थे।

शिमोन्सकी की संधि का विरोध कर रूस ने चीन का पक्ष लेते हुए चीन को अपने प्रभाव में ले लिया था। 1895 ई. में उसने रूस से संधि भी कर ली। मंचूली से ब्लादीवोस्टक तक रेल्वे लाइन बिछाने की अनुमति भी उसने प्राप्त कर ली। पोर्ट आर्थर एवं उसके समीप का प्रदेश रूस ने 25 वर्ष के लिए लीज पर ले लिया। इस क्षेत्र की किलेबंदी भी प्रारंभ कर दी। इससे रूस की शक्ति में वृद्धि हो गई। अब वह मंचूरिया में पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने का विचार करने लगा। शनैः–शनैः उसने वहाँ सैनिक शासन स्थापित कर लिया। इधर जापान अतिरिक्त जनसंख्या को वहाँ बसाना चाहता था लियाओतुंग पर कब्जे के पीछे भी उसकी यही मंशा थी, पर रूस ने उसका वह कब्जा छुड़वा दिया था और स्वयं अपना प्रभुत्व मंचूरिया में जमा रहा था। रूस ने 1903 ई. में मास्को और पोर्ट आर्थर के बीच सीधी रेल्वे लाइन का निर्माण कर लिया था और पूर्वी एशिया के लिए एक रूसी वाइसराय भी नियुक्त कर दिया था। वह मंचूरिया को रूस का एक प्रान्त घोषित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था अतः जापान के लिए रूस से युद्ध जरूरी था।

(3) आंग्ल-जापान संधि– 1902 ई. में जापान और ब्रिटेन के बीच जो संधि हुई थी उसमें ब्रिटेन ने जापान की महत्वाकांक्षाओं और उसके विश्व शक्ति बनने के प्रयासों को मान्यता दे दी और प्रत्यक्ष रूप से 19 वीं सदी के अंतिम चरण में प्रारंभ किए गए जापान के प्रसारवादी कार्यक्रमों को मान्यता दे दी। जापान को अब वह दृढ़ विश्वास हो गया कि वह किसी बाहरी शक्ति के हस्तक्षेप से मुक्त होकर रूस से अपनी महत्वाकांक्षाओं, मांगों और पूर्ति के लिए सफलता से संघर्ष कर सकेगा।

(4) तात्कालिक कारण– 1902 ई. की आंग्ल–जापान संधि के पश्चात् जापान की स्थिति बहुत बदल गई थी जापान रूस से मंचूरिया और कोरिया के संबंध में स्पष्ट समझौता करना चाहता था परन्तु रूस जापान को कोरिया में केवल वाणिज्य और उद्योग बढ़ाने को अनुमति देने को तैयार था रूस जापान को राजनीतिक अधिकार देने को तैयार नहीं था निरंकुश जार यह समझते रहे कि जापान युद्ध के लिए तैयार नहीं है इंग्लैण्ड और अन्य यूरोपीय देश भी यही

समझते रहे कि जापान युद्ध की पहल नहीं करेगा परन्तु स्थितियाँ बदल गई थी रूस के अडियल रुख का परिणाम यह हुआ कि जापान ने 6 फरवरी 1904 ई. को उससे अपना राजनायिक संबंध तोड़ लिए।

फ्रांच एच. माइकल के अनुसार– ''1904-05 ई. का रूस-जापान युद्ध रूस और जापान के मध्य कोरिया और मंचूरिया में साम्राज्यवादिता के फलस्वरूप हुआ।''

युद्ध की घटनाएँ– 10 फरवरी 1904 ई. को जापान ने पोर्ट आर्थर पर आक्रमण करके युद्ध आरंभ कर दिया। देखने में यह युद्ध महादैत्य और बौने का था, परन्तु रूस के मुकाबले जापान अच्छी स्थिति में था इसका कारण यह था कि ब्रिटेन जापान की आर्थिक सहायता करने और अन्य देशों को हस्तक्षेप न करने देने के प्रयास के लिए वचनबद्ध था। अमेरिका ने भी यह घोषणा की कि अमेरिका अन्य देशों का हस्तक्षेप सहन नहीं करेगा अन्य देशों को हस्तक्षेप से रोक दिया था रूसी जार गलतफहमी में था वे समझते थे कि युद्ध या शांति का निर्णय उनके हाथ में है। रूस की आंतरिक स्थिति अच्छी नहीं थी, रूस क्रांति के लिए तैयार बैठा था, रूस ने युद्ध की कोई तैयारियाँ भी नहीं की थी जापान का जनमत रूसी प्रभाव रोकने के लिए व्यग्र था, वास्तव में युद्ध के लिए रूस अधिक उत्तरदायी था।

यह युद्ध मुख्यतः मंचूरिया और कोरिया में लड़ा गया। नानशान लिआओलुंग तथा मुकेदन के युद्धों में रूसी सेना पराजित हुई। मुकेदन का युद्ध निर्णायक रहा। समुद्री युद्ध में रूसी पराजित हुए। उनके जहाजी बेड़ों को जापान के एडमिरल रोगों ने नष्ट कर दिया। थला एवं जल दोनों स्थानों पर रूसी पराजित हुए। अतः अमेरिका के राष्ट्रपति थिरोडोर रूजवेल्ट ने मध्यस्था की। उनके प्रयत्नों से रूस-जापान युद्ध की समाप्ति हुई। 5 सितम्बर 1905 ई. को पोर्टस्माउथ में रूस तथा जापान ने एक संधि पर हस्ताक्षर कर दिए।

पोर्टस्माउथ की संधि– 5 सितम्बर 1905 ई.

इस संधि की शर्तें प्रमुख रूप से निम्नलिखित थी–

(1) रूस ने कोरिया में जापान के सर्वोपरि राजनीतिक एवं आर्थिक हितों को मान्यता प्रदान की।

(2) मंचूरिया का लियाओतुंग प्रायद्वीप तथा यहाँ रूस को प्राप्त सभी अधिकार जापान को हस्तांतरित कर दिए गए।

(3) रूस ने मंचूरिया में अपने स्वामित्व का चीनी पूर्वी रेल्वे का दक्षिणी भाग जापान को सौंप दिया।

(4) सखालीन द्वीप का आधार निचला भाग जापान को दे दिया गया।

(5) जापान और रूस ने मंचूरिया से एक साथ और पूर्णरूप से अपनी सेनाएं हटा लेने पर सहमति व्यक्त की।

(6) दोनों देश इस बात पर सहमति व्यक्त की कि वे लियाओलुंग प्रायद्वीप को छोड़कर मंचूरिया में अपने अधीन रेलमार्गों का उपयोग केवल व्यापारिक और औद्योगिक विकास के लिए ही करेंगे।

(7) चीन मंचूरिया में उद्योग एवं व्यवसाय की प्रगति के जो भी कदम उठाएगा उसमें रूस और जापान हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

रूस-जापान युद्ध का महत्व एवं परिणाम–

मेरियट के अनुसार– ''रूस-जापान युद्ध एक गुजायमान महत्वपूर्ण घटना थी और इसकी दूरगामी प्रतिक्रिया हुई।''

(1) जापान पर प्रभाव– जापान के छोटे से एशियाई राज्य द्वारा यूरोप की महान शक्ति को पराजित किए जाने से जापान की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। सुदूरपूर्व में जापान एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उदित हुआ। विनाके के अनुसार– ''युद्ध आरंभ होने के समय जापान के उत्तरदायी राजमर्मज्ञ जिने की आशा कर रहे थे, उसमें कहीं अधिक उसे युद्ध में प्राप्त हो गया था। एक सशक्त आक्रमक शक्ति से अपने हितों के बचाव में जापान ने शस्त्र उछल थे और उस शक्ति को खदेड़ कर बाहर कर दिया था।''

(2) जापान की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं में वृद्धि– इस युद्ध में विजय ने जापान की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं को और अधिक प्रबल किया। मंचूरिया और कोरिया में जापान के लिए चुनौती नहीं रह गई। कोरिया जापान का संरक्षित राज्य बन गया। 1910 ई. में जापान की कोरिया के साथ एक संधि हुई। इसके फलस्वरूप जापान ने कोरिया पर अधिकार कर लिया।

(3) जापान की उन्नति– जापान की व्यापारिक व्यावसायिक तथा आर्थिक उन्नति हुई। प्रथम विश्व युद्ध तक जापान अत्यंत शक्तिशाली हो गया।

(4) रूस का प्रभाव– रूस की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा। रूस का चीन में साम्राज्यवादी प्रसार रोक दिया गया। **ली बेन्स के अनुसार– ''स्पष्ट रूप से जापान को सुदूरपूर्व में रूस की विस्तारवादी नीति को रोकने में सफलता मिली।''** अतः उसने बल्कान में अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के प्रयास किए।

(5) एशिया का प्रभाव– जापान जैसे छोटे से एशियाई देश ने रूस को पराजित कर एशिया के पराधीन देशों को स्वतंत्र होने की प्रेरणा दी। जापान की विजय में **'एशिया एशियवासियों के लिए है।'** का नारा बुलंद हुआ।

(6) यूरोप की राजनीति पर प्रभाव– यूरोप की राजनीति पर इसका प्रभाव पड़ा। इंग्लैण्ड और रूस के मध्य तनाव समाप्त हुआ। 1907 ई. में इंग्लैण्ड-रूस गठबंधन में बंध गए। रूस ने जब पश्चिम और पूर्व में अपने विस्तार के मार्ग को अवरूद्ध पाया, तो उसने बल्कान क्षेत्र में विस्तार का प्रयत्न किया। इससे पूर्वी समस्या अधिक गंभीर हो गए। वह पूर्वी समस्या वाद में प्रथम महायुद्ध का कारण बनी।

रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय के कारण–

1904-05 ई. में रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

(1) रूस के यूरोपीय भाग से लेकर पोर्ट आर्थर तक रूसी रेल्वे व्यवस्था की दुर्बलता रूस की पराजय का कारण बनी।

(2) रूसी सेना में अनुशासन की कमी तथा सुरक्षित सेना का प्रशिक्षित न होना पराजय का कारण बना।

(3) रूसी सेना जापान के मुकाबले रणनीति तथा प्रशिक्षण में कमजोर थी रूसी सैनिक अधिकारी योग्य नहीं थे।

(4) आंग्ल-जापान संधि 1902 ई. ने रूस को अकेला कर दिया गया था फ्रांस या अन्य दूसरी यूरोपीय शक्ति रूस की मदद नहीं की।

(5) 1905 ई. की रूसी क्रांति ने रूसी शक्ति को कमजोर बनाया।

(6) जापान ने पूर्ण उत्साह देशभक्ति, बहादुरी एवं त्याग की भावना से युद्ध लड़ा था।

(7) जापान की यातायात एवं चिकित्सा व्यवस्था अत्यंत अच्छी थी।

द्वितीय चीन-जापान युध्द-1937–

1905 ई. में रूस से युद्ध से जापान की मंचूरिया में अपना फैलाव करने का मौका मिल गया और 1932 ई. में सम्पूर्ण मंचूरिया में जापान का आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद जापान संपूर्ण चीन को अपने आधिपत्य में लाना चाहता था जापान में बढ़ती सैन्यवादी प्रवृत्ति ने उदारवादी प्रवृत्तियों की एक न चलने दी। सैन्यवादी जापान के लिए उत्तरी चीन का अत्याधिक महत्व था।

युद्ध के प्रमुख कारण–

(1) अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ– 1937 ई. तक अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ जापान के अनुकूल हो चुकी थी मंचूरिया के प्रश्न पर राष्ट्र संघ की निर्बलता से उसका भय समाप्त हो गया था। इंग्लैण्ड, फ्रांस, और रूस तो जर्मनी में हिटलर एवं इटनी में मुसोलिनी के अभ्युदय से परेशान थे। इंग्लैण्ड, जापान और रूस के लिए हिटलर व मुसोलिनी का आतंक समाप्त किए बिना सुदूरपूर्व की समस्या पर गंभीर रूप से ध्यान दे सकना सम्भव नहीं था। अमेरिका ने इस बीच तटस्थता की नीति की घोषणा कर दी। जापान ने इस परिस्थिति में 1936–37 ई. में जर्मनी एवं इटली से समझौता कर लिया। यह समझौता इतिहास में **'एंटी कोमिण्टर्न पैक'' (Anti Comitern pact)** के नाम से जाना जाता है। जापान, जर्मनी और इटली के मध्य हुए इस समझौते ने जापान को नई शक्ति प्रदान कर दी।

(2) चीन में जापान का प्रभाव– चीन में बढ़ते हुए जापानी प्रभाव के कारण चीन में राष्ट्रीय एकता की भावना ने जन्म लिया जिसके कारण चीन-जापान विद्रोह की भावना दिन प्रतिदिन प्रबल होते चली गई। अब प्रत्येक चीनी, जापान का मुकाबला करने को तन-मन-धन से तैयार था।

(3) साम्यवादी व कुमाओमितांग सरकार के बीच समझौता– 25 दिसम्बर 1936 ई. को च्यांग काई शेक को रिहा कर दिया गया ताकि सम्यवादी व कुमाओमितांग सरकार के बीच एक समझौता हो गया। समझौता हो जाने से चीन के आंतरिक संघर्ष की समाप्ति हुई तथा देश की संपूर्ण जनता एक मिलकर जापान का विद्रोह करने को तैयार हो गई।

(4) जापान विरोधी भावनाएँ– देश में जापान विरोधी भावनाएँ इतनी प्रबल हो उठीं कि जापान विरोधी प्रदर्शन होने लगे। हैन्को में एक जापानी सिपाही का वध कर दिया गया। इस घटना ने जापान को बहुत उत्तेजित किया।

(5) **जापान में सैन्यवाद और विस्तारवाद**– इस आदर्श से प्रेरित हो, जापान के सैनिक अधिकारीगण चीन पर अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं के लिए आक्रमण कर अपने हितों का विस्तार करना चाहते थे।

युद्ध की प्रमुख घटनाएँ–

(1) **पीकिंग पर कब्जा**– पीकिंग होपई प्रांत का ही नगर था अतः आक्रमण यहीं से प्रारंभ हुआ। 27 जुलाई 1937 ई. को जापानी सेनाओं का पीकिंग पर कब्जा हो गया। इसके बाद जापानी सेनाओं ने आंतरिक मंगोलिया के चहर तथा सुईयुयान प्रदेशों पर आक्रमण किया तथा इन पर अधिकार कर लिया। इसके बाद जापानी नेताओं ने शान्सी प्रदेशों की ओर प्रस्थान किया। यह प्रदेश साम्यवादियों के अधीन था, यहाँ पर जापानी सेनाओं का डरकर मुकाबला किया गया। अतः जापानी सेनाएँ इस पर कब्जा न कर सकी लेकिन शान्सी के पूर्वी प्रांतों पर जापानियों का कब्जा हो गया।

इस विचित्र प्रदेशों के लिए जापान ने दो सरकारों का संगठन किया। 29 अक्टूबर 1937 को मंगोलिया की स्वतंत्र सरकार तथा 14 दिसम्बर 1937 को पीकिंग सरकार का गठन किया गया जिस पर पूर्वी शान्सी प्रदेश की शासन व्यवस्था का भार लादा गया। मंगोलिया सरकार को चहर तथा सुईयुयान प्रदेश शासन संचालन हेतु सौंप दिए गए।

(2) **नानकिंग पर कब्जा**– यहाँ पर सरकारों का संगठन करने के साथ-साथ जापानी सेनाओं ने दक्षिण चीन के समुद्र तटों पर हमला किया। नवम्बर 1937 ई. में जापानी सेनाओं ने शंघाई को भी विजयी कर लिया। शंघाई के बाद जापानी सेनाओं ने नानकिंग की ओर प्रस्थान किया 15 दिसम्बर 1937 ई. को नानकिंग जो कुमाओमितांग सरकार की राजधानी थी, पर जापान का कब्जा हो गया। कमाओमितांग सरकार जापान की शक्तिशाली सेना का मुकाबला करने की स्थिति में न थी अतः च्यांग काई शेक ने सभी सरकारी कार्यालयों को जापानी सेनाओं के प्रवेश से पूर्व ही हैंको पहुँचा दिया था, अब तक च्यांग की सभी सर्वोत्तम सैनिक टुकड़ियाँ समाप्त हो चुकी थी, अतः उसने हैंको पहुँचकर वहीं से जापान के विरूद्ध युद्ध जारी रखा।

(3) **हैंको व कैन्टन पर कब्जा**– हैंको व कैन्टन पर कब्जा करने से पूर्व जापान के विदेश मंत्री ने एक घोषणा में कहा कि वह चीन की केन्द्रीय सरकार के साथ समझौता करने को तैयार हैं यदि चीन जापान की मांगों को स्वीकार कर ले। जो मांगों को स्वीकार कर ले। जो मांगे जापान के द्वारा प्रस्तुत की गई थी वे 1915 ई. में की गई मांगों के सदृश ही था चीन की कुमाओमितांग सरकार द्वारा इस मांग को ठुकरा दिया गया। जापान युद्ध हो उठा तथा उसने चीन की कुमाओमितांग सरकार को पूर्ण रूप से कुचल देने का निश्चय किया। जापानी सेनाओं ने हैंको की ओर प्रस्थान किया। हैंको को विजयी करने के लिए जापानी सेना को पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ा किन्तु 21 अक्टूबर 1938 ई. को हैंको पर जापान का अधिकार हो गया। 7 अक्टूबर 1938 ई. को कैंटन भी जापान के अधिकार में आ गया। च्यांग को हैंको छोड़कर चूंकिंग जाना पड़ा। चूंकिंग को उसने चीन की कुमिन्तांग सरकार की नवीन राजधानी घोषित किया गया।

टिप्पणी

च्यांग के कुछ साथी चीन को युद्ध की आग से बचाकर जापान के साथ एक समझौता करना चाहते थे, जबकि च्यांग जापान के साथ युद्ध जारी रखना चाहता था नवम्बर 1938 ई. को योचो तथा इचांग पर जापानी सेनाओं का कब्जा हो गया। च्यांग की सरकार के लिए जापान की शक्तिशाली सेना का मुकाबला करना संभव न था अतः चीनी सेनाएँ पिछड़ती चली जा रहीं थीं। इसी समय यूरोप में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया, जिसका जापान ने पूर्ण उपयोग किया, कुछ समय बाद जापान को भी इस युद्ध में सम्मिलित होना पड़ा।

युद्ध के परिणाम– हैंको पर विजय प्राप्त करने के बाद चीन में एक नई सरकार की स्थापना हुई, जिसका कार्यभार वांगचिंग वेई को सौंपा गया। वांगचिंग वेई च्यांग का ही एक साथी था, लेकिन उसने हैंको की विजय के बाद च्यांग का साथ समझौता कर चीन में शांति स्थापित करने का पक्षपाती था। अतः वांग का 1940 ई. में जापान के साथ एक समझौता हो गया और वांग के नेतृत्व में मंचकुओ की ही भाँति एक कठपुतली सरकार की चीन में स्थापना हुई। जुलाई 1941 ई. में जर्मनी, स्पेन, इटली, रूमानिया तथ अन्य तानाशाह राष्ट्रों ने इस सरकार को मान्यता प्रदान कर दी। जापान के दबाव में आकर अथ नानकिंग की घोषणा कर दी। साम्यवादियों ने माओत्सेतुंग के नेतृत्व में जापान का विरोध जारी रखा द्वितीय विश्वयुद्ध का भाग बन जाने के कारण चीन-जापान युद्ध का अंत भी 1945 ई. जापान के समर्पण के पश्चात् हुआ।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. मेईजी पुर्नस्थापना के तहत् किस धर्म को राजधर्म घोषित किया गया

   (क) बौद्ध धर्म   (ख) शिन्तो धर्म

   (ग) हिन्दू धर्म   (घ) जैन धर्म

2. जापान में सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय कौन-सा था?

   (क) केयो विश्वविद्यालय   (ख) होसी विद्यालय

   (ग) टोक्यो विश्वविद्यालय   (घ) शैन्यू विद्यालय

3. पोर्टसमाउथ की संधि हुई थी।

   (क) जापान एवं रूस के मध्य   (ख) जापान एव अमेरिका के मध्य

   (ग) फ्रांस एवं इंग्लैण्ड के मध्य   (घ) चीन एवं जापान के मध्य

4. शिमोन्सकी की संधि हुई थीः

   (क) चीन एवं जापान के मध्य   (ख) जापान एवं रूस के मध्य

   (ग) जापान एवं अमेरिका के मध्य   (घ) फ्रांस एवं इंग्लैण्ड के मध्य

5. द्वितीय चीन-जापान युद्ध किस वर्ष प्रारंभ हुआ?

   (क) 1937 ई.   (ख) 1936 ई.

   (ग) 1934 ई.   (घ) 1933 ई.

6. 'ऊगते हुए सूरज का देश' कहा जाता है–
   (क) चीन (ख) जापान
   (ग) भारत (घ) कोरिया
7. नानकिंग की संधि हुई थी–
   (क) 1942 ई. में (ख) 1853 ई. में
   (ग) 1942 ई. में (घ) 1892 ई. में
8. तिन्तसीन की संधि हुई थी–
   (क) 1955 ई. में (ख) 1858 ई. में
   (ग) 1730 ई. में (घ) 1575 ई. में
9. चीन-जापान युद्ध के परिणाम हुए–
   (क) जापान के प्रभाव में वृद्धि (ख) चीन का पतन
   (ग) यूरोपीय राज्यों में हलचल (घ) उपरोक्त सभीं
10. जापान में विधायिका को कहा जाता था–
   (क) पार्लियामेन्ट (ख) डयूसा
   (ग) डायट (घ) राष्ट्रीय पंचायत।

4.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1. (ख)
2. (क)
3. (ख)
4. (क)
5. (क)
6. (ख)
7. (क)
8. (ख)
9. (घ)
10. (ग)

4.7 सारांश (Summary)

एशिया के सर्वप्रमुख देश चीन-जापान एवं भारत है। यूरोपीय देशों ने एशिया के प्रायः सभी देशों को अपनी साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा का शिकार बनाया और अपने उपनिवेश स्थापित किए। जब इन उपनिवेशों ने जनता का आर्थिक शोषण करने के बहुविधि प्रयास किए, तो एशिया में उपनिवेशवाद के विरूद्ध प्रतिरोध आरंभ हो गया। चीन में ताइपिंग

एवं बॉक्सर विद्रोह हुए। जापान में मेईजी पुर्नस्थापना के पश्चात् सैन्यवाद का विकास हुआ एवं आर्थिक प्रगति भी सम्पन्न हुई। अंग्रेजों ने चीन में अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए वहाँ के नागरिकों को अफीम का आदी बनाया। चीन में अफीम की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। इससे चीन में आर्थिक व नैतिक संकट उत्पन्न हो गया। फलतः चीन की मंचू सरकार को अफीम के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा। अंग्रेजों ने इसका विरोध किया परिणामस्वरूप चीन को ब्रिटेन के साथ दो अफीम युद्ध लड़ने पड़े। मंचू सरकार इन युद्धों में परास्त हुई अतः उसे चीन में ताईपिंग व बॉक्सर विद्रोहों का सामना करना पड़ा। तत्पश्चात् जिस प्रकार जापान ने चीन में अपना साम्राज्यवाद फैलाया उससे नाराज होकर चीनियों ने चीनी सरकार के विरूद्ध 1911 ई. में क्रांति कर दी। यह क्रांति सफल हुई और चीन में गणतांत्रिक सरकार की स्थापना हुई।

4.8 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

- **साम्राज्यवाद**– शक्तिशाली राष्ट्र का पिछड़े राष्ट्र पर अधिकार स्थापित करना।
- **उपनिवेशवाद**– विकसित राष्ट्र के कुछ निवासी अपनी मातृभूमि को त्याग कर अन्य पिछड़े राष्ट्रों में बस जाते है।
- **पुर्नस्थापना**– दोबारा सुधार के स्थापित करना
- **सैन्यवाद**– सेना का शासन

4.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercise)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. बॉक्सर विद्रोह पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए।
2. प्रथम अफीम युद्ध के कारणों का वर्णन कीजिए।
3. जापान में आधुनिकीकरण के कारण समझाइए।
4. ताइपिंग विद्रोह पर एक लेख लिखिए।
5. चीनी क्रांति 1911 के महत्व की विवेचना कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. प्रथम अफीम युद्ध के कारण एवं परिणामों पर प्रकाश डालिए।
2. द्वितीय अफीम युद्ध के कारण एवं परिणामों पर प्रकाश डालिए।
3. बॉक्सर विद्रोह के कारण एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए।
4. चीन की क्रांति 1911 ई. के कारण एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए।
5. प्रथम रूस-जापान युद्ध के कारण एवं परिणाम का परीक्षण कीजिए।
6. 1937 ई. के द्वितीय चीन-जापान युद्ध के कारणों की विवेचना कीजिए।

7. जापान में शोगून शासन का अन्त एवं मेईजी की पुर्नस्थापना की व्याख्या कीजिए।
8. जापान में सैन्यवाद के उदय के कारणों को इंगित कीजिए।
9. जापान में आधुनिकीकरण के कारण एवं परिणामों की विवेचना कीजिए।

टिप्पणी

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. कैटलवी सी.डी.एम – ए हिस्ट्री ऑफ कॉमर्स टाइम्स।
2. हेजन सी.डी. – मॉर्डन यूरोपियन हिस्ट्री।
3. चौहान देवेन्द्र सिंह– यूरोप का इतिहास – भाग 1 व भाग 2।
4. मेरियर, जे.ए.आर. – इंग्लैण्ड सिंस वाटरल्।
5. जैन एवं माथुर – विश्व का इतिहास।
6. पांडेय धनपति – आधुनिक एशिया का इतिहास।
7. वर्मा दीनानाथ – आधुनिक एशिया का इतिहास।
8. मेहता बी.एस. – यूरोप का इतिहास।
9. पॉल बी.ई. – यूरोप का इतिहास।
10. फिशर एच.ए.एल. – ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप।

इकाई 5 इटली में फासीवाद, मुसोलिनी की गृह एवं विदेश नीति, जर्मनी में नाजीवाद-हिटलर की गृह एवं विदेश नीति, द्वितीय विश्व युध्द-कारण, परिणाम एवं प्रभाव

संरचना (Structure)

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 नाजीवाद-हिटलर की गृह एवं विदेश नीति
5.3 फासीवाद का उदयः मुसोलिनी की आंतरिक एवं वैदेशिक नीति
5.4 द्वितीय विश्व युद्धः कारण, घटनाएं एवं प्रभाव
5.5 दोनों विश्व युध्द के मध्य विश्व राजनीति
5.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय (Introduction)

प्रथम विश्व युध्द से पूर्व इटली में उदार लोकतंत्रीय व्यवस्था प्रचलित थी, जो सन् 1860 ई. से चली आ रही थी। उदार लोकतंत्रीय व्यवस्था के समर्थक देश इस व्यवस्था को उत्तम समझते थे। प्रथम विश्व युध्द के पश्चात् इटली की लोकतांत्रिक व्यवस्था का खोखलापन सिध्द हो गया था, इटली के सामंतो, पूंजीपतियों आदि उच्च वर्गो का उदार लोकतंत्रीय व्यवस्था से विश्वास उठ गया और वे अन्य प्रभावशाली तथा सशक्त व्यवस्था के विषय में सोचने लगे और वह थी फासीवादी व्यवस्था।

जर्मनी में प्रथम विश्व युध्द के बाद जर्मनी छिन्न भिन्न हो गया और जर्मन सम्राट बिलियम द्वितीय ने भागकर इंग्लैण्ड में शरण ली इस प्रकार जर्मनी में राजतंत्र का अंत हो गया। इसलिए राज्य के लिए नया संविधान बनाने की आवश्यकता थी। नया संविधान 31 अगस्त 1919 ई. को लागू किया गया। नए संविधान के अनुसार जर्मनी को गणराज्य घोषित किया गया। जर्मनी का नवीन संविधान वाइमर संविधान के नाम से प्रसिध्द था। उस समय जर्मनी के सामने भयंकर आर्थिक संकट था। जर्मनी के आर्थिक संकट ने मजदूरों तथा किसानों में भयंकर असंतोष पैदा कर दिया था। जर्मनी में हिटलर ने धीरे धीरे अपनी शक्ति को बढ़ाना प्रारंभ किया उसने सन् सरकार विरुध्द धुआंधार प्रचार किया और संपूर्ण अपनी पार्टी के पक्ष में जनमत तैयार किया इसके परिणामस्वरुप सामान्य निर्वाचन में नाल्सी दल को सबसे अधिक सफलता मिली। इस स्थिति को देखकर जर्मनी के राष्ट्रपती ने हिटलर को प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। 1934 ई. में जर्मनी के राष्ट्रपती और प्रधानमंत्री को एक ही पद में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार हिटलर जर्मनी का अधिनायक बन गया।

टिप्पणी

प्रथम विश्व युध्द में विनाश के अपूर्व तांडव को जानते हुए भी पेरिस शांति सम्मेलन के निर्णायकों ने जो अपमानजनक समझौते अनेक देशों पर लादे यहीं से द्वितीय विश्व युध्द की नींव पड़ चुकी थी। प्रथम विश्व युध्द के बाद ही शीत युध्द आरंभ हो गया, जिसने 1933 ई. में द्वितीय विश्व युध्द का रूप धारण कर लिया।

5.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को निम्न विषय वस्तु से अवगत कराना है।

- इटली में फासीवाद शासन से छात्रों को अवगत कराना।
- जर्मनी में नाजीवाद से छात्रों को जानकारी प्रदान करना।
- द्वितीय विश्व युध्द के कारण एवं परिणाम एवं विश्व पर प्रभाव से अवगत कराना।

5.2 नाजीवाद-हिटलर की गृह एवं विदेश नीति (Nazism - Hitler's Internal and Foreign Policy)

भूमिका (Introduction)

प्रथम विश्व युध्द में जर्मनी पूर्णतया पराजित हो गया था और हाहेनजालर्न राजवंश के शासक विलियम द्वितीय के शासन काल का भी अन्त हो गया। जर्मनी में हरएबर्ट के नेतृत्व में प्रजातांत्रिक सरकार बनी। एबर्ट ने वाइमर नामक नगर में लोकसभा को बुलाया। **अतः इसे वाइमर गणतंत्र की सरकार भी कहा जाता है, परंतु वाइमर गणतन्त्र जर्मनी में पूर्ण शांति एवं समृध्दि स्थापित करने में सफल न हुआ।** इस असफलता का प्रमुख कारण उसके द्वारा उस वार्साय की संधि पर 28 जून, 1919 को हस्ताक्षर करना था, जिसे जर्मनी की जनता ने एवं यहाँ तक कि उसके प्रतिनिधियों ने भी मन से कभी स्वीकार नहीं किया। इसका पूरा लाभ जर्मनी में पनप रहे नाजी दल ने उठाया, जिसका नेता एल्डाफ हिटलर था, नाजी दल ने हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी में अपनी तानाशाही स्थापित कर ली।

हिटलर का संक्षिप्त जीवन परिचय (Lift of Adole Hitler)

हिटलर का पूरा नाम एल्डाफ हिटलर था। उसका जन्म आस्ट्रिया एवं बवेरिया की सीमा पर स्थित ब्रूनो (Braunau) नामक गांव में 20 अप्रैल, 1889 ई. को हुआ था। हिटलर कला प्रेमी था। अतः वह वास्तु कला की शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से विएना गया, परंतु विद्यालय की प्रवेश परीक्षा की असफलता के कारण उसका प्रवेश न हो सका। अतः उसने अपनी अजीविका का माध्यम लोगों के घरों में चित्रकारी बना लिया। हिटलर का स्वभाव साहस एवं शौर्य की प्रतिमूर्ति था।

विएना में मजदूरों के द्वारा प्रतिस्पर्धी नजरों से देखे जाने पर हिटलर विएना से 1912 ई. म्यूनिख आ गया। जब 1914 में महायुध्द छेड़ा तो बवेरिया की सेना में भर्ती हो गया। युध्द के दौरान उसने **'आयरन क्रास' (Iron Cross)** की पदवी प्राप्त की। उसे विश्वास था कि विश्व युध्द में जर्मनी विजय होगा, किंतु उसकी यह आशा निराशा में बदल गई। उसकी यह धारणा थी कि समाजवादियों, साम्यवादियों और यहूदियों के देशद्रोह के कारण ही जर्मनी को पराजय का मुंह देखना पड़ा है। **इधर वार्साय की**

संधि ने आग में घी का कार्य किया और उसने वार्साय की व्यवस्था को जर्मनी के लिए कलंक माना और वार्साय की संधि पर हस्ताक्षर करने वाली वाइमर गणतन्त्र की सरकार का अंत करने के लिए कार्यक्रम निश्चित करने का बीड़ा उठाया।

कार्यक्रम – युध्द समाप्त होने पर हिटलर म्यूनिख आ गया और यहाँ पर गुप्तचर विभाग में भर्ती हा गया। इसी समय म्यूनिख में श्रमिक दल नामक एक दल गुप्त रूप से सरकार की नीतियों के खिलाफ अपना कार्य कर रहा था। इस दल में 6 सदस्य थे। दल की बैठकें म्यूनिख में शराबखाने के एक कमरे में हुआ करती थीं। हिटलर ने इसकी सदस्यता स्वीकार कर ली और इस दल का सातवाँ सदस्य बन गया।

शीघ्र ही हिटलर इस दल का नेता बन गया और इसका नाम बदलकर **राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन श्रमिक संघ** (National Socialist German Labour Party) रख दिया। इसे नाजी पार्टी (Nazi Party) भी कहा गया।

हिटलर ने दल में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए लेबर पार्टी के संस्थापक ड्रेक्सटर को पार्टी से अलग कर दिया। उसने रोजनबर्ग (Rogenberg), गोबल्स (Gobbeles), हैस (Hess) और गोयरिंग (Goering), आदि को अपना सहयोगी बनाया।

हिटलर ने 8 नवम्बर? 1923 ई. को वाइमर सरकार के विरुध्द विद्रोह कर दिया, परंतु उसे सफलता न मिली। उसे 5 वर्ष कैद की सजा सुनाई गई, किंतु उसके अच्छे व्यवहार के कारण 8 ही माह में उसे कारावास से मुक्त कर दिया गया। अपने 8 माह के कारावास के दौरान उसने अपनी आत्मकथा लिखी, जो इतिहास में **'मेरा संघर्ष'** के नाम से जानी जाती है। 'मेरा संघर्ष' (Main Kampf) में हिटलर ने अपनी पार्टी के भावी उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों का विस्तार से उल्लेख किया है। इस पुस्तक का प्रथम भाग 1925 ई. में और द्वितीय भाग 1927 ई. में प्रकाशित हुआ। **इस पुस्तक को नाजियों को बाइबिल भी कहा जाता है।**

पार्टी का संगठन– जेल से छूटने के पश्चात् हिटलर ने नार्जी पार्टी का संगठन नए सिरे से किया। अपने दल को पूर्ण विकास देने में उसे 7 वर्ष का समय लगा। उसने अपने दल का एक चिन्ह बनाया। यह चिन्ह स्वास्तिक का चिन्ह था। उसने अपने दल का विकास सुदूर गांवों तक भी किया और अपने सिध्दांतों का प्रचार एवं प्रसार करने के लिए हर क्षेत्र में एक प्रचारक भेजा। उसने हिटलर यूथ सोसाइटी (Hitler Youth Society) की स्थापना की। इस कारण उसे नवयुवकों का सहयोग मिल सका। उसने पार्टी के कार्य को सुगमता के लिए दो वर्गों में विभक्त किया।

(A) Schuiz Stufflen (S.S.) – इसके सदस्य नाजी नेताओं की रक्षा करते और काले रंग की कमीज पहनते थे।

(B) Sturm Ahteilungen (S.A.) – नाजी पार्टी की सुरक्षा तथा अन्य पार्टियों की एकता को तोड़ना इनका प्रमुख कार्य था। ये भूरे रंग की कमीज पहनते थे। इस प्रकार हिटलर ने पार्टी का संगठन इस प्रकार किया कि प्रत्येक सदस्य अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग तरह से कार्य कर सका।

हिटलर द्वारा सत्ता की प्राप्ति – हिटलर के द्वारा पार्टी के संगठन एवं तीव्र प्रचार ने पार्टी में नई जान डाल दी। हेजन के अनुसार, ''उन्होंने विपत्ति तथा असंतोष के प्रत्येक कारण से लाभ उठाया। जब 1830 का विश्वव्यापी अवनमन घटित हुआ, तब

टिप्पणी

इसका उन्होंने आश्चर्यजनक लाभ उठाया। **फलतः इस दल के मानने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन शीघ्रता से बढ़ी।** फलतः 1930 के चुनावों में उनकों दिए गए मतों की संख्या 64 लाख 1 हजार पहुँच गई और उन्होंने 107 स्थान प्राप्त कर लिए। 1932 ई. के राष्ट्रपति चुनाव में उनके प्रत्याशी को 11,300,000 मत प्राप्त हुए। उसी वर्ष अप्रैल के अंतिम मतदान में उसको 13,40,00,000 मत प्राप्त हुए। संसदीय निर्वाचनों में उनको रैक्सटैग में 230 स्थान मिले। हिटलर का सितारा बुलंद था। उसकी विजय एक गम्भीर षडयंत्र, पोपन षडयंत्र ने सफल बना दी। चान्सलर कुर्तवान श्लीचर को उसका मित्र फ्रांस बान पापेन अपदस्य करना चाहता था। उसने राष्ट्रपति हिण्डेनबर्ग को कहा कि जर्मनी को समाजवाद से खतरा है। इस वॉल्शेविक खतरे से जर्मनी को केवल हिटलर ही बचा सकता है। हिण्डेनबर्ग ने भयभीत होकर हिटलर को प्रधानमंत्री बनाया और पापेन उपप्रधानमंत्री बना, परंतु हिटलर चान्सलर पद से ही संतुष्ट नहीं था। लिप्सन के अनुसार, **''उसने सम्पूर्ण शासन सत्ता अपने हाथों में कंन्द्रित करने के लिए सभी उचित अनुचित साधनों का सहारा लिया और सम्पूर्ण शासन सत्ता अपने हाथ में केन्द्रित कर ली।''**

चांसलर बनते ही उसने सर्वप्रथम जर्मन पार्लियामेण्ट को भंग कर दिया। इसी बीच 27 फरवरी, 1923 ई. को संसद भवन में आग लग गई। हिटलर ने इसे समाजवादियों का कृत्य बतलाया और अपने विरोधी दलों को जेल में ठूंस दिया। निर्वाचन में साधारण बहुमत प्राप्त कर हिटलर ने सत्ता अपने हाथ में ले ली और अप्रैल 1933 को संसद ने 4 वर्ष के लिए सम्पूर्ण अधिकार हिटलर को अर्पित कर दिए।

हिटलर इस पर भी सन्तुष्ट नहीं था। उसने सभी विरोधी दलों को समाप्त कर दिया। नाजी पार्टी को ही वैधानिक ठहराया गया। पुलिस के स्थान पर नाजी सुरक्षा दल के सैनिक रखे गए। हिटलर ने अपनी पुस्तक **'मेरा संघर्ष'** (Main Kampf) में लिखा है, ''एक चालाक विजेता विजित देश पर अपनी मांगे थोपता चला गया'' हिटलरशाही को जर्मन में थोपना शुरू कर दिया। 30 जून, 1934 ई. को उसने अपने विरोधियों की हत्याएँ करवाईं, श्लीचर का अंत कर दिया। पापेन भाग गया। 2 अगस्त, 1934 को हिण्डेनबर्ग की मृत्यु के बाद उसने राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री के पद को एक कर दिया। कहा जा सकता है कि हिटलर के उत्थान के साथ ही जर्मनी में गणतंत्र का एक और प्रयास असफल हो गया।

हिटलर/नाजी दल के उद्देश्य (Aims of Hitler / Nazi Party)

हिटलर ने अपनी पार्टी के निम्न उद्देश्य बतलाएः

(अ) वार्साय संधि का विरोध– नाजी पार्टी का मुख्य उद्देश्य वार्साय की संधि का विरोध था। हिटलर की धारणा थी कि इस संधि पर देशद्रोहियों ने हस्ताक्षर किए हैं। अतः यह जर्मन जनता को मान्य नहीं है। अतः ऐसी संधि की धाराओं को समाप्त कर दिया जाए। इस सन्दर्भ में उसने अपनी पूस्तक 'मेरा संघर्ष' में लिखा है, **''जर्मनी की सीमाएं अकस्मात हुई घटना का परिणाम है।''** राज्यों की सीमाओं का निर्धारण व्यक्तियों की इच्छा पर निर्भर है। उसे निश्चित करने का कार्य भी व्यक्तियों का ही है, जिन्हें बनाया अथवा बदला जा सकता है, क्योंकि वार्साय की संधि के द्वारा निश्चित की गई जर्मनी की सीमाओं के कारण आर्थिक रूप से पंगु हो चुका था। अतःहिटलर ने जर्मनी को सुदृढ़ करने के लिए वार्साय संधि का विरोध किया।

(ब) एक व्यक्ति के शासन की स्थापना– वार्साय की संधि ने जर्मनी में वाइमर गणतंत्र की स्थापना कर दी थी। हिटलर इस प्रकार के गणतंत्र का घोर विरोधी था। नाजियों की धारणा थी कि वास्तविक गणतंत्र वह है जिसमें व्यक्तियों द्वारा चुने गए केवल एक व्यक्तीद्वारा शासन किया जाना चाहिए।

(स) वृहत्तर जर्मनी का निर्माण– नाजी पार्टी का मुख्य उद्देश्य वृहत्तर जर्मनी का निर्माण करना था। शिपेरो के अनुसार, **''हिटलर का एकमात्र उद्देश्य केवल उन प्रदेशों की प्राप्ति ही नहीं था जिन्हें कि वार्साय की संधि के अनुसार छीन लिया गया था, अपितु जर्मनी को एक सत्तात्मक राष्ट्र बनाने का पक्षधर था। छोटे छोटे राज्यों को जर्मनी में मिलाकर वह अपने को सर्वश्रेष्ठ शक्तिसम्पन्न बनाना चाहता था।''** दूसरे शब्दों में वह इसे तृतीय महान जर्मन साम्राज्य का निर्माण भी कहा जा सकता है।

(द) निःशस्त्रीकरण जर्मनी के लिए नहीं होना चाहिए– निःशस्त्रीकरण जर्मनी के लिए ही लागू नहीं होना चाहिए। यदि यह लागू हो तो समस्त राष्ट्रों के लिए होना चाहिए। जर्मनी का निर्माण रक्त और लौह की नीति से हुआ था। उसे पुनः अस्त्र शस्त्रों से सज्जित कर वार्साय संधि में किए गए अपमान का बदला लेना चाहिए।

(य) नाजी पार्टी का मुख्य उद्देश्य था कि विश्व युध्द में जर्मनी की पराजय का कारण यहूदी जाति थी। अतः यहूदियों को देश से निकाल देना चाहिए।

(र) सामाजिक उद्देश्य– जो व्यक्ति जितनी योग्यता रखता है, उसे उसकी योग्यता के अनुसार रोजगार प्रदान करना चाहिए तथा जनता के रहन सहन के स्तर को उँचा उठाना चाहिए।

(ल) आर्थिक उद्देश्य– युध्द के दौरान पूंजीपतियों द्वारा कमाए गए समस्त लाभ नष्ट कर दिए जाने चाहिए। समस्त कारखानों, मिलों अथवा बड़ी-बड़ी दुकानों का राष्ट्रीकरण कर देना चाहिए। उसे सरकार को अपने हाथ में ले लेना चाहिए। कृषकों की उन्नति के लिए कृषि को प्रोत्साहन देना होगा। अपनी पुस्तक में हिटलर ने लिखा है, **''हमारे पास यूरोप में कृषि हेतु आवश्यक भूमि होनी चाहिए .....यह महत्व हमारे लिए कृषि-प्राप्ति के सवाल का प्रश्न है।''** वृध्द लोगों को सरकार की ओर से पेंशन मिलनी चाहिए।

(ब) धार्मिक उद्देश्य– धर्म अपने आप में स्वतन्त्र है, किन्तु यदि धर्म राष्ट्र की प्रगति में बाधक होगा तो उसे राज्य द्वारा समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यह बात उल्लेखनीय है कि हिटलर की गृह एवं विदेशी नीतियां नाजियों के उद्देश्यों पर ही आधारित थीं।

हिटलर की गृह नीति (Home Policy of Hitler)

कैटलबी ने लिखा है, **''1933 ई. से लेकर अपने शासनकाल के अन्तिम समय तक हिटलर ने आतंक एवं हिंसा का आश्रय लिया और अधिनायकवादी भ्रान्त अपीलों सैन्य प्रदर्शनों, झूठे वायदों एवं छलपूर्ण उपायों से उसने अपने आपको बनाए रखा।''** यह बात सही है कि हिटलर ने सत्ता शक्ति के बल पर प्राप्त की थी। अतः उसे शक्ति से ही बनाए रखा जा सकता था। **अतः हिटलर ने अपनी गृहनीति के अन्तर्गत निम्नलिखित महत्वपूर्ण कदम उठाएः**

(1) **विरोधियों का दमन**– लिप्सन के अनुसार, **''हिटलर ने अपने विरोधियों का दमन इस तरह किया मानो कोई कसाई, कसाईखाने मे पशु का वध कर रहा हो।''** उसके दो प्रमुख शत्रू थे। एक तो समाजवादी जो कि मार्क्स के अनुयाई थे, दुसरे यहूदी। यहुदियों के विषय में तो वह कहता भी था, **''जिसने गत तीन पीढ़ियों में किसी यहुदी से विवाह किया है अथवा जर्मनी के विरोध में कोई देश द्रोहात्मक कार्य किया है, उसे यहुदी समजा जाय।** समाजवादियों एवं यहूदियों को जेल में ठूंस दिया गया। उस समय यहूदियों के बारे में जर्मनी में कहा जाता **था 'यहूदी विश्व के दुश्मन हैं'** (Jew is the enemy of the world) तथा **''जो यहूदियों को मारता है, वह अच्छा कार्यकर्ता है''** (who kills a Jew, does a good dead)। उन्हें कारागार में कठोर दण्ड दिया जाता था। उनसे नाजी दल की सदस्यता ग्रहण करने को कहा जाता था। उसके सहयोगी गोयरिंग ने गोस्पापों एवं समाधि स्थलों की स्थापना की थीं, यही नहीं, उसने रोमन कैथोलिकों का दमन किया। कैटलबी के अनुसार, **''जर्मनी में न केवल साम्यवादियों, यहूदियों, उदार वर्गों, शान्ति चाहने वाले लोगों, कैथोलिकों, धर्मप्रचारकों बल्कि सभी प्रकार के लोगों को सताया गया जिससे लाखों जर्मन घर छोड़कर भाग गए''।** उसने आतंक स्थापित कर दिया। उसके शत्रु या तो कब्रों में या जेलों में या श्रम-शिबिरों में थे। उसके विरोध में कोई चूँ तक नही कर सकता था।

(2) **एक व्यक्ती के शासन का दृढ़ीकरण**– हिटलर ने जर्मनी को मजबूत बनाने का कार्य किया। राष्ट्रपति एवं प्रधानमन्त्री दोनों के पद एक में मिला दिए गए। 1935 के बाद प्रधान राष्ट्रपति भी हो गया। **वह फ्यूरर कहलाना पसन्द करता था।** हरमन गोरिंग को गृहमन्त्री बनाया गया। पुलिस विभाग नाजियों से भर दिया गया। जोजेफ गोबलन को प्रचार मन्त्री बनाकर नाजी दल के सिद्धांतों का प्रचार किया गया। कस्बों एवं गावों की निकायों की अध्यक्षता हिटलर में केन्द्रित कर दी गई । पार्लियामेण्ट्री शासन को भंग करने के लिए धारा सभा की शक्तियों को क्षीण कर दिया गया। **कानून बनाने का एकमात्र अधिकार हिटलर तथा सीमित कर दिया गया।** गव्हर्नरों की नियुक्ती उसी के द्वारा की जाती थी। उसने परामर्श समितियां स्थापित कीं जिनकी संख्या 14 थी, परन्तु वे उसी की इच्छा पर निर्भर होकर कार्य करती थीं। जर्मन संघ के समस्त राज्यों की विधान सभाओं को भंग कर दिया गया। रीष्टांग केवल उसकी प्रतिनिधि मात्र बनकर रह गई।

हिटलर ने समस्त राजनैतिक पार्टियों को समाप्त कर दिया। वह कहा करता था, **''राष्ट्रीय समाजवादी पार्टी राज्य है।''** 14 जुलाई 1933 ई. को राष्ट्रीय समाजवादी पार्टी को वैध माना हैं। नौकरी करने के लिए इसी दल की सदस्यता अनिवार्य कर दी गई।

इस प्रकार जर्मनी को पूर्ण रुप से एक व्यक्ति के हाथों सीमित कर दिया गया। वह व्यक्ति था हिटलर।

(3) **धार्मिक क्षेत्र**– हिटलर क्योंकि एक व्यक्ति के शासन पर विश्वास करता था, अतः धर्म के मामले मे भी किसी दुसरी सत्ता का हस्तक्षेप वह स्वीकार नहीं कर सकता था। रोमन कैथोलिक रोम के पोप के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति रखते थे।

हिटलर का विचार था कि जर्मनी के निवासी जर्मनी के बाहर की किसी सत्ता के आदेशों का पालन न करें। अतः उसने बाइबिल के आर्यन सन्दर्भ की नई व्याख्या की और कैथोलिकों पर अत्याचार किए। **प्रोटेस्टेण्ट** गिरजाघरों की व्यवस्था भी केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत निर्धारित कर दी गई। लुडविग मूलर नया अध्यक्ष घोषित किया गया जिसने जर्मन ईसाइत्व की कल्पना पर अधिक जोर दिया।

(4) शिक्षा– हिटलर का विचार था कि केवल जर्मन जाति को छोड़कर अन्य जातियाँ आर्य नहीं हैं। अतः उसने सभी सरकारी पदों, शिक्षालयों, विश्वविद्यालयों, आदि से गैर-आर्यन जाति के लोगों को पदच्युत कर दिया। जो लोग आर्य नहीं थे उन्हें किसी प्रकार की सुविधा स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों में न दी गई। पाठ्यपुस्तकें नाजी दल के सिद्धान्तों एवं उसकी गाथा से पूरित की गई। पाठ्य-विषयों का पाठ्यक्रम माजी सिद्धान्तों के आधार पर बनाया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर कड़ी नजर रखी गई। **नाजी मानते थे कि सच्चा एवं सही इतिहास उसे कहा जाएगा जो कि रक्त एवं भूमि से सम्बन्धित हो।** राइच कल्चर चैम्बर की स्थापना पत्रकारिता, रेडियो, संगीत, फिल्मों, साहित्य एवं कला पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए की गई।

(5) आर्थिक क्षेत्र– प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी की हालत आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त नाजुक हो चुकी थी और जिस तरीके से वार्साय की सन्धि लागू की गई थी, जर्मनी आर्थिक दृष्टि से पंगु हो चुका था। अतः हिटलर का प्रमुख उद्देश्य जर्मनी को आर्थिक दृष्टि से समुन्नत बनाना था। उसने मई, 1934 ई. में एक नियम बनाकर हड़ताल, आदि पर रोक लगा दी। लेबर ट्रस्टी नामक संस्थाओं की स्थापना की गई जिससे श्रमिक वर्ग की समस्याओं को हल किया जा सके तथा उनके अधिकारों की रक्षा की जा सके। **बेकारी की समस्या दूर करने के लिए उसने स्त्रियों को चारदीवारी के अन्दर रहने का आदेश दिया।** यहूदियों को देश से निकाल दिया गया। सेना की वृद्धि, लेबर कैम्प की स्थापनाएँ, आदि उपायों से तत्काल लगभग 20 लाख बेकारों को रोजगार दिया।

जहाँ तक उद्योग-धन्धों का प्रश्न था, हिटलर चाहता था कि देश स्वावलम्बी बने। खेती को राज्य नियन्त्रण में ले लिया गया। जो चीजें जर्मनी की दैनिक आवश्यकता की थीं जिन्हें कि जर्मनी में उत्पादित नहीं किया जा सकता, हिटलर ने विदेशों को कच्चा माल देकर वे चीजें प्राप्त कर लीं। इस प्रकार जर्मनी ने अपना व्यापारिक क्षेत्र बढ़ा लिया। **जब हिटलर के शासन काल के पांचवें वर्ष में सरकारी आंकड़े बताएं गए तो स्पष्ट हो गया कि सन् 1933 की अपेक्षा उद्योग द्वारा उत्पादन दुगना हो गया है।** फौलाद के उत्पादन में 56,50,000 टन से 2,00,00,000 टन की वृद्धि हो गई। इसी प्रकार काम में लगने वालों की संख्या भी 12,80,000 से 1,83,70,000 बढ़ गई।

अन्ततः उसकी गृह-नीति के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि हिटलर ने देश के आत्मभिमान की वृद्धि की, किन्तु उसकी नीति ने विश्व में घृणा, भय एवं सन्देह का माहौल पैदा करके रख दिया।

टिप्पणी

हिटलर की विदेश नीति (Foreign Policy of Hitler)

हिटलर ने अपनी विदेश-नीति के सन्दर्भ में विस्तृत विवेचना अपनी पुस्तक 'मेरा संघर्ष' में की है। हिटलर ने अपना नारा **'वार्साय की सन्धि का नाश हो'** दिया था, स्पष्ट है कि हिटलर वार्साय की सन्धि की सम्पूर्ण व्यवस्था को कुचलना चाहता था। वह जर्मनी को एकसत्तात्मक राष्ट्र बनाना चाहता था। वह चाहता था जर्मनी विश्व की महान शक्ति बने। इसका मानना था कि जर्मनी को धुरी शक्ति बनाने के कार्य के पीछे ईश्वरीय प्रेरणा है और इस कार्य को वही कर सकता है।

हिटलर की विदेश नीति के सन्दर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ में जब तक उसने जर्मनी का अच्छा-खासा सैन्यीकरण नहीं किया, तब तक उसने शान्ति समझौतों का नारा दिया **और जब जर्मनी का सैन्यीकरण हो गया तो बल का पूर्ण प्रयोग कर समझौतों को ताक में रख दिया।** हिटलर ने अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य किए :

(1) निःशस्त्रीकरण सम्मेलन तथा राष्ट्र संघ को छोड़ना— 1932 ई. में जेनेवा में राष्ट्र संघ ने निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का आयोजन किया। इसमें 10 राष्ट्रों के 200 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में हिटलर ने प्रस्ताव रखा कि अन्य देशों की तरह उसे भी शस्त्रीकरण का समान अधिकार दिया जाय अथवा सभी राष्ट्रों को जर्मनी के समान ही समान रुप से निःशस्त्रीकरण का पालन करना चाहिए। फ्रांस ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। अतः हिटलर ने 14 अक्टूबर, 1933 ई. को निःशस्त्रीकरण सम्मेलन एवं राष्ट्र संघ से अलग होने का नोटिस दे दिया। नवम्बर 1933 में हुए जनमत संग्रह ने भी हिटलर के राष्ट्र संघ को छोड़ने का समर्थन किया।

(2) पोलैण्ड-जर्मन समझौता (23 जनवरी, 1934 ई.)— पोलैण्ड और जर्मनी के पारस्पारिक सम्बन्ध कुछ अच्छे नहीं थे, किन्तु दोनों की परिस्थितियों ने दोनों को समझौते के लिए प्रेरित किया। पोलैण्ड की स्थिति रुस एवं जर्मनी के मध्य थी। यदि रुस व जर्मनी में संघर्ष होता तो पोलैण्ड बीच में होने से पिस सकता था। दूसरा पोलैण्ड का मित्र फ्रांस उससे काफी दूर था। अतः पोलैण्ड अपनी सुरक्षा के लिए कुछ परेशान था। इधर जर्मनी पोलैण्ड से समझौता कर यूरोप के राष्ट्रों को दिखाना चाहता था कि वहृशान्ति का समर्थन है। यदि पोलैण्ड से मित्रता हो जाय तो वह अन्य शत्रुओं का सामना आसानी से कर सकता था। अतः हिटलर ने 23 जनवरी, 1934 ई. को पोलैण्ड के साथ 10 वर्ष के लिए **अनाक्रमण समझौता (Non-aggression Pact) किया। इस समझौते की शर्ते इस प्रकार थीं :**

(i) जर्मनी ने यह आश्वासन दिया कि वह 10 वर्ष वह तक अपनी पूर्वी सीमाओं में परिवर्तन की माँग न उठाएगा जिसमें पोलिश गलियारा भी था।

(ii) दोनों देश एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे।

(3) चार शक्तियों का समर्झाता (1933 ई.)— अपने को शान्ति का दूत दर्शाने वाले हिटलर ने मुसोलिनी के प्रस्ताव पर 1933 ई. में इग्लैण्ड, फ्रांस व इटली के साथ शान्ति समझोता किया।

(4) सार की प्राप्ति – सार का क्षेत्र जो कि वार्साय की सन्धि के अनुसार 15 वर्षों के लिए राष्ट्र संघ के संरक्षण में था, जनमत संग्रह के पश्चात् जर्मनी को दिया गया। मतदान में कुल 5,00,000 मत पड़ें जिसमें से 90 प्रतिशत जर्मनी के पक्ष में थे। एक मार्च 1935 को यह क्षेत्र जर्मनी को दे दिया गया। इस घटना के विषय में कार ने लिखा है, **''अब जर्मनी की, जैसा कि हिटलर ने अनेक बार घोषित किया, पश्चिम में और अधिक क्षेत्रिक महत्वाकांक्षाएँ नहीं रही थीं। वार्साय की सन्धि से भी जर्मनी को अब कोई और आशा नहीं थी।''** अतः उसने वार्साय की सन्धि पर आक्रमण शुरु कर दिया, जिसका पहला प्रहार सैन्यीकरण पर था।

(5) जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू करना – वर्साय सन्धि की धाराओं को तोड़ते हुए हिटलर ने 19 मार्च, 1935 को जर्मनी में अनिवार्य सैन्य सेवा की घोषणा की। 16 मार्च, 1935 को उसने घोषणा की कि ''जर्मनी अब अपने को वर्साय की सैन्य धाराओं से मुक्त मानता है। जर्मनी की शान्तिकालीन सैनिक संख्या 5,50,000 होगी और जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू की जाएगी।''

(6) स्ट्रेसा सम्मेलन (अप्रैल, 1935) – जर्मनी के द्वारा अनिवार्य सैनिक सेवा लागू कर दिए जाने की यूरोपीय देशों में बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। यूरोपीय राष्ट्र चिन्तित हो उठे। अतः फ्रांस, इंग्लैण्ड एवं इटली इन तीन राष्ट्रों का स्ट्रेसा में सम्मेलन हुआ जिसमें हिटलर के कार्य की निन्दा की गई, किन्तु स्ट्रेसा सम्मेलन का जर्मनी पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा, क्योंकि अब तक जर्मनी इग्लैण्ड के साथ नौ-सैनिक वार्ता में संलग्न था।

(7) इंग्लैण्ड-जर्मन नौसेना समझौता (जून, 1935) – हिटलर ने बड़ी सूझ-बूझ से इंग्लैण्ड से नौसेना सम्बन्धी समझौता जून 1935 को किया। **इसके अनुसारः**

(i) जर्मनी को इंग्लैण्ड की अपेक्षा 35 प्रतिशत नौसेना रखने का अधिकार प्राप्त हो गया।

(ii) जर्मनी अपने पड़ोसियों के बराबर वायुसेना रख सकेगा। कार महोदय ने इस समझौते के विषय में लिखा है, **''.......यह समझौता इतना असंगत लगता था कि फ्रांस, इटली और सोवियत संघ में इससे इतनी हैरानी हुई जितनी कि इंग्लैण्ड द्वारा जर्मनी जेनेवा प्रस्ताव का प्रस्तोता बनने पर भी जर्मनी में नहीं हुई थी।''** हार्डी महोदय ने इसे इंग्लैण्ड द्वारा जर्मनी के वार्साय सन्धि को तोड़े जाने का अनुमोदन माना है। कुछ भी हो इस सन्धि से वार्साय की सन्धि टूट गई। जर्मनी को बल मिला। स्ट्रेसा सम्मेलन बेकार सिद्ध हुआ। मैरियट ने लिखा है, ''उस सहमति का (स्ट्रेसा सम्मेलन का) कुछ भी मूल्य रहा हो, उसमें जून 1935 में ब्रिटेन तथा जर्मनी की नाविक सन्धि ने एक घातक दरार डाल दी।

(8) राइन क्षेत्र का सैन्यीकरण (7 मार्च, 1936) – वार्साय की सन्धि के अनुसार राइन का क्षेत्र विसैन्यीकृत घोषित कर दिया गया था। हिटलर इस क्षेत्र में सेनाएं भेजना चाहता था। 1935 ई. में इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया तो फ्रांस और इंग्लैण्ड ने इटली के विरोध में आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए, किन्तु जर्मनी ने इटली की सहायता कर मुसोलिनी की मित्रता प्राप्त कर ली।

7 मार्च, 1936 ई. को हिटलर ने राइन क्षेत्र में अपनी सेनाएं भेज दी और राइनलैण्ड पर अधिकार कर लिया। इस सम्बन्ध में मैरियट ने लिखा है, **''यदि इंग्लैण्ड और फ्रांस इस कार्य का विरोध करते तो हिटलर पीछे हट जाता। लोकानों के करार को घृणा के साथ फाड़ दिया गया, फ्रांस ने सोवियत रुस के साथ जो सन्धि (मई 1935 में) की थी, उसका डंक खींच लिया गया था।''**

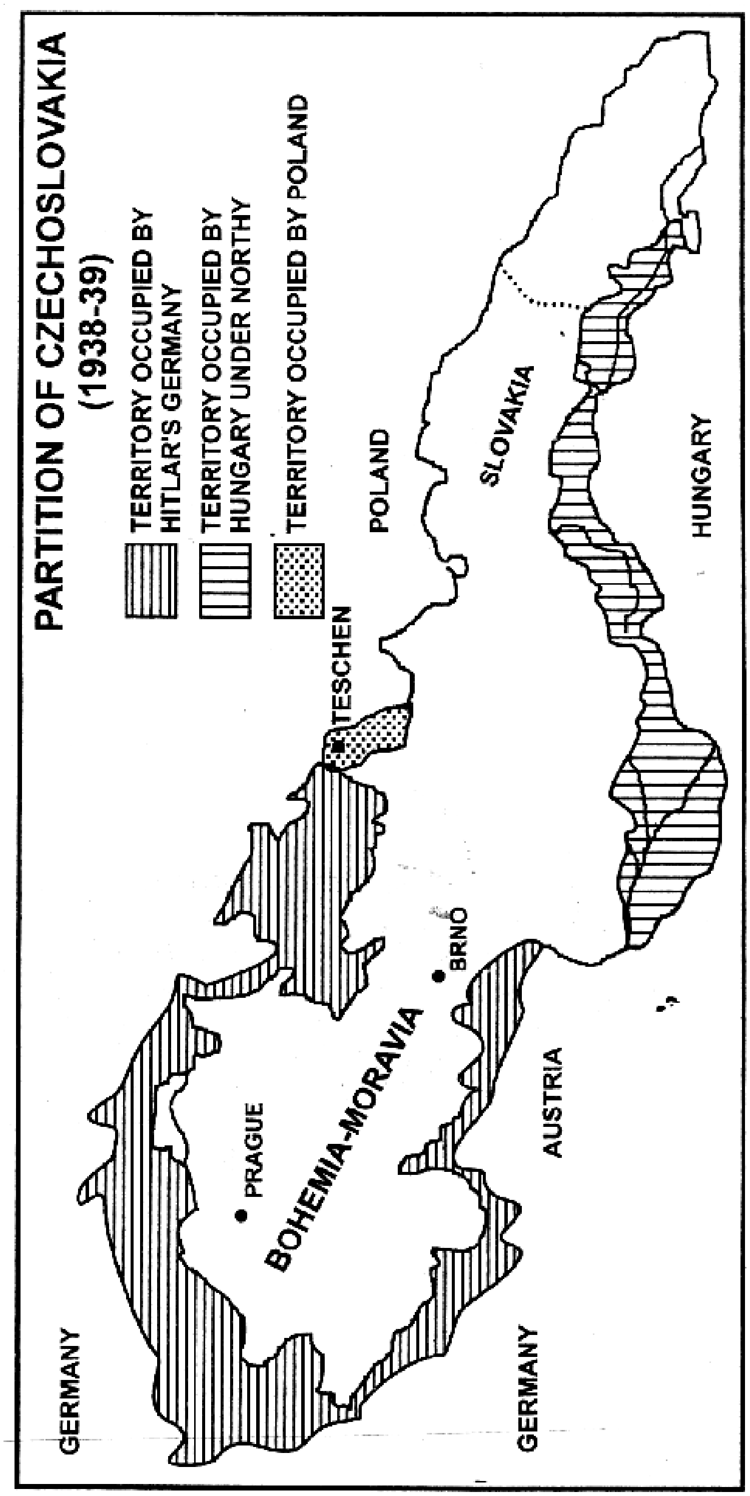

टिप्पणी

हिटलर के इस कार्य के दूरगामी परिणाम निकले। प्रथम तो फ्रांस की कमजोरी प्रदर्शित हो गई, फ्रांस के मित्रों ने उसका साथ छोड़ दिया। उदाहरण के लिए, बेल्जियम तटस्थ हो गया। द्वितीय, राष्ट्र संघ एवं वार्साय और लोकानों सन्धियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया।

(9) रोम-बर्लिन-टोक्यो धुरी की स्थापना– अबीसीनिया पर किए गए मुसोलिनी के आक्रमण की हिटलर द्वारा सराहना ही नहीं की गई, बल्कि हिटलर ने इटली को आर्थिक सहायता भी प्रदान की थी। उसके इस कार्य ने मुसोलिनी को हिटलर के नजदीक ला दिया। 21 अक्टूबर, 1936 ई. को दोनों देशों के विदेश मन्त्रियों ने एक समझौता किया। **इसके अनुसारः**

(i) जर्मनी ने स्वीकार किया कि अबीसीनिया पर इटली का अधिकार न्यायोचित है।

(ii) इटली ने स्वीकार किया कि जर्मनी आस्ट्रिया पर अधिकार कर सकता है।

हिटलर ने इटली को तो अपनी ओर मिला लिया, किन्तु वह चाहता था कि यूरोप में कोई ऐसी शक्ति की मित्रता उसे और प्राप्त हो जाय जो कि रुस के विरोध में उसका साथ दे। हिटलर ने देखा कि जापान रूस का विरोधी है। अतः उसने 25 नवम्बर, 1936 ई. को रूस के खिलाफ जापान से सन्धि कर ली। यह सन्धि इतिहास में एण्टी कामिण्टर्न पैक्ट (Anti Comintern Pact) के नाम से जानी जाती, किन्तु इस पैक्ट ने शीघ्र ही **रोम-बर्लिन-टोक्यो धुरी** (Roman-Berlin-Tokyo Axis) का रूप धारण कर लिया। कहने का तात्पर्य है कि एण्टी कामिण्टर्न पैक्ट की इटली ने भी स्वीकार कर लिया। कैटलबी ने सत्य ही लिखा है, **''यहीं से नाजियों की प्रगति बढ़ती गई। उनकी, भूख, क्षमता और दृढ़ता की कोई सीमा न रही। यूराप के राष्ट्र दो धुरी में बंट गए। एक ओर इंग्लैण्ड, फ्रांस एवं रूस हो गए तो दूसरी ओर जर्मनी इटली और जापान।''**

(10) आस्ट्रिया पर अधिकार– सत्ता संभालते ही हिटलर का एक मुख्य उद्देश्य आस्ट्रिया पर अधिकार करना रहा था। 1934 ई. में हिटलर के द्वारा आस्ट्रिया को हड़पने का प्रयत्न किया गया, किन्तु इटली के द्वारा ब्रेनर दर्रे पर सेना भेज दिए जाने के कारण हिटलर को अपने अभियान में सफलता न मिली। मुसोलिनी के इस तरह आड़े जाने से हिटलर समझ गया कि अपने इस अभियान की सफलता के लिए इटली की मित्रता आवश्यक है। इसी कारण उसने इटली द्वारा अबीसीनिया को हड़पने का स्वागत किया। **रोम-बर्लिन-टोक्यो धुरी ने दोनों की मित्रता गाढ़ी कर दी।** 13 मार्च, 1938 को हिटलर की फौजें आस्ट्रिया में घुस गई और आस्ट्रिया को जर्मन साम्राज्य का एक प्रान्त निर्विरोध घोषित कर दिया गया। डॉ. शुस्निमा ने इस विषय में कहा था, ''हमें जबरदस्ती के आगे समर्पण करना पड़ रहा है, ईश्वर ही आस्ट्रिया की रक्षा कर सकता है।'' इस प्रकार आस्ट्रिया को जर्मनी में मिलाने से हिटलर ब्रेनर दर्रे से इटली, यूगोस्लाविया एवं हंगरी के साथ सम्बन्ध स्थापित बेरोकटोक कर सका। इसीलिए हिटलर ने कहा था कि जर्मनी विजय की घड़ी से गुजर रहा है।

टिप्पणी

(11) चैकोस्लोवाकिया को हस्तगत करना– आस्ट्रिया पर विजय प्राप्त कर लेने से हिटलर चैकोस्लोवाकिया को आसानी से हस्तगत कर सकता था। चैकोस्लोवाकिया में एक करोड़ पचास लाख नागरिकों में से 16 प्रतिशत स्लोवाक्स, 50 प्रतिशत चैक्स, 22 प्रतिशत जर्मन, 4 प्रतिशत हंगेरियन और 4 प्रतिशत रूमानियन थे, चैक्स लोगों का सरकारी पदों पर अधिक प्रभाव था। अतः गैर-चैक्स जातियाँ चाहती थीं कि सरकारी पदों पर उनका अनुपात भी बराबर का हो। हंगेरियन हंगरी में मिलना चाहते थे। जर्मन चाहते थे कि सीमान्त प्रदेशों को जर्मनी में मिला दिया जाए। **स्लाब स्वतन्त्रता** के पक्षधर थे। अवसर का लाभ उठाकर हिटलर ने चैकोस्लोवाकिया में रहने वाले जर्मनों को विद्रोह के लिए भड़काया, स्वेडटन जर्मन संघ पूर्ण स्वराज्य की मांग करने लगा। इधर हिटलर स्वेडटन जर्मन संघ की मदद करने लगा। चैकोस्लोवाकिया और जर्मनी के बीच युद्ध का वातावरण पैदा हो गया, परन्तु **इंग्लैण्ड ने हस्तक्षेप करके एक समझौता कराया जो कि म्यूनिख समझौता कहलाता है।** इसके अनुसारः

(i) स्युडेटनलैण्ड पर जर्मनी का अधिकार हो गया।

(ii) इंग्लैण्ड व फ्रांस ने चैकोस्लोवाकिया की नई सीमाओं की रक्षा का आश्वासन दिया।

(iii) हिटलर ने स्वीकार किया कि वह अल्पसंख्यांकों की समस्या का समाधान करेगा।

(iv) हिटलर ने वचन दिया कि स्युडेटनलैण्ड यूरोप में उसका अन्तिम सीमा विस्तार है।

म्यूनिख समझौते के विषय में शूमेन ने लिखा है, **''म्यूनिख समझौता शान्ति स्थापित करने की नीति की चरम सीमा, पश्चिमी प्रजातन्त्र व्यवस्था के लिए मौत का आव्हान एवं मिलकर सुरक्षा की भावना की व्यवस्था के अन्त का प्रतीक था।''**

म्यूनिख समझौता वास्तव में हिटलर की प्यास को और बढ़ाने के समान था। हिटलर की प्यास इतने से ही न बुझी। उसने तुरन्त स्लोवाकों को भी इस आशय से उत्साहित करवाया कि वे स्वतन्त्र राज्य की मांग करें। उसने स्लोवाकों का मन्त्रिमण्डल भी बनवा डाला। यहां तक चैक राष्ट्रपति डॉ. हाशा को अन्ततः विवश किया कि वह चैकोस्लोवाकिया को जर्मनी में मिलाने के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने को विवश हो गया। हिटलर ने यह कार्य सैन्य-बल के आधार पर किया। इंग्लैण्ड और फ्रांस ने समझ लिया था कि यह उनकी पराजय है और जर्मन की जीत।

(12) हिटलर द्वारा मेमल पर अधिकार– हिटलर ने इसी बीच सैन्यबल से लिथुआनिया को डराकर मेमल के बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया।

(13) रूस से सन्धि – हिटलर पूर्वी यूरोप तथा मध्य यूरोप में अधिकार का इच्छुक था। इधर मित्रराष्ट्र उसके मेमल पर अधिकार से सतर्क हो चुके थे। स्पष्ट था कि हिटलर का अगला निशाना पोलैण्ड ही था। **हिटलर ने परिस्थिति का अवलोकन कर तुरन्त अगस्त 1939 में रूस का अनाक्रमण समझौता कर लिया।** इसी शर्तों के अनुसारः

टिप्पणी

(i) दोनों एक दूसरे के मित्र रहेंगे।

(ii) पोलैण्ड को जर्मनी एवं रूस में बाँटा जाएगा।

(iii) रूस जर्मनी को युद्ध सामग्री एवं खाद्य सामग्री देगा।

(iv) वाल्टिक राज्यों में रूस की स्वतन्त्रता घोषित की गई। इस समझौते की आलोचना की गई, किन्तु इतना निश्चित था कि फ्रांस व इंग्लैण्ड की गलत नीतियों, के कारण ही रूस ने यह व्यावहारिक कदम उठाया था। इस प्रकार हिटलर ने एक निर्णायक सन्धि कर अपना पलड़ा भारी कर लिया और पोलैण्ड पर आक्रमण करने की तैयारी में जुट गया जिसकी पृष्ठभूमि उसने पोलैण्ड से डांजिंग मांगकर इस समझौते से पूर्व ही डाल दी थी।

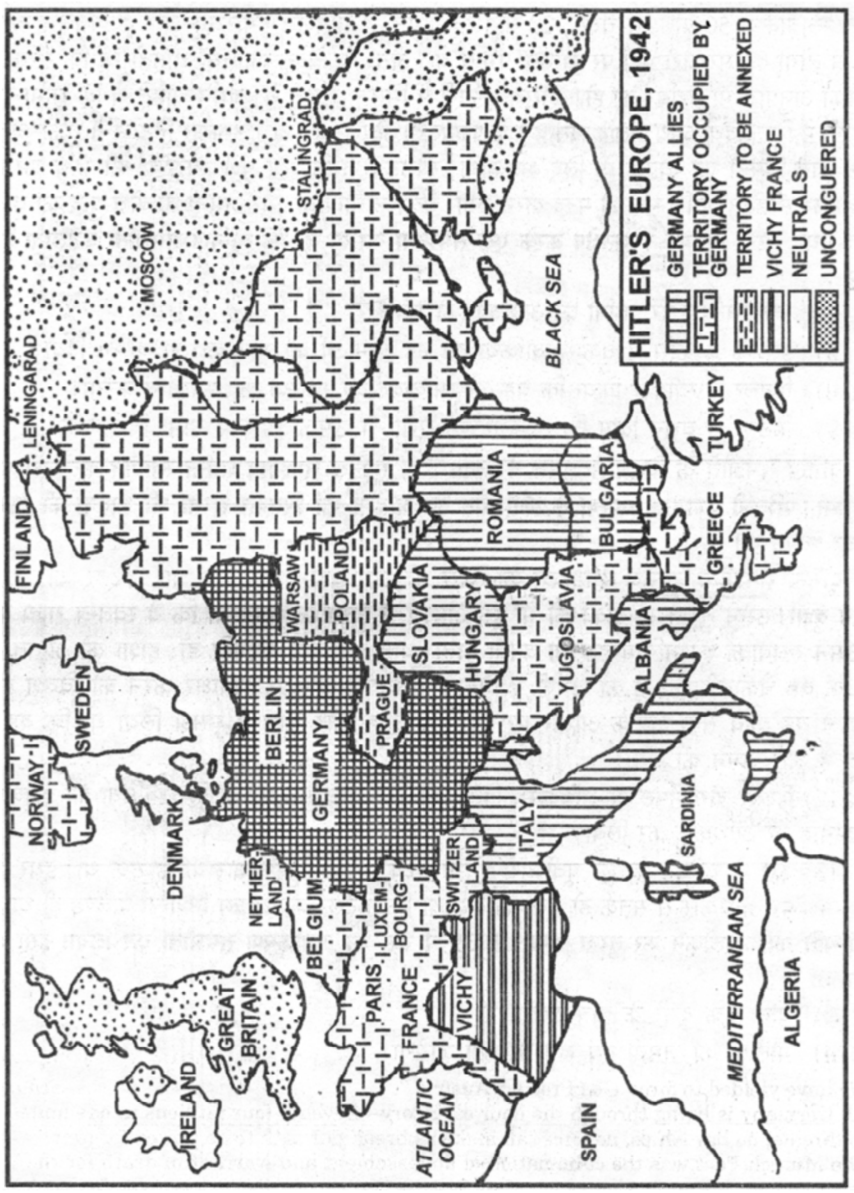

पोलैण्ड पर आक्रमण– हिटलर की मांग से स्पष्ट था कि वह पोलैण्ड को भी हड़पना चाहता है, क्योंकि डांजिंग पर अधिकार करके वह आसानी से पूर्वी पोलैण्ड, जर्मनी और समुद्र का सीधा सम्बन्ध कर सकता था। उसने 1934 ई. का समझौता रद्द करने की घोषणा की। जर्मनी को रूस के साथ की गई सन्धि ने

साहस प्रदान कर ही दिया था। **अतः हिटलर ने पोलिश सरकार पर यह आरोप लगाकर कि पोल जर्मनों के साथ अत्याचारपूर्ण व्यवहार करते हैं, एक सितम्बर, 1939 को पोलैण्ड पर आक्रमण करके द्वितीय विश्व युद्ध को जन्म दे डाला।**

हिटलर या नाजी दल के उत्कर्ष के कारण

(Causes of the Rise of Hitler/Nazi Party)

हिटलर ने तानाशाहीशासन की स्थापना की। उसने सत्ता को रक्तपात के जरिए काबू में रखा। फिर भी उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और नाजी दल का दिन-प्रतिदिन उत्कर्ष होता चला गया। हिटलर को दिन-प्रतिदिन सफलताएं मिलती गई। **उसकी सफलता (अथवा नाजी दल) के निम्न कारण थेः**

(अ) **वर्साय की सन्धि** – हिटलर के उदय या उत्कर्ष के कारणों का मूल्यांकन करते समय सर्वप्रथम ध्यान वार्साय की सन्धि पर जाता है। **हार्डी एवं लिप्सन जैसे विद्वान मानते हैं कि यदि हिटलर या नाजी दल का उत्कर्ष वार्साय सन्धि का परिणाम होता तो उसका उदय सन्धि के 3 या 4 वर्ष पश्चात् ही हो जाता ।** 14 वर्ष के पश्चात् हिटलर के उत्कर्ष के लिए वार्साय की सन्धि को कारण बनाना उचित नहीं है। 1927 ई. में जर्मनी को राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान कर दी गई थी। 1930 ई. में विदेशी सेना जर्मनी से हटा ली गई थी। डावेस यंग प्लान और लोजान सम्मेलन के अन्तर्गत जर्मनी की क्षतिपूर्ति की राशि कम कर दी गई थी।

परन्तु यह कह देना कि हिटलर के उत्कर्ष के लिए वार्साय की सन्धि बिल्कुल उत्तरदायी नहीं थी। तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। जिस प्रकार फ्रांस 1871 ई. की फ्रेंकफोर्ट की सन्धि को लम्बे अरसे तक भुला नहीं सहा, उसी प्रकार जर्मन भी वार्साय की सन्धि की अपमानजनक शर्तों को भूल नहीं पाए थे। रूर प्रदेश पर फ्रांस तथा बेल्जियम का अधिकार उन्हें अभी भी अखर रहा था। केवल जर्मनी के लिए निःशस्त्रीकरण उनहें अखर रहा था। जर्मनी का युवा वर्ग बिस्मार्क सदृश वीरों के लिए आहें भर रहा था। वे अपने अतीत गौरव की कल्पना किया करते थे। ऐसे समय हिटलर ने नारा दिया, **''वार्साय की सन्धि का अन्त हो।''** उसने अपना उद्देश्य वार्साय की सन्धि की व्यवस्था को भंग करना बताया, जर्मन जनता जो कि एक बार निराश हो चुकी थी, पुनः हिटलर की ओर आशा की नजरों से निहारने लगी। उनकी सुप्त भावनाएँ प्रज्ज्वलित हो उठीं, जर्मन जनता ने हिटलर के 'हम पुनः हथियार रखेंगे' इस नारे को सहर्ष स्वीकार किया।

(ब) **आर्थिक कारण**– हिटलर के उत्कर्ष में आर्थिक संकट ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1930 में हुए भयंकर आर्थिक संकट का सर्वाधिक प्रभाव जर्मनी पर ही पड़ा। सीमा कर संघ की योजना असफल हो जाने पर कर्टियस ने अवकाश ले लिया। चांसलर ब्रूनिंग के पदभार संभालते ही वार्साय सन्धि के विरुद्ध नात्सियों ने जोर-शोर से प्रचार एवं प्रसार शुरू कर दिया। डेरी एवं जारमेन के शब्दों में, **''बुरी तरह अस्त-व्यस्त हुई आर्थिक स्थिति की प्रत्येक स्थान पर आलोचना की जा रही थी। प्रत्येक जगह अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा गणतन्त्र कमजोर पड़ चुका था। जनता नई व्यवस्था**

टिप्पणी

तथा नए नेता को चाहती थी। जून 1931 तक जर्मनी की किसान लगभग तीन अरब डालर के ऋण के भार से दबे थे। हिटलर ने कृषकों को ऋण का आश्वासन दिया। छोटे व्यापारियों को बड़े स्टोर्स के राष्ट्रीयकरण की बात कही गई। बड़े पूंजीपति समाजवाद से घबराकर उसका समर्थन कर रहे थे। इस प्रकार हिटलर ने 1930 के आर्थिक संकट का पूर्ण लाभ उठाया।

(स) **गणतन्त्र के प्रति जनता का रोष**– जर्मनी में गणतन्त्र का उदय वार्साय की सन्धि का परिणाम था। वाइमर गणतन्त्र का वार्साय की सन्धि से जुड़ा होना उसके पतन एवं नाजीवाद के उत्कर्श में सहायक सिद्ध हुआ। वाइमर गणतन्त्र ने ही वार्साय की अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर किए थे। **गणतन्त्र की विदेश नीति पूर्णतया असफल रही।** डेंजिंग एवं पोलिश गलियारे की प्राप्ति, आस्ट्रिया के साथ एकीकरण, उपनिवेशों की प्राप्ति तथा सैन्यीकरण के प्रश्नों में उसें पूर्ण असफलता मिली, जिससे उसकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा और जर्मनी की जनता ने गणतन्त्र शासन का विरोध किया। जनता प्रजातान्त्रितृशासन प्रणाली की असफलता देख रही थी। जर्मन जनता की भावना का पूर्ण लाभ हिटलर ने उठाया।

(द) **हिटलर का व्यक्तित्व एवं उसका प्रचार**– नाजी दल के उत्कर्ष में हिटलर का स्वयं का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण था। उसका व्यक्तित्व विभिन्न विशेषताओं से युक्त था। हार्डी ने लिखा है, **''उसमें आश्चर्यजनक प्रतिभा थी।''** वह प्रतिभाशाली वक्ता था। वह अपने भाषणों से जर्मन जनता को अपने उद्देश्यों को समझकर अपने विचारों को प्रस्तुत करता था। वेन्स ने इस सन्दर्भ में लिखा भी है, **''हिटलर में एक मनोवैज्ञानिक, कुशल नेता, उत्तम अभिनेता एवं प्रवीण संगठनकर्ता के गुण विद्यमान थे।''** उसने जिस प्रकार पार्टी का संगठन किया, उससे उसकी पार्टी में नवीनता आ गई।

हिटलर का प्रचार कार्य अपने आप में आकर्षक एवं अद्‌भुत था। कैटलबी के अनुसार, **''नाजियों के सामने आई प्रत्येक समस्या का समाधान आवश्यकतानुसार होता था।''** उसके प्रधानमन्त्री गोबल्स का विचार था, ''झूठी बात को इतना दोहराओ कि वह सत्य का रूप धारण कर ले।'' युद्ध के पश्चात् जर्मनी में बेरोजगारी अत्यधिक बढ़ गई थी। हिटलर ने रोजगार प्रदान करना अपना नारा दिया और युवा वर्ग का समर्थन प्राप्त कर लिया। शस्त्रीकरण के उसके प्रचार ने सैनिकों का समर्थन उसे दिया। उसने लोकतन्त्र का चिल्ला-चिल्लाकर जनाजा निकाला। उसने कहा, **''प्रजातन्त्र पागलों, डरपोक तथा भूखे लोगों की व्यवस्था है।** इस प्रकार कैटलबी के शब्दों में कहा जा सकता है, **''जर्मनी के वृद्ध ने बड़ी असमंजस में, युवा वर्ग ने उत्साह से उसे अपना नेता इस प्रकार स्वीकार किया कि वे उसकी अनर्गल बातों का शिकार हो गए।''**

इस प्रकार कहा जा सकता है, **''भाषण, विज्ञापन, झण्डे, गीत, वर्दियां, आयोजन, अनुशासन, ऐतिहासिक परम्पराएँ, जातीय अभिमान के सिद्धान्त, उत्साह और हिटलर का व्यक्तित्व आदि ने लाखों जर्मन निवासियों को मूल्य की बढ़ोत्तरी और विदेशी आतंक की तुलना में नाजियों का अन्ध भक्त बना दिया।''**

फासीवादी और नाजीवाद में अन्तर

(Difference between Fascism and Nazism)

फासीवाद व नाजीवाद में अनेक समानताएं थीं, क्योंकि नाजीवाद की उत्पत्ति भी फासीवाद से ही हुई थी। **दोनों में अग्र समानताएं थीं:**

(i) दोनों के सिद्धान्त एक समान थे।

(ii) दोनों राष्ट्र/राज्य को सर्वोपरि मानते थे।

(iiii) दोनों हिंसा व युद्ध में विश्वास रखते थे।

(iv) दोनों तानाशाही व सैनिक राज्य के समर्थक थे।

एक समान होते हुए भी **दोनों में कुछ अन्तर थे:**

(i) नाजी रक्त की शुद्धता पर बल देते थे, फासीवादी नहीं

(ii) फासीवादी चर्च को मानते थे, नाजी नहीं।

(iii) फासीवादी नाजियों की तुलना में अधिक नैतिकतावादी थे।

(iv) फासीवादी अपने तानाशाह को **ड्यूस** (Duce) व नाजी **फ्यूहरर** (Fuhrer) कहते थे।

5.3 फासीवाद का उदयः मुसोलिनी की आंतरिक एवं वैदेशिक नीति (Rise of Fascism: Mussolini's Internal and Foreign Policy)

फासीवाद का उदय (Rise of Fascism)

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जहाँ जर्मनी में नाजीवाद का उत्कर्ष हुआ, वहीं दूसरी ओर इटली में फासीवाद का उत्कर्ष हुआ। कैटलबी के शब्दों में, **''प्रारम्भ में फासीवाद जन्मजात प्रवृत्ति के रूप में उदित हुआ, किन्तु पश्चात् में वह एक बाद अथवा एक सिद्धान्त और विशिष्ट प्रकार की शासन प्रणाली के रूप में विकसित हुआ।''** नाजीवाद का नेतृत्व हिटलर ने किया था, तो फासीवाद के नेता मुसोलिनी ने फासीवाद को उत्कर्ष की चरम सीमा तक पहुँचाया।

एक बात उल्लेखनीय है कि प्रथम विश्व युद्ध में इटली मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ा था और जर्मनी मित्र राष्ट्रों का विरोधी था, फिर भी इटली में जर्मनी की तरह फासीवाद का उत्कर्ष हुआ। यह बात भी विचारणीय है कि 1860 ई. से इटली में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था थी, किन्तु अचानक फासीवाद की धारा ने उसे उखाड़ फेंका जो कि यूरोप के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी।

फासीवाद की परिभाषा (Definition of Fascism)

यहाँ पर यह समझना आवश्यक है कि फासीवाद है क्या? फासिस्ट शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द **फेसियो** (Fascio) से हुई है। प्राचीन रोमवासी छड़ियों के बण्डल को **फेसेज** (Fasces) कहते थे जिसे सत्ता का प्रतीक समझा जाता था। **इस चिन्ह को शक्ति, एकता व अनुशासन का प्रतीक भी माना जाता था।** मुसोलिनी ने, इसी शब्द से अपने आन्दोलन को प्रेरित किया। उनके लिए एकता (Unity) का महत्व था।

टिप्पणी

इसीलिए वे एक राज्य, एक झण्डा व एक नेता में विश्वास रखते थे। फासीवादी काली कमीज पहनते थे व उग्रराष्ट्रवाद के समर्थक थे। वे सैनिकवाद पर विश्वास करते थे। इस प्रकार वे तानाशाही के समर्थक थे। तानाशाह सर्वाधिकार पूर्ण राज्य (Totalitarian State) स्थापित करना चाहते थे। फासीवाद की परिभाषा देते हुए मुसोलिनी ने कहा, **''फासीवाद कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिनकी हर बात को विस्तारपूर्वक पहले से ही स्थिर कर लिया गया हो। फासीवाद का जन्म कार्य किए जाने की आवश्यकता के कारण हुआ है। अतः फासीवाद सैद्धान्तिक होने के स्थान पर प्रारम्भ से ही व्यावहारिक रहा है।''** फासीवाद व साम्यवाद की तुलना करते हुए भी मुसोलिनी ने कहा, **''फासीवाद यथार्थ पर आधारित है, जबकि साम्यवाद सिद्धान्त पर। हम सिद्धान्त तथा विवाद के बादलों से निकलना चाहते हैं।''** फासीवाद के अन्तर्गत राज्य (State) को सर्वोपरि माना जाता था, मुसोलिनी का कहना था। **''राज्य के अन्दर तब कुछ है, राज्य के बाहर कुछ नहीं तथा राज्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं है।''**

फासीवाद के उत्कर्ष के कारण (Causes of the Rise of Fascism)

(1) **प्रथम विश्व युद्ध में इटली की भूमिका का प्रभाव–** प्रथम विश्व युद्ध में इटली ने मित्र राष्ट्रों की और से युद्ध में भाग लिया था। उसे दक्षिणी मोर्चे पर आस्ट्रिया का मुकाबला करने का कार्य सौंपा, किन्तु आस्ट्रिया की सेना ने केपोरेटो (Caporetto) के युद्ध में इटली को बुरी तरह पराजित कर दिया। इसके उपरान्त वियावे नदी की इटली द्वारा मोर्चेबन्दी की गई और उसकी सहायता के लिए फ्रांस व इंग्लैण्ड की सेनाएं आ गई और आस्ट्रिया को इटली ने जून 1918 में पराजित किया, तदुपरान्त अमेरिका एवं इंग्लैण्ड की सेनाओं की सहायता से इटली की सेना ने विटोरिया वेनिटो (Vittorio Vencto) के युद्ध में आस्ट्रिया को बुरी तरह पराजित किया, किन्तु दम तोड़ते हुए आस्ट्रिया को इंग्लैण्ड, फ्रांस या अमेरिका की सेनाओं की मदद से पराजित करना कोई महत्वपूर्ण एवं शौर्य की बात नहीं कही जा सकती। इटली निवासियों के लिए इन विजयों का इसी कारण कोई विशेष महत्व नहीं था। इटली निवासियों की धारणा बन चुकी थी इटली की सरकार एवं सेना निर्बल है।

(2) **सन्धिजनिक बटवारें में इटली की उपेक्षा–** विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों के द्वारा उसे 26 अप्रैल, 1916 ई. को लन्दन की सन्धि के कारण मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ना पड़ा। इस सन्धि के अनुसार इटली को ट्रैण्टिनो, ट्रीस्ट, इस्ट्रिया, फ्यूम के अलावा टेल्मेशियन नटीय क्षेत्र, ब्रेनर के दर्रे तक टिरोल क्षेत्र और अल्बानिया, आदि दिए जाने थे, विल्सन ने इस गुप्त सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया। इटली को केवल, ट्रेप्टिनो, डेल्मेशिया के तट का कुछ भाग एवं दक्षिणी टिरोल से ही सन्तोश करना पड़ा। फ्यूम जिस पर इटली निवासी आस लागए बैठे थे, न मिला। इटली में सर्वत्र कहा जाने लगा, **''इटली की भावनाओं एवं विजयों पर कुठाराघात किया गया है।''** फ्यूम न मिलने से जनता में रोष व्याप्त था जिसका लाभ उठाकर सितम्बर 1919 ई. को डेन्जियो (D. Aunznio) नामक इटली के एक कवि ने फ्यूम पर अपना अधिकार कर लिया, क्योंकि फासिस्ट डेन्जियों के साथ थे, अतः युद्ध के सैनिक फासिस्ट पार्टी में मिल गए। जनता गणतन्त्र से नफरत करने लगी।

टिप्पणी

(3) **युद्धोपरान्त आर्थिक स्थिति**– इतिहासकार कैटलबी ने लिखा है, विश्व युद्ध के पश्चात् के कुछ वर्षों में इटली की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी, जिस कारण पूर्ण अर्थव्यवस्था फैली हुई थी। परन्तु दुसरी कुछ विद्वानों का मत है कि इटली की आर्थिक स्थिति कमजोर न हुई थी, परन्तु इतना तो निश्चित ही है कि विश्व युद्ध के बाद के आर्थिक संकट से इटली बच गया हो, ऐसा सम्भव न था। युद्ध का खर्चा 12 अरब मुद्रा एवं माल की हानि 3 अरब का होने का अनुमान था। व्यापार की स्थिति अत्यन्त अच्छी न थी। जिस देश को असन्तोष सन्धि ने निरुत्साह बना दिया था, उस देश की आर्थिक संकट ने रीढ़ तोड़ दी।

(4) **देश में अव्यवस्था**– इतिहासकार केटलबी ने लिखा है, **''साधारणतया इटली में कहीं किसानों का उपद्रव हो रहा था, कहीं मिलों में हड़तालें, तोड़-फोड़ की बारदातें, साम्यवादी उग्र प्रदर्शन कर रहे थे तो कहीं मिलों में मजदूर वर्गों ने अपना अधिकर कर लिया था, कहीं किसानों ने भूमि पर कब्जा कर लिया था।''** इस प्रकार इटली अव्यवस्था के दौर से गुजर रहा था। जनता परेशान हो चुकी थी। वे सैनिक जो कि केपोरेटों के युद्ध में विवषता से पीछे हटे थे उन्हें देशद्रोही घोषित किया गया जिससे सैनिक पूर्णतया असन्तुष्ट थे। इटली निवासी देश को व्यवस्थित देखना चाहते थे। वे एक ऐसी सरकार को चाहते थे जो कि देश को व्यवस्थित कर सके। कैटलबी के अनुसार इटली में पूर्ण अशान्ति का बोलबाला था, फासीवाद इस अशान्ति के अन्त की प्रेरणा का आकस्मिक प्रभाव था।''

(5) **साम्यवाद का प्रभाव**– यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मुसोलिनी की पार्टी को सर्वाधिक सफलता दिलाने का कार्य साम्यवाद के विस्तृत प्रचार एवं प्रसार ने किया। साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव से इटली की जनता पूर्णतया डर चुकी थी। पार्लियामेण्ट में नवम्बर, 1919 के निर्वाचन में समाजवादी 156 स्थान पा चुके थे। सम्राट का अन्त हो, लेनिन के विचारों को लागू किया जाए, इस प्रकार के विचार पनपने लगे। ऐसा लगता था कि इटली में मजदूरों की सरकार बन जाएगी। **साम्यवादी विस्फोट होगा।** देश के विचारक, राष्ट्रवादी, बड़े-बड़े भुमिपति इससे चिन्तित थे । ऐसी परिस्थिति में मुसोलिनी ने अपनी पार्टी को लोगों के बीच सुदृढ़ता देने में पर्याप्त सफल कार्य किया।

(6) **हीगलवाद का विचार**– हीगल, जिसका जन्म जर्मनी में हुआ थ, का मानना था कि राज्य संसार की आत्मा है। **वह व्यक्ति की महत्ता के स्थान पर राज्य की महत्ता पर बल देता था।** उसके इन विचारों से इटली के फासीवाद पर विशेष प्रभाव पड़ा।

(7) **भविष्यवादी आन्दोलन**– मैरेनिटी नामक व्यक्ति जो कि इस आन्दोलन का नेता था। के विचार थे कि भूतकाल को भूलकर भविष्य के लिए मार्ग प्रदर्शित करने का पक्षधर था। उसके अनुसार इटली को अपने पराभव को भूलकर अपने पराभव को भविष्य में साम्राज्यवादी बनकर मिटाना चाहिए। उसके युद्धवादी अन्दोलन के प्रभाव से फासी पार्टी की विचारधाराओं को प्रोत्साहन मिला।

उक्त परिस्थितियों ने फासीवाद को पनपने में पर्याप्त भूमिका निभाई। भाग्य से उसे मुसोलिनी जैसा नेता मिल गया। जिसने इटली में फासिज्म की पताका फहरा डाली और इटली में 1922 से 1944 तक फासीवाद का ही बोलबाला बना रहा।

टिप्पणी

मुसोलिनी का संक्षिप्त जीवन परिचय एवं फासी दल
(Early Life of Mussolini and the Fascist Party)

बेनिटो मुसोलिनी (Benito Mussolini) का जन्म 1883 ई. में उत्तरी इटली के रोमानिया नामक गांव में हुआ था। उसका पिता लोहार था, परन्तु उसके पिता के विचार समाजवादी थे। उसकी मां अध्यापिका थी। माता एवं पिता के विचारों का पूर्ण प्रभाव मुसोलिनी पर पड़ा और उसके विचार भी क्रान्तिकारी बनते चले गए। **अठारह वर्ष की उम्र में ही उसने अध्यापन का कार्य शुरू किया, किन्तु शीघ्र ही वह स्विट्जरलैण्ड गया जहाँ उसने लोजेन तथा जनेवा के विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त की।** उसके उग्रवादी विचारों ने स्विस सरकार को परेशान कर दिया। अतः वह इटली आकर शिक्षक का कार्य करने लगा। समाजवादी विचारों से प्रभावित मुसोलिनी को किसानों को भड़काकर विद्रोह करवाने के आरोप में 1908 ई. में जेल का मुँह भी देखना पड़ा। 1912 ई. में वह अवन्ति नामक समाजवादी पत्र का सम्पादक बन गया। विश्वयुद्ध का प्रारम्भ होना था कि मुसोलिनी के विचारों में अचानक परिवर्तन आ गया, युद्ध में भाग लेने का पक्ष लेने के कारण उसे अवन्ति के सम्पादक पद से हटना पड़ा, परन्तु उसने अपना **पोपोलो-डी इटेलिया** (Popolo 'd' Italia) नामक पत्र निकाला और इटली की सेना में भर्ती भी हो गया। उसके शौर्य एवं वीरता के लिए उसे कार्पोरल की उपाधि मिली।

युद्ध की समाप्ति पर मित्र राष्ट्रों द्वारा इटली से किए वायदे पूरे न करने पर मुसोलिनी ने **'फासी दी कामबाटिमेंटो'** (Faci di Combattimento) नामक दल बनाया। प्रारम्भ में उसका कहना था कि फासिज्म पार्टी विरोधी आन्दोलन है जिससे उसका प्रचार एवं प्रसार द्रुत गति से हुआ। धीरे-धीरे देश में फासिस्ट दलों की शाखाएं खोली गईं। जहां 1919 में इस संगठन की संख्या 22 और सदस्यों की संख्या 17,000 थी, वहीं 1921 में संगठनों की संख्या 2,000 और सदस्यों की संख्या 3 लाख से भी ज्यादा हो गई। 1921 में 35 फासिस्ट सदस्य लोकसभा में आए।

मुसोलिनी ने इस दल को सैनिक रूप दिया। इसके सैनिक काली कमीज पहनते थे और इनका अपना अलग झण्डा भी था। **ये लोग काले कुर्ते वाले कहलाते थे, मुसोलिनी इस दल का ड्यूस** (Duce) **था।** उसने कहना शुरू कर दिया कि जिस समय विश्व युद्ध हो रहा था, सरकार की अकर्मण्यता स्पष्ट थी। युद्ध में विजय का श्रेय नागरिकों को है, सरकार को नहीं। फासिस्ट दल रचनात्मक कार्यों को कर सकता है और हमें सरकार बनाने का अधिकार भी है, क्योंकि हमने ही देश को युद्ध में झौंका एवं विजयी बनाया है।

मुसोलिनी ने नेपल्स में अस्त्र-शस्त्रों से लैस 40,000 स्वयं सेवकों की बैठक आयोजित की और स्पष्ट रूप से कहा दिया कि साम्यवाद से निपटने के लिए सत्ता उनके हाथों सौंप दी जाए वरन् रोम पर आक्रमण किया जाएगा, कैटलबी ने लिखा 1922 में अपनी काली कुर्ती वाली सेना के साथ मुसोलिनी ने रोम हथिया लिया और शासन सत्ता हथिया ली। यदि विक्टर एमानुअल विरोध करता तो इटली गृह युद्ध की चपेट में होता। इस प्रकार 1922 से 1944 ई. तक मुसोलिनी इटली का वास्तविक शासक बना रहा।

फासीवाद के सिद्धान्त (Principles of Fascism)

नाजीवाद की ही तरह फासिज्म के भी अपने कुछ सिद्धान्त थे फासीवाद एक धर्म है। वे इसे लोकतन्त्र का विरोधी मानते थे तथा फाजिस्म को एक चोटी कहा जाता था। फासीवादियों का विश्वास था कि राज्य ही सर्वशक्तिमान सत्ता है। **व्यक्ति को राज्य के लिए समर्पित होना चाहिए, क्योंकि राज्य में सभी वस्तुएं विद्यमान हैं।** वे फासिज्म को एक विश्वास कहते थे। उनका कहना था कि फासीवाद यूरोप की एक विशेष संस्कृति होगा। वे इस बात पर विश्वास रखते थे कि केवल फासिज्म ही सत्तावान रहे, क्योंकि केवल फासिज्म ही महान है।

मुसोलिनी की गृह नीति (Mussolini's Home Policy)

गृह युद्ध से देश को बचाने के लिए विक्टर एमानुअल ने मुसोलिनी को मन्त्रिमण्डल बनाने का अधिकार दे दिया। मुसोलिनी ने तुरन्त घोषित किया, **'कल इटली में मन्त्रिमण्डल न होकर उसकी (मुसोलिनी की) सरकार का निर्माण होगा।'** 31 अक्टूबर, 1922 ई. को मुसोलिनी ने मन्त्रिमण्डल बनाया। जनता जो कि परिवर्तन की पक्षपाती थी, इस परिवर्तन को सहज स्वीकार कर दिया। **मुसोलिनी सम्पूर्ण सत्ता को अपने हाथ में करना चाहता था अतः उसने निम्न कदम उठाएः**

(1) सत्ता का संगठन– मुसोलिनी ने सर्वप्रथम राजनीतिक क्षेत्र में फासीवादी सिद्धान्तों को लागू करने का प्रयत्न किया। उसने संसद के समस्त अधिकार अपने में निहित कर लिए। 1923 ई. में उसने यह नियम बनाया कि बहुमत प्राप्त दल को लोक सभा में 2/3 स्थान प्राप्त होंगे, शेष 1/3 स्थान अपने-अपने मत की प्राप्ति अनुपात में नियमतः विभाजित होंगे। 1924 ई. के निर्वाचन में इस नियम के अनुसार फासिस्टों को 2/3 स्थान मिल गए। 1928 ई. के निर्वाचन में सम्पूर्ण लोक सभा में फासिस्टों का प्रभुत्व छा गया।

अब मुसोलिनी ने संसद से एक अधिनियम पारित करवाकर प्रधानमन्त्री के पद को सत्ताधारी के रूप में परिवर्तित कर दिया। वह संसद से अलग हो गया तथा जल, थल और वायु तीनों सेनाओं का अधिपति बन गया। उसे **शासन का प्रधान** कहा जाने लगा। अब वह केवल सम्राट के प्रति उत्तरदायी था। संसद के सदस्यों की नियुक्ति एवं पदच्युति उसके आदेशों पर निर्भर हो गई। **उसने शासन को सुचारु रूप में चलानें के निम्न वर्ग बनाएः**

(क) मिनिस्ट्री (Ministry)– यह एक प्रकार की कैबिनेट थी। इसमें फासीवादियों का बहुमत था।

(ख) ग्राण्ड कौंसिल ऑफ फासिस्ट पार्टी (Grand Council of Fascist Party)– यह फासीदल की समिति थी। इसके सदस्यों की संख्या 25 थी।

(ग) पार्लियामेण्ट (Parliament) & (i) सीनेट– इसके सदस्यों का चयन मुसोलिनी करता था तथा इसके सदस्य आजीवन होते थे।

(घ) चैम्बर ऑफ डेप्युटीज (Chamber of Deputies)– मन्त्रिमण्डल एवं फासिस्ट पार्टी द्वारा इसके सदस्यों का चयन होता था।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण शासन तन्त्र को मुसोलिनी ने अपने हाथों में ले लिया और वह तानाशाह बन बैठा।

टिप्पणी

(2) **इटली का फासिस्टीकरण**— मुसोलिनी द्वारा किए गए संसदीय परिवर्तनों का विरोध भी किया गया, किन्तु मुसोलिनी ने विरोधियों का दमन कर दिया। समाजवादी नेता माटिओटो जो कि प्रबल विरोधी था, हत्या कर दी गई। विरोध न हो, इसके लिए लेखन, भाषण एवं पत्रों पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित कर दिया। नौकरियों में फासिस्ट दल के सदस्य या फासिज्म में विश्वास करने वाले रखे जाते थे। जो फासिज्म में विश्वास नहीं करता था, नौकरी से निकाल दिया गया। उन्हें कठोर सजा दी जाती थीं। गुप्तचर विभाग की स्थापना की गई जिसका प्रमुख कार्य विरोधियों का पता लगाना था।

(3) **फासी दल का संगठन**— इटली के फासीकरण के लिए उसने भरसक प्रयत्न किया। उसने कहा कि इटली में केवल फासीदल ही रहेगा, क्योंकि वह महान है। 1920 ई. में एक कानून द्वारा इस दल को मान्यता दे दी गई। स्थानीय एवं प्रान्तीय शाखाएं खोली गई और इन सभी शाखाओं को केन्द्रीय संस्था से जोड़ा गया जिसका प्रधान मुसोलिनी था। 1926 ई. में एक नियम बनाया कि मन्त्रिपरिषद् के सदस्य ग्राण्ड कौंसिल के सदस्य होंगे। अतः मन्त्रिपरिषद् एवं कौंसिल में कोई भेद न रहा और 1938 तक एक समय ऐसा आया कि कौंसिल ही सर्वेसर्वा हो गई।

(4) **शिक्षा**— शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। फासीवादी शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। शिक्षालयों में शिक्षक फासीदल में विश्वास करने वाले लिए जाने लगे। डीन एवं प्रोफेसर फासिस्ट दल में विश्वास रखने वाले ही चयनित होते थे। **वैज्ञानिक उन्नति के लिए विशेष प्रयत्न किया गया।** मुसोलिनी कला का पक्षपाती था। 6 वर्ष से 8 वर्ष तक के बालकों को फिगली-डेमा थूपा का सदस्य होना पड़ता था। 8 से 14 वर्ष तक बालकों को बालचर संस्था में प्रशिक्षण लेना होता था। 14 से 18 वर्श तक के बालक अवानगर्डिया नामक संस्था में प्रशिक्षित किए जाते थे। 21 से 33 वर्ष तक की आयु का प्रत्येक पुरुष सैन्य शिक्षा लेता था। सैन्य-शिक्षा आवश्यक थी। एस प्रकार उसने शिक्षा को प्रोत्साहित किया। 1921 में जहाँ निरक्षरों की संख्या का अनुपात 25 था, वहीं 1935 में घटकर वह 5 प्रतिशत हो गया।

(5) **यहूदियों का विरोध**— हिटलर की तरह मुसोलिनी यहूदियों का विरोधी था। उसका मानना था कि इटली विशुद्ध आर्य जाति के लिए है। वह यहूदियों को अनार्य मानता था। यहूदियों को पढ़ने, नौकरी एवं विवाह, आदि अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ता था।

(6) **पोप से सम्बन्ध**— सम्पूर्ण यूरोप के इतिहास में रोम के पोप का महत्व उल्लेखनीय रहा है। इटली के एकीकरण के बाद पोप अपने को वैटकिन का बन्दी माना करता था। वह रोमन कैथोलिक जनता को समय-समय पर जो आज्ञाएं दिया करता था, उसने इटली को अत्यधिक हानि होती थी। **मुसोलिनी चाहता था कि राज्य का ध्यान धर्म से हटकर वैदेषिक मामलों की ओर अधिक होना चाहिए।** अतः मुसोलिनी ने पोप से बातचीत कर समझौता करना

टिप्पणी

उचित समझा। उधर रोम का पोप समाजवादी प्रभाव से डरा हुआ था। अतः दोनों के बीच 11 फरवरी, 1929 ई. को **लेटरिन की सन्धि हुई। इसके अनुसार :**

(i) रोम पर इटली की सरकार का अधिकार मान्य हुआ।

(ii) वेटिकन नगर पोप का स्वतन्त्र नगर घोषित कर दिया गया।

(iii) पोप ने 10 करोड़ डालर देना स्वीकार किया। साथ में अपने प्रादेशिक अधिकार को छोड़ दिया।

(iv) सरकार पादरियों को वेतन देगी।

(v) कैथोलिक धर्म राज धर्म माना गया।

(vi) शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

(vii) धार्मिक विवाह प्रामाणिक घोषित हुआ।

इस प्रकार पोप ने स्वयं कहा, **''इटली ने ईश्वर पा लिया है और ईश्वर को इटली मिल गया है।''** इससे मुसोलिनी का महत्व बढ़ गया और राज्य की सरकार एवं राज्य के नागरिकों का धार्मिक विवादों से ध्यान हटकर देश के विकास की ओर गया। उसके इस कार्य की विद्वानों ने प्रशंसा की है।

(7) **आर्थिक क्षेत्र में सुधार**– जिस समय मुसोलिनी ने सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ में ली, इटली आर्थिक कष्ट से गुजर रहा था। इटली का बजट करोड़ों रुपयों के घाटे में चल रहा था। अतः देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाना अत्यन्त आवश्यक था, **इसके लिए उसने अनेक कार्य किए :**

(अ) **सिण्टीकेटिज्म को प्रोत्साहन**– सिण्टीकेटिज्म का तात्पर्य उस विचारधारा से है, जिसका व्यावसायिक सरकार बनाने की योजना समाजवादियों, मजदूरों एवं फासिस्टों में पनप रही थी। ये लोग चाहते थे कि देश की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए मिलकर कार्य करना चाहिए। 1926 ई. में एक नियम द्वारा प्रान्तीय एवं स्थानीय शाखाएं खोली गई और सम्पर्क केन्द्रीय शाखाओं से जोड़ा गया। केन्द्र में बनाई गई 13 सिण्टीकेटों का नियन्त्रण निगम मन्त्री के हाथों दिया गया। यह पद स्वयं मुसोलिनी ने संभाला।

हर व्यवसाय की सिण्टीकेट अलग-अलग थी और अपने-अपने स्तर से कार्य देखती थीं, परन्तु ये अपना सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से स्थापित नहीं कर सकती थीं।

(ब) **श्रमिक अधिकार पत्र** – सन् 1927 ई. में श्रमिक अधिकार पत्र घोषित किया गया जिसके अनुसार रविवार छुट्टी का दिन घोषित किया गया। मजदूरों की चिकित्सा, मुआवजे, मृत्यु एवं बुढ़ापे सम्बन्धी बीमे, आदि के अधिकारों को मान्यता दी गई। मजदूर के लिए 8 घण्टे का कार्य निश्चित किया गया। इससे अधिक पर अतिरिक्त धन देय घोषित किया गया। हड़ताल, आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(स) **कारपोरेट स्टेट**– सन् 1927 ई. में एक नियम पास किया गया। इस नियम से आर्थिक क्षेत्र को राजनीति से जोड़ा गया। इसका तात्पर्य था कि

टिप्पणी

आर्थिक विभागों को अब देश की लोकसभा बनाने का अधिकार मिल गया। यह कार्य केन्द्र की 13 सिण्टीकेट्स अपनी सामान्य परिषदों के माध्यम से करती थीं।

(द) **निगमात्मक व्यवस्था**– 1934 ई. में अर्थव्यवस्था को निगमात्मक व्यवस्था में बदला गया। देश में 22 निगमों की स्थापना की गई। निगमों का मुख्य कार्य वितरण एवं मूल्य की व्यवस्था ठीक करना, श्रम के झगड़ों को हल करना, उत्पादन को बढ़ाना और सरकार की विशेष परामर्श देना था। इस व्यवस्था से देश को काफी लाभ मिला। **वास्तव में यह देश की उन्नति का महान प्रयत्न था।**

(ब) **कृषि सम्बन्धी कार्य**– रोम तथा नेपल्स के दलदली भागों को सुखाकर कृषि योग्य बनाया गया। खाद, औजार और आधुनिक माध्यमों से कृषि की व्यवस्था की गई। गेहूं का उत्पादन बढ़ाया गया। विदेशों से आने वाले अनाज पर कर लगाया गया जिससे स्वदेशी कृषि को प्रोत्साहन मिला। चलचित्रों के माध्यम से कृषि की शिक्षा दी गई।

(र) **औद्योगिक कार्य**– मुसोलिनी ने रेलों को विकसित किया। यातायात को सुगम बनाया। रेशम का उत्पादन किया गया। इटली में जहाज बनाने के कारखाने बनाए गए। इन कारखानों की देख-रेख के लिए बोर्ड बनाया गया विद्युत शक्ति का अत्याधिक मात्रा में प्रयोग किया गया। इन औद्योगिक कार्यों से इटली की आर्थिक स्थिति काफी हद तक सुधरी।

(ल) **बेरोजगारी दूर करने के उपाय**– बेरोजगारी दूर करने के लिए स्कूलों, कॉलेजों, सड़कों, इमारतों, आदि को ठीक किया गया जिससे अनेक बरोजगार काम में लग गए। यहूदियों के प्रति घृणा भरी गई। सैन्य व्यवस्था पर बल दिया गया, इटली के अनेक बेरोजगार सेना में भर्ती हो गए। कृषि को प्रोत्साहित करने से बेरोजगारी कम हुई।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यद्यपि मुसोलिनी ने आर्थिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए, परन्तु **प्राकृतिक साधनों की कमी के कारण इटली का उतना आर्थिक विकास न हो पाया जितना प्रयत्न मुसोलिनी ने किया था।** फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा की उसकी गृह-नीति ने देश को राष्ट्रवादी एवं फासीवादी बनाने में कोई कसर न छोड़ी।

मुसोलिनी की विदेश नीति (Foreign Policy of Mussolini)

इटली यद्यपि विश्व युद्ध में विजयी हुआ था, किन्तु मित्र राष्ट्रों ने उससे जो भी वायदे किए थे, पूरे नाहीं किए थे। मुसोलिनी का विचार था कि वह इटली का अपमान है। वह चाहता था कि इस अपमान का बदला मित्र राष्ट्रों द्वारा बनाई गई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं किसी देश के निवासियों की भावुकता एवं सिद्धान्तों से धराशायी हो जाती है। इनका अस्तित्व देशवासियों की भावनाओं तक ही सीमित है।

मुसोलिनी चाहता था कि बाल्कान प्रायद्वीप, पश्चिमी एशिया एवे अफ्रीका में साम्राज्य विस्तार का इटली के पराभव को दूर किया जाए। उसके विचार में शान्ति का अर्थ केवल युद्ध के लिए थोड़ा-सा विश्राम मात्र था। उसने एक बार कहा भी

टिप्पणी

था, **"युद्ध का सामना करने वाले व्यक्तियों पर ही श्रेष्ठता की मुहर लग सकती है।"** मुसोलिनी भूमध्यसागर को इटली की झील के रुप में परिणत करना चाहता था। अपने इन्हीं सिद्धान्तों को लेकर मुसोलिनी ने अपनी विदेशी नीति को कार्यान्वित किया। इटली की जनता ने उसका इसलिए स्वागत किया क्योंकि वह भी इटली को उच्चतम शिखर पर देखना चाहिती थी।

अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत मुसोलिनी ने निम्नलिखित कार्य किए :

(1) **डोडिकानीज तथा रोड्स द्वीपों का सैन्यीकरण**– 1920 ई. में हुई सेव्र सन्धि के अनुसार डोडिकानीज और रोड्स इन दोनों द्वीपों पर यूनान ने अधिकार कर लिया जबकि ये पूर्व में इटली के अधीन थे। इटली की निगाह अभी भी इन दोनों द्वीपों पर लगी थी। टर्की के सुल्तान कलामपाशा द्वारा यूनान को पराजित करने के उपरान्त सेव्र की सन्धि तोड़े जाने से इटली को अप्रत्याशित लाभ हो गया। **24 जुलाई, 1923 ई. को हुई लोजान की सन्धि ने सेव्र की सन्धि को संशोधित किया और वे दोनों द्वीप इटली को प्राप्त हो गए।** वास्तव में मुसोलिनी भूमध्य सागर को इटैलियन झील बनाना चाहता था। अतः उसने पूर्वी भूमध्य सागर में स्थित इन दोनों द्वीपों का सैन्यीकरण शुरू कर दिया। उसने नौसैनिक अड्डे बनाए तथा द्वीपों की किलेबन्दी कर डाली। यह उसकी विदेशी नीति का प्रथम अभियान था।

(2) **टाइरोल के प्रति नीति**– पेरिस की सन्धि के अनुसार टाइरेल का ट्रेण्डिनो नामक क्षेत्र इटली को सौंप दिया गया था। टाइरोल का वह भाग जो कि जर्मन बहुल था, इटली के क्षेत्र में आ गया। इटली ने अपने इस वायदे को कि उनके साथ समानता का व्यवहार करेगा, भुलाकर कोई परवाह नहीं की। **मुसोलिनी ने गैरइटैलियन्स को इटैलियन प्रभाव में मानना शुरू कर दिया।** उसने वह भी स्पष्टतया घोषित किया कि यह इटली के मामलों में कोई विदेशी हस्तक्षेप स्वीकार नहीं कर सकता। इस प्रकार मुसोलिनी के हौंसले बढ़ते ही चले गए।

(3) **करफू पर बम वर्षा**– यूनान तथा अल्बानिया के सीमा विवाद को सुलझाने के लिए 'डीलिमिटेशन कमीशन' कार्य कर रहा था कि यूनान में अगस्त 1923 ई. को कुछ इटैलियन अधिकारियों की हत्या कर दी गई। मुसोलिनी ने, जो कि यूनान को चेतावनी दी कि 5 दिन के भीतर यूनान मामले की जाँच कराकर अपराधियों को दण्ड दे तथा इटली को 5 करोड़ थीरा युद्ध का हर्जाना दे। **यूनान ने इस बात को राष्ट्र संघ के सम्मुख रखा।** मुसोलिनी ने यूनान के करफू टापू पर बम वर्षा की और उस पर अधिकार कर लिया, किन्तु इंग्लैण्ड के दबाव के कारण उसे टापू खाली करना पड़ा, परन्तु उसने क्षतिपूर्ति की रकम वसूल कर ही ली। यह मुसोलिनी की एक महत्वपूर्ण सफलता थी। इससे राष्ट्र संघ की निर्बलता सिद्ध हुई और मुसोलिनी को अग्रिम कार्यवाही हेतु प्रोत्साहन मिला।

(4) **यूगोस्लाविया से सन्धि 27 जनवरी, 1924 ई.**– इटली और यूगोस्लाविया के सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं थे। दोनों के बीच प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। इटली वार्साय की सन्धि में परिवर्तन का इच्छुक था, जबकि यूगोस्लाविया वार्साय की सन्धि को यथावत रखना चाहता था। एड्रियाटिक सागर में दोनों के हित आवस में टकराते थे, किन्तु मुसोलिनी फ्यूम पर अधिकार कर भूमध्य सागर में अपनी

स्थिति को दृढ़ करना चाहता था। अतः उसने यूगोस्लाविया से 27 जनवरी, 1924 ई. को सन्धि की।

इस सन्धि से जारा का बन्दरगाह और डालमेशिया का समुद्र तट यूगोस्लाविया को दिया गया। इटली का फ्यूम पर अधिकर हो गया, परन्तु फ्यूम का बन्दरगाह यूगोस्लाविया के पास ही रहा। फ्यूम का नगर प्राप्त करना मुसोलिनी की विदेश नीति के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण सफलता थी।

(5) **रूस से 1924 ई. की सन्धि**— मुसोलिनी यूरोप की राजनीति में किसी शक्तिशाली मित्र का साथ ढूंढ रहा था। उसने देखा कि रूस वार्साय सन्धि का विरोधी है और परिवर्तन का इच्छुक है। अतः मुसोलिनी ने फरवरी 1924 ई. में रूस के साथ व्यापारिक सन्धि की और साथ ही रूसी सरकार को मान्यता प्रदान की। इस सन्धि से हालांकि इटली को कुछ प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु उसने यूरोपीय राजनीति में रूस को मित्र बना लिया, जिससे राजनैतिक मंच पर इटली का सम्मान बढ़ गया।

(6) **रोम पैक्ट 1935 ई.**— इटली के साथ फ्रांस के व्यापारिक सम्बन्ध व्यापारिक मतभेदों के कारण अच्छे नहीं थे। जहाँ ट्यूनिस, कार्सिका और सेवाय पर मुसोलिनी अधिकार करना चाहता था, वहीं इन पर फ्रांस का अधिकार था। भूमध्यसागर में भी दोनों के हित टकराते थे, परन्तु हिटलर के उत्कर्ष ने दोनों को करीब लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। **हिटलर एवं मुसोलिनी दोनों ने आस्ट्रिया सम्बन्धी विचारों ने रोम-पैक्ट को जन्म दे दिया। इसके अनुसारः**

(i) फ्रांस के 44,500 वर्ग मील अफ्रीकी क्षेत्र इटली को प्राप्त हो गए।

(ii) दोनों देशों में प्रतिद्वन्द्विता समाप्त हो गई।

(iii) आस्ट्रिया पर संकट आने पर दोनों देश परस्पर विचार-विमर्श करेंगे।

(iv) यूरोप की स्थिति यथावत् रहेगी।

(7) **स्ट्रेसा की सन्धि**— यह सन्धि भी हिटलर के भय से 1935 ई. में स्ट्रेसा नामक स्थान पर इंग्लैण्ड से की गई। इसका महत्व इस बात से है कि इंग्लैण्ड, इटली और फ्रांस के गठबन्धन ने हिटलर के विरोध में एक मोर्चे का कार्य किया।

(8) **अन्य देशों से सन्धियाँ**— मुसोलिनी ने अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए 1926 ई. में रूमानिया और स्पेन से, 1927 ई. में हंगरी से, 1928 ई. में यूनान व टर्की से, 1932 ई. में रूस से सन्धियों कीं। इन सन्धियों से यूरोपीय जगत में इटली ने अपना सम्मानित स्थान बना लिया। वेन्स महोदय ने तो यहाँ तक कहा है कि 1930 ई. **तक मुसोलिनी व्यावसायिक एवं कूटनीतिक प्रभाव बढ़ाने में सफल रहा।**

(9) **अबीसीनिया पर अधिकार**— मुसोलिनी अबीसीनिया पर अधिकार करने का इच्छुक था। मुसोलिनी के लिए उपनिवेश स्थापित करना अत्यधिक जरूरी इसलिए भी हो चुका था, क्योंकि इटली में बेकारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही थी। अबीसीनिया पर किसी देश ने अपना दावा घोषित नहीं किया था। अबीसीनिया व्यापारिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। वहाँ पर्याप्त मात्रा में कच्चा

माल विद्यमान था। सोमालीलैण्ड और आस्ट्रिया के बीच के इस क्षेत्र पर अधिकार कर मुसोलिनी अपने साम्राज्य का विस्तृत प्रसार करना चाहता था। उसने कहा भी था कि औद्योगिक सामग्री की प्राप्ति के लिए वह युद्ध करने को भी तैयार है। उसने कहा, **''यदि उसे विजय मिलेगी तो वह अबीसीनिया का बादशाह बनेगा अन्यथा वह इटली का शासक है ही।''**

5 दिसम्बर, 1934 ई. को इटेलियन सोमालीलैण्ड के पास लगे वालवाल के नगर में इटली और अबीसीनिया की सेनाओं में संघर्ष हो गया, मुसोलिनी ने अबीसीनिया की सीमाओं पर अपनी सेना एकत्र कीं और 3 अक्टूबर, 1935 ई. को अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया। इटली के विरुद्ध लगाए गए **आर्थिक प्रतिबन्ध सफल न हो पाए।** अन्ततः 7 दिसम्बर, 1935 ई. को फ्रांस के विदेश मन्त्री लावेल तथा इंग्लैण्ड के विदेश मन्त्री सैम्युएल होर ने इटली की सन्तुष्टि हेतु पेरिस में समझौता किया, परन्तु समझौता लागू न हो सका और 5 मई, 1936 ई. को मुसोलिनी की सेना आदिस अवाबा में घुस गई और 9 मई 1936 ई. को मुसोलिनी अबीसीनिया का सम्राट घोषित कर दिया गया। अबीसीनिया का शासक हेल हिलासी असहाय था। उसकी पुकार किसी ने न सुनी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राष्ट्र संघ के द्वारा लगाए गए आर्थिक प्रतिबन्ध इटली का कुछ न कर सके। यदि इंग्लैण्ड और फ्रांस इटली के विरुद्ध एक हो जाते और सैनिक कार्यवाही की धमकी देते तो शायद मुसोलिनी अबीसीनिया पर अधिकार न कर पाता। कार ने लिखा है, **''यह राष्ट्र संघ के लिए भयंकर मार थी।''** गैरेट के शब्दों में, ''अबीसीनिया की लाश ने यूरोप के जीवन को विषाक्त कर दिया।'' लैंगसम महोदय ने तो यहाँ तक लिखा है, ''रोम बर्लिन धुरी की सम्भावना यहीं से स्पष्ट हो चुकी थी।''

(10) राष्ट्र संघ का परित्याग (1936 ई.)– इसके तुरन्त बाद इटली ने राष्ट्र संघ की सदस्यता से हाथ खींच लिए।

(11) रोम-बर्लिन धुरी की स्थापना– हिटलर इस बात से पूर्णतया भिज्ञ था कि मुसोलिनी को अपनी ओर करके ही आस्ट्रिया पर अधिकार पाया जा सकता है। यूरोपीय राजनीति इटली के इर्द-गिर्द घूम रही थी। अबीसीनिया के प्रति इटली के रवैये ने फ्रांस, इंग्लैण्ड एवं रूस को चौकन्ना कर दिया था। फ्रांस, इंग्लैण्ड एवं रूस के व्यवहार से भी इटली खिन्न था कष्ट के समय हिटलर ने इटली की पर्याप्त मदद की। मुसोलिनी समझ गया कि हिटलर सच्चा मित्र है। अतः इटली व जर्मनी के बीच 26 अक्टूबर, 1936 ई. को एक समझौता हुआ जो इतिहास में रोम/बर्लिन धुरी के नाम से प्रख्यात है, **इस समझौते की शर्तें इस प्रकार थीं:**

(i) दोनों देश समाजवादी व्यवस्था का विरोध करेंगे।

(ii) स्पेन की रक्षा की जाएगी।

(iii) दोनों देश समय-समय पर वार्ता करेंगे।

(iv) जर्मनी का आस्ट्रिया तथा चैकोस्लोवाकिया पर मौन अधिकार स्वीकार कर लिया गया। आस्ट्रिया तथा चैकोस्लोवाकिया पर मौन अधिकार स्वीकार कर लिया गया। आस्ट्रिया से किए गए 1919 ई. के समझौते को जैसे

इटली ने भुला ही दिया था। शीघ्र ही इस सन्धि में जापान को शामिल कर लिया गया और रोम-बर्लिन-टोक्यो धुरी का निर्माण हो गया।

(12) अल्बानिया पर अधिकार— इटली का अल्बानिया के लिए विशेष महत्व था। इटली को भूमध्य सागर पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए औटेण्ड्रो के एक ओर इटली और दूसरी और अल्बानिया थे। 1925 ई. में अल्बानिया में गणतन्त्रात्मक शासन स्थापित कर दिया गया था। इसका राष्ट्रपति जूगो (Zugo) नामक व्यक्ति हो गया। अल्बानिया आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा था। उसकी स्थिति अच्छी नहीं थी। अतः 27 नवम्बर, 1926 ई. को अल्बानिया ने इटली से सन्धि की। **इस सन्धि की धाराएं निम्नांकित थीं :**

(i) अल्बानिया के सैनिकों को इटली के सैनिक पदाधिकारी प्रशिक्षित करेंगे।

(ii) अल्बानिया इटली के अहित में किसी अन्य देश से सन्धि नहीं करेगा।

(iii) दोनों देश बाह्य आक्रमणकारी का सामना मिलकर करेंगे। यह शर्त 20 वर्ष तक रहेंगी।

इस प्रकार एक प्रकार से अल्बानिया पर इटली का ही प्रभुत्व छा गया। इसी समय अल्बानिया और यूगोस्लाविया के बीच युद्ध का संकट दिखाई देने लगा। मुसोलिनी ने अब्लानिया में उसकी सहायता के बहाने अपनी सेनाएं भेज दीं और 1936 ई. में आक्रमण कर इटली में मिला लिया।

(13) स्पेन से सम्बन्ध— विश्व युद्ध के दौरान स्पेन की तटस्थता की नीति ने आर्थिक रूप में अन्य देशों के मुकाबले स्पेन की आर्थिक स्थिति को बिगड़ने न दिया था, परन्तु विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद भ्रष्टाचार का जो दौर स्पेन में चला, उसने स्पेन की कमर तोड़ दी। **इस समय, समय के साथ-साथ समाजवादी, साम्यवादी, अराजकवादी, गणतन्त्रवादी अनेक दल पनपने लगे।** सभी स्पेन में अपना प्रभाव बढ़ाकर अपनी सरकार स्थापित करना चाहते थे। 1913 ई. में गणतन्त्र की स्थापना स्पेन में हुई। स्पेन में फासिस्टी नेता जनरल फ्रेंको गणतन्त्र को उखाड़कर अपनी सत्ता स्थापित करना चाहता था।

इधर इटली भूमध्य सागर में प्रभाव बढ़ाने के कारण स्पेन में रुचि लेने लगा। उसने जनरल फ्रेंको को सहायता पहुँचाना शुरू कर दिया। जर्मनी ने इटली का साथ दिया और अन्ततः 1939 ई. में जनरल फ्रेंको की विजय हुई। जनरल फ्रेंको की विजय से इटली को यह लाभ हुआ कि भूमध्य सागर में उसके विरोध में बनने वाले गुट की सम्भावना समाप्त हो गई।

(14) सज्जन समझौता 1937— 2 जून, 1937 ई. को इटली ने इंग्लैण्ड के साथ एक समझौता किया जो सज्जन समझौता (Gentlemens Agreements) कहलाता है। इसके अनुसार स्पेन की तटस्थता पर जोर दिया गया। भूमध्य सागर में दोनों ने एक-दूसरे की स्वतन्त्रता मानी।

मुसोलिनी ने इससे ठीक बाद नौसेना बढ़ा ली। इधर इटली को सन्तुष्ट करने की ब्रिटेन की नीती से ब्रिटिश इटालियन एक्ट के अनुसार अबीसीनिया पर इटली की सत्ता को मान्यता दे दी।

(15) **इटली व जर्मनी का समझौता 22 मई, 1939 ई.**– 22 मई, 1939 ई. को इटली ने जर्मनी के साथ राजनैतिक समझौता किया। **इस समझौते को फौलादी समझौता** (Steel Pact) **भी कहा जाता है।** इसके अनुसार दोनों एक-दूसरे की सैन्य सहायता करेंगे।

(16) **द्वितीय विश्व युद्ध व इटली**– हिटलर ने 1 सितम्बर, 1939 ई. को पोलैण्ड पर आक्रमण करके द्वितीय विश्व युद्ध को जन्म दे दिया। स्टील पैक्ट के अनुसार इस समय मुसोलिनी को हिटलर का साथ देना चाहिए था, किन्तु जैसा कि हेजन ने लिखा है, **''इस कारण इटली अशक्त था, जर्मनी के हित में उसका तटस्थ रहना ठीक था। स्पेन के गृहयुद्ध में वह पूर्णतया थक चुका था – वह युद्ध का विचार भी नहीं कर सकता था।''** कुछ भी हो अन्ततः 11 जून, 1940 ई. को मुसोलिनी ने हिटलर की ओर से मित्र राष्ट्रों के विरोध में युद्ध की घोषणा कर दी। प्रारम्भ में उन्हें विजय मिली, किन्तु बाद में उसे असफलता मिली और एक दिन ऐसा भी आया जब 25 जुलाई, 1943 ई. को उसे बन्दी बना लिया और 18 अप्रैल, 1945 ई. को देश की जनता ने उसे उसकी प्रेयसी पेताच्वी (पेताच्यी) के साथ मृत्युदण्ड दे दिया।

इस प्रकार अन्ततः कहा जा सकता है कि मुसोलिनी ने इटली को चरम उत्कर्ष तक तो उठाया, किन्तु उसकी फासिज्म की संवर्धन महत्वाकांक्षा उसके वध का कारण बनी।

5.4 द्वितीय विश्व युद्धः कारण, घटनाएं एवं प्रभाव (Second World War : Causes, Events and Effects)

भूमिका (Introduction)

प्रथम विश्व युद्ध 1914-18 ई. तक चला था तथा इसमें भाग ले रहे 36 राष्ट्रों को अपार जन धन की हानि का सामना करना पड़ा था। **युद्ध की समाप्ति पर पराजित राष्ट्रों तथा विशेष रूप से जर्मनी के साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार किया गया जिससे उन राष्ट्रों में प्रतिशोध की भावना प्रबल होती गई और बीस वर्ष पश्चात् पुनः युद्ध के बादल विश्व पर मंडराने लगे।** इंग्लैण्ड की तुष्टीकरण की नीति से यह बादल और भी सधन होते गए और शीघ्र ही 1939 ई. में द्वितीय विश्व युद्ध के रूप में प्रस्फुटित हो गए।

द्वितीय विश्व युद्ध के कारण (Causes of the Second World War)

1939 ई. से 1945 ई. तक हुए इस युद्ध के प्रारम्भ होने के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे :

(1) **प्रथम विश्व युद्ध एवं वार्साय की सन्धि (First World War and the Treaty of Versailles)** – द्वितीय विश्व युद्ध का एक प्रमुख कारण प्रथम विश्व युद्ध में ही निहित था। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने के वही कारण थे जिनके कारण प्रथम विश्व युद्ध हुआ था। वार्साय की सन्धि, ऐसा प्रतीत होता है कि शान्ति सन्धि नहीं थी, अपितु बीस वर्षों के लिए युद्ध विराम सन्धि थी। प्रथम

विश्व युद्ध सम्भवतः दोनों पक्षों की आकांक्षाओं को पूर्ण नहीं कर सका था। अतः इन अरमानों की पूर्ति हेतु द्वितीय विश्व युद्ध हुआ।

वार्साय की सन्धि (Treaty of Versailles) पर भी द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ करने का उत्तरदायित्व है। प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होने के पश्चात् 1919 ई. में जर्मन के साथ वार्साय की सन्धि की गई थी। **जर्मनी के साथ इसमें प्रतिशोध की भावना से अत्यन्त कठोर व्यवहार किया गया था, ताकि उसे स्थाई रूप से शक्तिहीन बनाया जा सके।** इस सन्धि के द्वारा जर्मनी को अनेक भागों में विभक्त किया गया, उसके उपनिवेशों पर मित्र राष्ट्रों ने अधिकार किया तथा खानों एवं कारखानों को मित्र राष्ट्रों ने परस्पर वितरिक कर लिया। **जर्मनी पर युद्ध हर्जाना भी इतना अधिक किया गया था कि उसे चुकाना जर्मनी के लिए असम्भव था।** जर्मनी से इस सन्धि पत्र पर बलपूर्वक हस्ताक्षर कराए गए। इस प्रकार मित्र राष्ट्रों द्वारा अदूरदर्शिता का प्रदर्शन करती हुई, जर्मनी के साथ की गई इस सन्धि ने जर्मन को इसे भंग करने एवं मित्र राष्ट्रों से प्रतिशोध लेने के लिए बाध्य किया। **इसी कारण द्वितीय विश्व युद्ध को प्रतिशोधात्मक युद्ध (War of Revenge) कहा जाता है।**

(2) **दलबन्दी (Party System)**– प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व यूरोप दो सैनिक खेमों **त्रि-दल (Triple Alliance)** तथा **त्रि-मैत्री (Triple System)** में विभक्त हो गया था। इसी प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व भी यूरोप दो भागों में विभक्त हो चुका। **द्वितीय विश्व युद्ध में एक ओर जर्मनी, इटली व जापान थे जिन्हें धुरी शक्तियाँ (Axis Powers) कहते थे।** धुरी शक्तियाँ कहते थे। धुरी शक्तियाँ वार्साय सन्धि की विरोधी तथा अधिनायकवाद की समर्थक थीं। दूसरी ओर **मित्र राष्ट्रों में फ्रांस, पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया तथा रूमानिया थे।** युद्ध के प्रारम्भ होने के कुछ समय पश्चात् इंग्लैण्ड मित्र राष्ट्रों की तथा रूस धुरी शक्तियों की ओर हो गया। युद्ध काल में जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण किए जाने से रूस भी मित्र राष्ट्रों की ओर हो गया तथा पर्ल हार्बर पर आक्रमण होने पर अमेरिका भी इसी दल में मिल गया। इस प्रकार पोलैण्ड व जर्मनी का झगड़ा विश्व युद्ध में परिणंत हो गया।

(3) **सैनिकवाद (Militarism)**– 1919 ई. की वार्साय की सन्धि के द्वारा जर्मनी को निर्बल बनाने के उद्देश्य से उसका निःशस्त्रीकरण कर दिया गया था। इसके पश्चात् भी फ्रांस का जर्मनी के प्रति भय कम न हुआ। अतः वह सैनिक तैयारियाँ करता ही रहा। 1933 ई. में जर्मनी में हिटलर शक्ति में आया। **हिटलर ने वार्साय की सन्धि की अवहेलना करके अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि करना प्रारम्भ कर दिया। उसने सैनिक सेवा अनिवार्य की तथा हथियारों के उत्पादन को बढ़ाया।** हिटलर द्वारा निरन्तर सैनिक शक्ति में वृद्धि होते देखकर इंग्लैण्ड को भी इस ओर ध्यान केन्द्रित करना पड़ा। इंग्लैण्ड, जो प्रारम्भ में निःशस्त्रीकरण के पक्ष में था, हिटलर की नीति को देखकर स्वयं की सैन्य शक्ति में वृद्धि करने पर विवश हुआ। धीरे-धीरे जापान, इटली तथा रूस ने भी अपनी सैन्य शक्ति में वृद्धि करना प्रारम्भ किया। सभी देशों के द्वारा सैनिक तैयारियाँ करने पर युद्ध का होना स्वाभाविक था।

(4) राष्ट्र की निर्बलता (Weakness of League of Nations)– प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् पारस्पारिक समस्याओं को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने के उद्देश्य से एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था राष्ट्र संघ की स्थापना की गई थी, किन्तु राष्ट्र संघ अपने उद्देश्य में सफलता न प्राप्त कर सका। अनेक राष्ट्र, राष्ट्र संघ से पृथक् हो गए तथा उन्होंने उसके प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया, किन्तु राष्ट्र संघ ऐसे देशों के विरुद्ध कार्यवाही न कर सका जिससे उसकी निर्बलता स्पष्ट हो गई। अतः देशों को भी राष्ट्र संघ से सुरक्षा प्राप्त करने का विश्वास समाप्त हो गया।

(5) साम्राज्यवाद (Imperialism)– प्रथम विश्व युद्ध का भी एक प्रमुख कारण साम्राज्यवाद था। इस युद्ध के पश्चात् भी साम्राज्यवाद की भावनाएं समाप्त न हो सकीं। **जर्मनी एवं इटली वार्साय सन्धि का विरोध करते हुए बढ़ती हुई जनसंख्या को बसाने के लिए उपनिवेश स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हो गए।** जापान भी साम्राज्यवादी नीति का समर्थक था तथा उसकी दृष्टि चीन पर लगी थी। इन देशों की साम्राज्यवादी नीति इंग्लैण्ड व फ्रांस के हितों से टकरा रही थी। अतः युद्ध होना आवश्यक भी था।

(6) तानाशाहों का उदय (Rise of Dictators)– द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व यूरोप के अनेक देशों में तानाशाहों का शासन स्थापित हुआ। जर्मनी में बीमर गणतन्त्र के शासन की असफलता के पश्चात् नाजी दल का नेता हिटलर (Hitler) शक्ति में आया। **उसका प्रमुख उद्देश्य वार्साय सन्धि की अवहेलना करके जर्मनी के खोए हुए सम्मान को पुनः अर्जित करना था।** अतः अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसने सैन्य शक्ति को बढ़ाया व आस्ट्रिया तथा चैकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया।

इटली में भी मुसोलिनी (Mussolini) नामक तानाशाहीशक्ति में आया तथा इटली में फासीवाद की स्थापना करने में सफल हुआ। **इटली का विचार था कि यद्यपि उसने मित्र राष्ट्रों को प्रथम विश्व युद्ध में सहयोग दिया तथापि उसे उचित इनाम नहीं दिया गया।** अतः यह मित्र राष्ट्रों एवं वार्साय की सन्धि का विरोधी हो गया तथा उपनिवेश स्थापना के लिए प्रयत्नशील हो गया। **स्पेन में भी तानाशाही की भावनाएं शक्तिशाली होती गई** तथा शीघ्र ही जनरल फ्रैंको नामक व्यक्ति ने इटली एवं जर्मनी की सहायता से गणतन्त्र शासन के विरुद्ध विद्रोह किया तथा अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की।

इस प्रकार विभिन्न देशों में तानाशाहों का उदय हुआ, जिन्होंने शीघ्र ही अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने का प्रयास सैनिक शक्ति के आधार पर किया। ऐसी स्थिति में युद्ध होना स्वाभाविक ही था।

(7) दो विचारधाराओं का संघर्ष (Struggle between Two Thought)– द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व में दो प्रकार की विचारधाराएं प्रचलित थीं– जनतन्त्रात्मक एवं एकतन्त्रात्मक। जनतन्त्रात्मक विचारधारा इंग्लैण्ड, फ्रांस एवं अमेरिका में प्रचलित थीं जबकि इटली, जर्मनी एवं जापान एकतन्त्रात्मक विचारधारा के समर्थक थे। शीघ्र ही इन दोनों विचारधाराओं में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। अतः दोनों में निर्णय होना निश्चित ही था जिसका एकमात्र रास्ता युद्ध ही था। इटली के तानाशाह

मुसोलिनी ने एक बार कहा था – **'दोनों विचारधाराओं के संघर्ष में समझौता होना असम्भव है। इस संघर्ष के कारण या तो हम रहेंगे अथवा वे ही रहेंगे।'**

टिप्पणी

(8) **राष्ट्रीय समाजवाद (National Socialism)– जर्मनी में इस प्रकार की भावना जागृत हो गयी कि वे शुद्ध आर्य हैं। अतः मनुष्यों में श्रेष्ठ होने के कारण उन्हें ही शासन करने का अधिकार प्राप्त है।** यह राष्ट्रीय समाजवाद की भावना भविष्य में अत्यन्त हानिकारक प्रमाणित हुई। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जर्मनी की विभिन्न भागों में विभक्त कर दिया था जिसने जर्मन अलग-अलग राष्ट्रों के अधीन हो गए थे। आस्ट्रिया, चैकोस्लोवाकिया तथा पोलैण्ड में रहने वाले जर्मनी के कारण अत्यन्त गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गई। **हिटलर विदेशों में रहने वाले जर्मनों को जर्मनी से मिलाना चाहता था।** जर्मनी ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शक्ति का सहारा लिया। फ्रांस व इंग्लैण्ड ने तुष्टीकरण की नीति के स्थान पर यदि इसी समय जर्मनी को आस्ट्रिया पर अधिकार करने से रोका होता तो सम्भवतः द्वितीय विश्व युद्ध न होता।

(9) **तुष्टीकरण की नीति (Policy of Appeasement)–** मित्र राष्ट्रों द्वारा तानाशाही के प्रति तुष्टीकरण की नीति के परिणामस्वरुप तानाशाह अत्यधिक शक्तिशाली होते चले गए और विश्व युद्ध का एक कारण बने। मित्र राष्ट्रों द्वारा तुष्टीकरण की नीति का पालन करने का कारण मित्र राष्ट्रों में पारस्परिक झगड़ों का होना था। इंग्लैण्ड और अमेरिका जर्मनी के प्रति उदारता का व्यवहार करना चाहते थे, क्योंकि उनका मत था कि इस प्रकार के व्यवहार करने पर जर्मनी भविष्य में युद्ध नहीं करेगा। वहाँ इंग्लैण्ड में बने सामान की अत्यधिक माँग थी। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड-रूस के साम्यवाद के प्रति अत्यन्त शंकित था तथा रूस के साम्यवाद को रोकने के लिए जर्मनी का उत्थान आवश्यक था। इंग्लैण्ड यूरोप के झगड़ों में पुनः पड़ना नहीं चाहता था। फ्रांस-जर्मनी के प्रति कठोर नीति का पालन करना चाहता **था। इस प्रकार मित्र राष्ट्रों में परस्पर मतभेद से तानाशाहों ने लाभ उठाया।** हिटलर ने आस्ट्रिया को अपने अधिकार में ले लिया तथा चैकोस्लोवाकिया को भी सेना भेजी। इटली ने भी अबीसीनिया पर अधिकार कर लिया। इंग्लैण्ड ने फिर भी कोई ठोस कार्यवाही न की। तानाशाहों की महत्वाकांक्षाएं मित्र राष्ट्रों की तुष्टीकरण की नीति से बढ़ती गईं। अतः युद्ध का होना निश्चित हो गया।

(10) **अनाक्रमण सन्धि (Non-aggression Pact)–** रूस की साम्यवादी नीति के कारण इंग्लैण्ड व रूस के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो गया था। मित्र राष्ट्र रूस पर विश्वास न करते थे तथा म्यूनिख सम्मेलन में भी रूस को आमन्त्रित नहीं किया गया था। रूस पश्चिम में जर्मनी एवं पूर्व में जापान से घिरा हुआ था। अतः मित्र राष्ट्रों से मित्रता करना चाहता था। इंग्लैण्ड एवं फ्रांस भी जर्मनी के विरुद्ध रूस से सन्धि करना चाहते थे, किन्तु रूस की कुछ शर्तें थीं जिन्हें इंग्लैण्ड स्वीकार करने के लिए तैयार न था। अतः रूस जो पहले से ही मित्र राष्ट्रों से प्रसन्न न था, अब रुष्ट हो गया तथा उसने जर्मनी के साथ 1939 ई. में **अनाक्रमण सन्धि (Non-aggression Pact) कर लिया। जर्मनी को इससे अत्यधिक लाभ हुआ, क्योंकि इसके उसकी पूर्वी सीमा सुरक्षित हो गई।**

इस प्रकार अपनी स्थिति को दृढ़ बनाकर जर्मनी ने 1 सितम्बर, 1939 ई. को पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। पोलैण्ड की सहायतार्थ इंग्लैण्ड व फ्रांस ने तथा जर्मनी की ओर से रूस ने हस्तक्षेप किया, परिणामस्वरुप द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया।

युद्ध की घटनाएं (Events of the War)

जर्मनी ने 1 सितम्बर, 1939 ई. को पोलैण्ड पर आक्रमण किया। **पोलैण्ड** ने यद्यपि अत्यन्त वीरतापूर्वक जर्मन सेनाओं का सामना किया, किन्तु जर्मन सेनाओं की सहायतार्थ रूस की सेनाओं के भी आ जाने पर पोलैण्ड परास्त हुआ तथा उस पर जर्मनी एवं रूस का अधिकार हो गया। रूस जर्मनी पर विश्वास नहीं करता था। अतः उसने फिनलैण्ड पर भी अधिकार किया तत्पश्चात् लटाविया, लिथुआनिया तथा एस्टोनिया पर अधिकार कर अपनी पश्चिमी सीमा को रूस ने सुरक्षित कर लिया।

1940 ई. के प्रारम्भ में जर्मनी ने डेन्मार्क तथा नीदरलैण्ड पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात 1914 ई. की पराजय का प्रतिशोध लेने हेतु बेल्जियम होते हुए फ्रांस पर जर्मनी ने आक्रमण किया। कन्कर्क के स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। जिसमें जर्मन सेना ने फ्रांस व इंग्लैण्ड की सेनाओं को बुरी तरह परास्त किया। 22 जून, 1940 ई. को फ्रांस ने हथियार डाले। इस विजय से फ्रांस के विस्तृत भाग पर जर्मनी का अधिकार हो गया। इसी वर्ष इटली भी फ्रांस के अधीन उस के क्षेत्र सेवाय, नाइस, कोसिंका, आदि अधिकार करने के उद्देश्य से युद्ध सम्मिलित हो गया। जर्मनी की सेना की सहायता से इटली यूनान को परास्त करने में भी सफल हो गया। जर्मनी ने क्रीट पर भी अधिकार कर लिया तथा पतझड़ के मौसम में इंग्लैण्ड पर हवाई आक्रमण किया। लन्दन व अन्य बड़े नगरों पर बमबारी की गई जिसमें हजारों व्यक्ति मारे गए तथा अपार सम्पत्ति नष्ट हुई। इंग्लैण्ड में भी जर्मनी के जहाजों को नष्ट करना प्रारम्भ किया तथा जर्मनी को विशेष सफल न होने दिया।

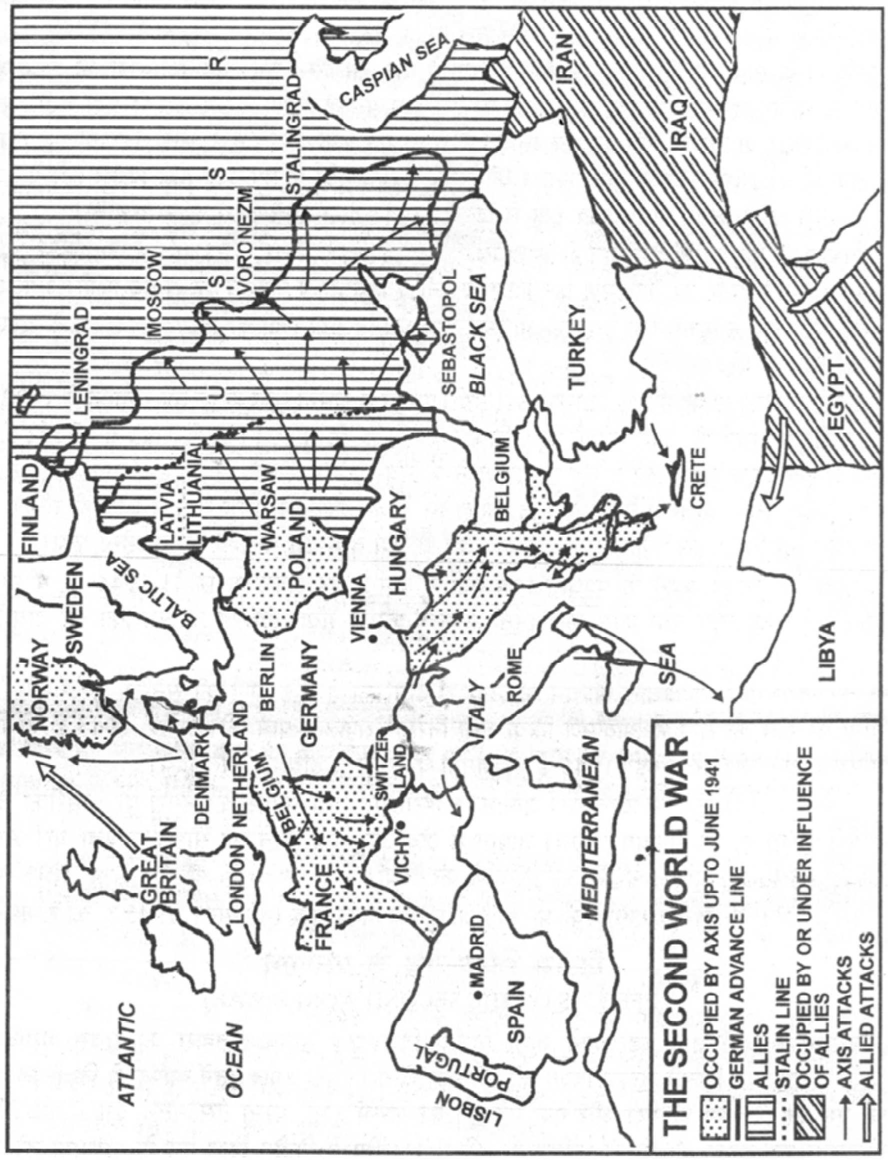

22 जून, 1941 ई. को जर्मनी ने 1919 को अनाक्रमण सन्धि को भंग करके बिना किसी चेतावनी वे रूस पर आक्रमण कर दिया। यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि जर्मनी ने अचानक रूस पर आक्रमण क्यों कर दिया। **जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण करने के निम्नलिखित कारण थे :**

(i) जर्मनी रूस की बढ़ती हुई शक्ति से चिन्तित होने लगा था।

(ii) हिटलर का विचार था कि रूस जर्मनी को धोखा दे रहा था व किसी भी समय वह जर्मनी पर आक्रमण कर सकता था।

(iii) हिटलर को यह भी सन्देह था कि इंग्लैण्ड व अमेरिका ने रूस से सन्धि कर ली थी।

अतः हिटलर का विचार था कि इंग्लैण्ड को पराजित करने से पूर्व रूस की शक्ति कुचलना आवश्यक था, ताकि इंग्लैण्ड को रूस की मदद न मिल सके। इस विशय में **लैंगसम** का कथन उल्लेखनीय है, ''**नाजी नेता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब तक उन्हें पूर्वी सीमा पर जर्मन सेना एवं विमानों को रखना पड़ेगा तब तक इंग्लैण्ड**

को पराजित करना सम्भव न होगा। अतः उन्होंने पहले अचानक विद्युतगति के आक्रमण कर रूस को पराजित करने और फिर इंग्लैण्ड के विरुद्ध संपूर्ण शक्ति लगाने का निश्चय किया।'' वैसे भी हिटलर व साम्यवादी रूस मजबूरी में ही एक दूसरे का साथ दे रहे थे। रूस पर आक्रमण करते समय **हिटलर** ने **मुसोलिनी** को लिखा था – **सोवियत के साथ मैत्री निभाना अत्यधिक कष्टप्रद हो गया था। इससे मुझे अत्यधिक मानसिक क्लेश हो रहा था। अब मैं शान्ति अनुभव कर रहा हूँ।''** हिटलर द्वारा रूस पर आक्रमण करना उसकी एक बड़ी भूल थी हिटलर का विचार था कि वह रूस को सफलतापूर्वक परास्त कर लेगा, किन्तु रूसी सेना ने अत्यन्त वीरतापूर्वक जर्मन सेनाओं का सामना किया तथा हिटलर को उसने उद्देश्य पूर्ति में सफल न होने दिया। रूस पर जर्मनी द्वारा आक्रमण करने के परिणामस्वरूप रूस ने जुलाई 1941 ई. में इंग्लैण्ड से सन्धि कर ली।

टिप्पणी

जापान का इस समय तक चीन से युद्ध चल रहा था, किन्तु दिसम्बर 1941 ई. में जापान ने अमेरिका के मध्य प्रदेश पर्ल हार्बर पर आक्रमण कर दिया। जर्मनी एवं इटली ने जापान को सहायता दी। **अमेरिका को भी विवश होकर युद्ध में कूदना पड़ा** तथा यह भी मित्र राष्ट्रों से मिल गया तथा चर्चिल एवं रूजवेल्ट ने **'एटलांटिक चार्टर'** की घोषणा की ।

उत्तरी अफ्रीका में भीषण लड़ाईयाँ लड़ी गई। प्रारम्भ में जर्मनी तथा इटली की सेनाओं ने 1932 ई. में मिस्त्र, अल्जीरिया, त्रिपोली, आदि प्रदेशों पर अधिकार कर लिया, **किन्तु 1943 ई. में स्थिति में परिवर्तन हो गया।** अफ्रीका से इटली एवं जर्मनी का प्रभाव समाप्त करने में मित्र राष्ट्रों की सेनाएं सफल हुई, तत्पश्चात् इटली पर आक्रमण किया गया तथा सिसली, केपमेटापन, आदि पर विजय प्राप्त की। मित्र राष्ट्रों ने शीघ्र ही सम्पूर्ण इटली पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार मुसोलिनी का पतन हो गया तथा उसे भागकर जर्मन जाना पड़ा ।

इटली को परास्त करने के पश्चात् मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी पर आक्रमण किए। 1944 ई. में नार्वे पर अधिकार कर लिया गया तथा फ्रांस को जर्मनी से मुक्त कराया गया। इंग्लैण्ड और अमेरिका की वायुसेना ने जर्मनी पर भीषण आक्रमण किए तथा जन-धन की अपार हानि हुई जर्मनी के कारखानों को भी हवाई आक्रमण से नष्ट कर दिया गया, तत्पश्चात् पश्चिम की ओर से अमेरिका तथा इंग्लैण्ड की सेनाओं ने और पूर्व दिशा से जर्मनी रूस की सेना ने आक्रमण किया तथा निरन्तर सफलता प्राप्त की। अप्रैल, 1945 ई. में हिटलर ने आत्महत्या कर ली। अतः मई, 1945 ई. में जर्मनी की सेना ने हथियार डाल दिए।

जापान अब भी युद्ध में व्यस्त था। जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी नगरों पर अमेरिका ने 6 व 9 अगस्त, 1945 ई. को अणुबम गिराए। जापान में अब और युद्ध करने का साहस न बचा था। अतः 14 अगस्त, 1945 ई. को जापान ने भी आत्मसमर्पण कर दिया।

इस प्रकार 1 सितम्बर, 1939 ई. को प्रारम्भ हुआ द्वितीय विश्व युद्ध 14 अगस्त, 1945 ई. को समाप्त हुआ।

द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम (Effects of the Second World War)

लगभग 6 वर्षों तक लड़ा जाने वाला द्वितीय विश्व युद्ध मानव इतिहास का सबसे भयावह एवं विनाशकारी युद्ध था, जिसने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। **इसके प्रभाव इतने व्यापक थे कि विश्व इतिहास में एक युग का अन्त हो गया और एक नए युग का प्रारम्भ हुआ,** परन्तु इस नूतन युग में भय, चिन्ता, अनिश्चित्ता एवं तनाव की स्थिति पूर्ववत् ही बनी रही। **संक्षेप में वित्तीय विश्व युद्ध के परिणामों को अग्रवत् इंगित किया जा सकता है:**

(1) **युद्धरत देशों की क्षति**– द्वितीय विश्व युद्ध में भाग लेने वाले देशों को गम्भीर क्षति उठानी पड़ी थी। सर्वाधिक क्षति रूस को उठानी पड़ी। **केवल स्तालिनग्राड के युद्ध में मारे गए रूसी नागरिकों की संख्या तो सम्पूर्ण युद्ध में मारे गए अमेरिकनों के लगभग बराबर ही थी।** इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि पश्चिमी मित्रों ने 1944 ई. तक धुरी राष्ट्रों के विरोध में कोई दूसरा मोर्चा नहीं खोला था। अतः जर्मनी के प्रहार को रूसी मोर्चे को ही सहना पड़ा था। युद्ध में रूस को 1 अरब 28 करोड़ डालर की सम्पत्ति का नुकसान सहना पड़ा। उसके बड़ी संख्या में नगर नष्ट हो गए और लाखों नागरिक काल-कवलित हो गए। ब्रिटेन को भी महान क्षति का सामना करना पड़ा। उसके 4 लाख 45 हजार नागरिक काल-कवलित हो गए। उसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पहले की अपेक्षा कम हो गया। कोयले एवं कपड़े के उत्पादन में कमी आ जाने से 41 प्रतिशत गिरावट आ गई। उसे 1946 ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका से 3 अरब 75 करोड़ डालर कर्ज के रूप में लेना पड़ा। यह कर्ज उसे 2 प्रतिशत ब्याज की दर 50 वर्ष में चुकाना तय हुआ था। फ्रांस को भी 3 लाख 80 हजार नागरिकों के हाथ धोना पड़ा। उसका कृषि का उत्पादन 38 प्रतिशत कम हो गया और औद्योगिक उत्पादन 30 प्रतिशत घट गया। स्थिति यहां तक पहुँच गई कि 1945 ई. में फ्रांस के रहन-सहन की वस्तुओं की कीमतों में 296 प्रतिशत की वृद्धि हो गई **इटली** के युद्ध में 6 लाख 36 हजार 37 सैनिक काल-कवलित हो गए। उसकी राष्ट्रीय संपत्ति पूर्व की अपेक्षा अब मात्र 1/3 रह गई। उसे लगभग 1 खरब 'लिरा' की क्षति उठानी पड़ी। **जर्मनी** को भी भयंकर क्षति का सामना करना पड़ा। उसे 40 लाख जर्मन नागरिकों से हाथ धोना पड़ा। एक निरीक्षक के अनुसार, **"1945 ई. में जर्मनी विशिष्ट नगरों, भयभीत व्यक्तियों और कल्पनातीत भयंकर दुर्दशाओं का देश था।"** जर्मनी का विभाजन कर दिया गया। जापान का भी आर्थिक पराभव हुआ। हिरोशिमा एवं नागासाकी में गिराए गए एँटम बम के कारण जापान का मनोबल टूट चुका था। जापान का प्रादेशिक प्रभुत्व भी पूर्व से कम हो गया। उसे विदेशी बाजारों एवं कच्चे माल के साधनों से वंचित होना पड़ा। जहां तक **अमेरिका** का सम्बन्ध है अमेरिका युद्ध में अन्त में कूदा था। ना तो उसकी भूमि पर युद्ध लड़ा गया और न ही उसे भयंकर बम वर्षा का सामना करना पड़ा। अतः अमेरिका को कोई विशेष हानि नहीं उठानी पड़ी। उल्टे युद्ध के पश्चात् उसके उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। जहाँ तक छोटे-छोटे राष्ट्रों का सम्बन्ध था उन्हें भी अपार क्षति उठानी पड़ी। **चैकोस्लोवाकिया** के 2 लाख 50 हजार नागरिक मारे गए। **पोलैण्ड** को 60 लाख व्यक्तियों की बलि देनी

पड़ी। हंगरी के 70 प्रतिशत कारखाने एवं मशीनें युद्ध काल में समाप्त हो गई **युगोस्लाविया, बलकारिया, यूनान** एवं **अल्बानिया** भी आर्थिक संकट में फंस गए।

टिप्पणी

(2) **यूरोपीय प्रभुत्व की समाप्ति–** द्वितीय विश्व युद्ध ने जिस नूतन युग को जन्म दिया वह युग यूरोपीय प्रभुत्व की समाप्ति का युग था। वित्तीय महायुद्ध ने यूरोपीय शक्तियों को इतना झकझोर दिया था कि युद्ध से पूर्व तक **विश्व को अनुशासित करने का दावा करने वाला यूरोप (World Domination Europe)** अब **समस्या प्रधान यूरोप (Problem Europe)** के रूप में सामने आ गया। धुरी राष्ट्रों ने अपना साम्राज्य खो दिया। ब्रिटेन, फ्रांस आदि भी शक्तिहीन हो गए।

(3) **दो महाशक्तियों का उदय–** यूरोप की प्रभुसत्ता विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर क्षीण होते ही नए युग में दो महाशक्तियों का अभ्युदय **हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं रूस यह दो शक्तियां थी।** रूस को युद्ध के अन्त तक विशाल प्रदेश प्राप्त हो चुके थे। वह अपनी सीमाएं पश्चिम में फैला ही चुका था। पोलैण्ड, रूमानिया, हंगरी, बल्गारिया, अल्बानिया एवं चैकोस्लोवाकिया आदि राष्ट्रों की सरकार रूस के मित्र के रूप में सामने आई जापान का पतन हो ही चुका था। **ब्रिटेन आर्थिक रूप से जर्जरित हो गया।** जर्मनी व इटली की शक्ति क्षीण हो गई थी। चीन गृह युद्ध की अग्नि में तप रहा था। अतः रूस का मुकाबला करने वाली एक ही शक्ति बच गई थी। वह शक्ति थी संयुक्त राज्य अमेरिका। विश्व के पूंजीवादी देशों के लिए अमेरिका उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए आशा बन गया था।

(4) **शीत युद्ध का प्रारम्भ–** वित्तीय महायुद्ध में ब्रिटेन, फ्रांस एवं अमेरिका ने रूस के साथ मिलकर धुरी राष्ट्रों का विरोध किया था। इससे ऐसा लगता था कि युद्ध के पश्चात् इस मित्रतापूर्ण व्यवहार से शान्ति की स्थापना होगी। लैंगसम के शब्दों में, **''आशावादी इस बात से निश्चिन्त थे कि भविष्य में शान्ति निश्चित रूप से बनी रहेगी जैसे ही युद्ध समाप्त होगा विभिन्न राज्यों की एकता जो युद्ध के कठिन वर्षों में थी वह शान्ति बनाए रखेगी।''** किन्तु यह आशा उस समय निराधार सिद्ध हुई जब विश्व के रंगमंच पर सोवियत संघ एवं संयुक्त राज्य अमेरिका दो महाशक्तियों के रूप में उभर कर सामने आये। दोनों की विचारधाराएं एक-दूसरे से अलग थीं। अतः दोनों विश्व के दो परस्पर विरोधी खेमों का प्रतिनिधित्व करने लगे। इससे दोनों के मध्य तनावपूर्ण वातावरण उत्पन्न हो गया जिसने **'शीत युद्ध'** को जन्म दिया।

(5) **साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विघटन–** द्वितीय विश्व युद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विघटन भी था। मित्र राष्ट्रों ने धुरी राष्ट्रों के विरोध में केवल स्वतन्त्रता एवं आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के आधार पर युद्ध किया था। अतः युद्ध की समाप्ति के पश्चात् साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विघटन होना स्वाभाविक हो चुका था, क्योंकि युद्ध में मित्र राष्ट्र विजयी हुए थे।

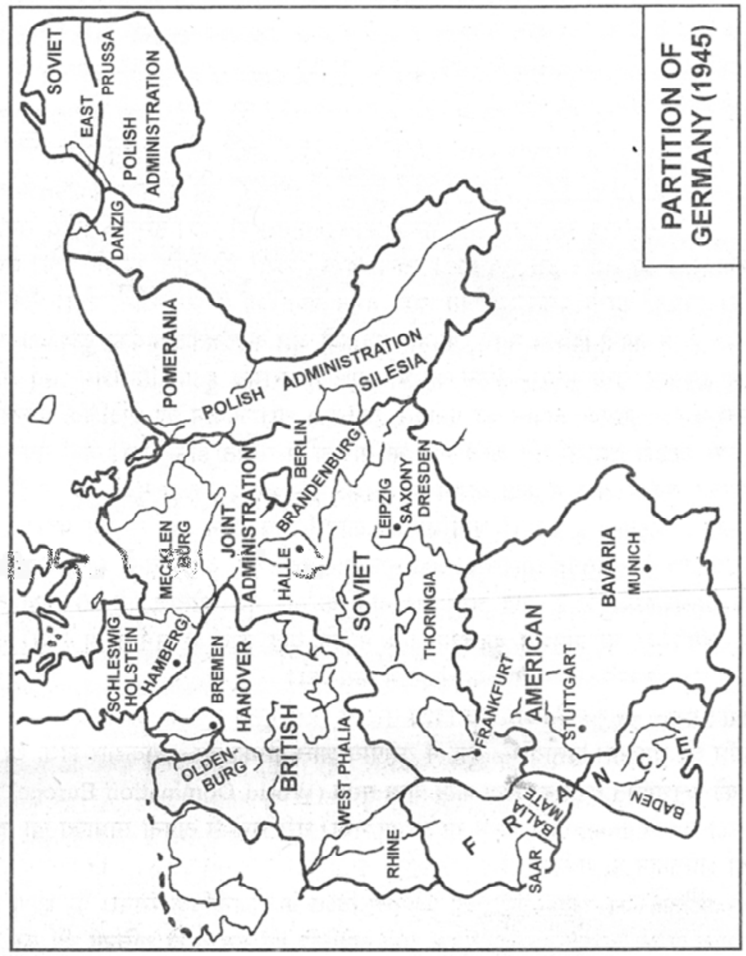

(6) **उपनिवेशों में नव-जागरण**— द्वितीय विश्व युद्ध का गम्भीर प्रभाव उपनिवेशों पर पड़ा जो कि पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों के शिकार थे। जापान ने **'एशिया एशिया वालों के लिए'** का जो नारा अपने हितों की दृष्टि से दिया था, वह अप्रत्यक्ष रूप से भारत एवं चीन जैसे उपनिवेशों के लिए स्वतन्त्रता का प्रतीक बन गया। जापान ने जिस प्रकार पश्चिमी राष्ट्रों की साम्राज्यवादिता का अपने ढंग से विरोध किया था वह एशिया के उपनिवेशों के लिए एक ज्वलन्त प्रतीक था। द्वितीय महायुद्ध तो स्वतन्त्रता एवं आत्मनिर्णय की दुहाई पर धुरी राष्ट्रों के विरोध में ही लड़ा गया था। अतः म्यांमार, भारत एवं चीन जैसे राष्ट्रों में राष्ट्रीयता का संचार होने लगा जिसने उपनिवेश व्यवस्था पर प्रबल आघात किया। 1945 ई. से पूर्व तो विश्व की जनसंख्या का 33 प्रतिशत उपनिवेशों में निवास करता था जबकि आज केवल 4 प्रतिशत ही निवास करता है। यही कारण है कि **चेस्टर बाउल्स** ने लिखा है, **''सम्पूर्ण महाद्वीप (एशिया) पर हुई क्रान्ति के धूएं और अग्नि से उन दिनों का अन्त हो गया, जबकि एशिया के गुलाम लोग किसी पश्चिमी राष्ट्र की दी गई आवाज में नाच उठते थे।''** एशिया एवं अफ्रीका के पराधीन राष्ट्र स्वतन्त्र होने लगे। **स्मिथ** ठीक ही लिखा है, **''अब यह स्पष्ट हो गया कि भविष्य में यूरोपीय राष्ट्रों के सम्बन्ध और गैर यूरोपीय राष्ट्रों के सम्बन्ध सर्वाधिक महत्वपूर्ण होंगे।''**

टिप्पणी

(7) **मानवतावाद**— विश्व युद्ध में कमजोर राष्ट्रों को साम्राज्यवादी शिकंजो का शिकार होना पड़ा था। युद्ध के पूर्व एवं युद्ध काल में अल्पसंख्यकों के अधिकारों को जिस प्रकार कुचला गया था उससे प्रभावित होकर संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवीय अधिकारों का एक घोषणा पत्र प्रकाशित कर मानवता की पवित्रता कायम करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया।

(8) **निःशस्त्रीकरण के प्रयास**— द्वितीय विश्व युद्ध में अणु बम के प्रयोग एवं उससे हुए विनाश लीला ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में निःशस्त्रीकरण का प्रश्न खड़ा कर दिया, परन्तु निःशस्त्रीकरण की दिशा में रूस एवं अमेरिका के मध्य मतभेदों के कारण निःशस्त्रीकरण के लिए किए गए प्रयास कभी सार्थक न हो सके।

(9) **प्रादेशिक संगठन**— शीत युद्ध की स्थिति को देखते हुए साम्यवादी रूस एवं गैरसाम्यवादी अमेरिका ने अपने-अपने प्रभाव की वृद्धि के लिए क्षेत्रीय या प्रादेशिक संगठनों का गठन प्रारंभकर दिया, जिसमें नाटो, वारसा पैक्ट, सीटों एवं ओ. ए. एस. विषेश उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वितीय विश्व युद्ध ने प्रथम महायुद्ध के सदृश्य ही अनेक समस्याएं उत्पन्न कर दीं। यह ठीक है कि इस युद्ध के प्रभाव ने साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी प्रवृत्ति की समाप्ति में योगदान किया दिया और एशिया एवं अफ्रीका में राष्ट्रवाद हिलोरें लेने लगा, परन्तु जिस प्रकार एक नए विश्व का गठन हुआ उसमें दो महाशक्तियों के प्रादुर्भाव ने युद्धकालीन एकता का विघटन कर दिया।

युद्धकालीन एकता का विघटन (End of the War Time Unity)

द्वित्तीय विश्व युद्ध में अमेरिका, ब्रिटेन एवं फ्रांस ने अपनी पुरानी शत्रुता को भुलाकर धुरी राष्ट्रों (जर्मनी, इटली एवं जापान) का डटकर मुकाबला किया था। युद्ध के समय मित्र राष्ट्रों की इस एकता से ऐसा प्रतीत होता था कि युद्ध के पश्चात् शान्ति स्थापित होगी, किन्तु विश्व युद्ध समाप्त होते ही यह आशा सही सिद्ध नहीं हुई। रूस एवं अमेरिका के रूप में दो महाशक्तियों का उदय हुआ। **युद्धकालीन एकता का विघटन हो गया। संक्षेप में इस विघटन के निम्नलिखित कारण हैं:**

(1) **सोवियत संघ की समाजवादी व्यवस्था** — युद्धकालीन एकता के विघटन का महत्वपूर्ण कारण सोवियत संघ में समाजवादी व्यवस्था का विकास था। युद्ध के समय ब्रिटेन, फ्रांस एवं अमेरिका जैसे पूंजीवादी देशों की प्रमुख समस्या धुरी राष्ट्रों का दमन थी। अतः रूस को अपने खेमे में मिलाने के लिए उन्हें रूसी व्यवस्था पर प्रत्यक्षतः विशेष ध्यान नहीं दिया, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वे रूस का इतना दमन करना चाहते थे कि रूसी साम्यवादी व्यवस्था पूंजीवाद के लिए खतरा न बन सके। यही कारण था कि 1941 ई. में जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण करने पर इंग्लैण्ड एवं रूस के बीच हुए समझौते को सुदृढ़ करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। पश्चिमी देशों ने तो इसे **'निषेधात्मक मैत्री'** की संज्ञा दी। रूस के इस अनुरोध को कि युद्ध का द्वितीय मोर्चा फ्रांस में खोला जाना चाहिए, चर्चिल ने यह कहकर खटाई में डालने का प्रयत्न किया कि दूसरा मोर्चा बाल्कान प्रदेश में खुलना चाहिए। स्तालिन के अनुरोध पर बहस 1942 ई. से 1944 ई. तक जारी रही। इस बीच जर्मनी की सेनाओं के लगातार प्रहार रूस पर हो रहे थे। **पूंजीवादी मित्र देश चाहते भी यही थे कि रूस पर जर्मनी**

के इतने प्रहार हो कि रूस पुनः सिर न उठा सके। इस प्रकार पूंजीवादी देशों ने अपने मित्र देश रूस की पीठ में छुरा भौंकने का जो प्रयत्न किया उससे रूस का साशंकित होना स्वाभाविक ही था।

टिप्पणी

(2) **सोवियत संघ का राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति रुख–** पूंजीवादी एवं साम्राज्यवादी शक्तियों के चंगुल से अपने को आजाद करने के लिए एशिया एवं अफ्रीका के विभिन्न उपनिवेशों में जो राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहे थे उसे द्वितीय विश्व युद्ध ने और अधिक भड़का दिया। रूस इस प्रकार के आन्दोलनों का पक्षपाती था, किन्तु ब्रिटेन ने इस प्रकार के आन्दोलनों को कुचलने का भरसक प्रयत्न किया। अतः रूस एवं ब्रिटेन के सम्बन्धों में दरार पड़नी प्रारम्भ हो गई।

(3) **युद्ध काल में रूस के प्रति अविश्वास–** युद्ध काल में रूस के मित्र राष्ट्रों ने सदा ही उसके प्रति अविश्वास की धारणा रखी। 13 अगस्त, 1943 ई. को चर्चिल ने युगोस्लाविया और यूनान में राजवंशों के पुनर्स्थापन की बात कही। मार्शल टीटो द्वारा इस बात का विरोध किए जाने पर चर्चिल ने उसे सहायता देना भी बन्द कर दिया। अब अमेरिका ने जापान पर एँटम बम गिराया तो उसने ब्रिटेन को तो विश्वास में ले लिया, परन्तु रूस को इस विषय में कोई जानकारी तक नहीं दी।

(4) **युद्धोत्तर समस्याओं में मतैक्य न होना–** जैसे ही द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हुआ 5 मार्च, 1946 ई. को चर्चिल ने अमेरिका के फुल्टन (Fulton) नामक स्थान पर सोवियत रूस को **लौह आवरण** (Iron Curtain) की संज्ञा देते हुए अपने भाषण में रूस का अपमान किया। सोवियत रूस जो कि युद्ध काल से ही स्थिति को जाँच एवं परख रहा था, अब अपने लिए एक ऐसी मजबूत आधारशिला खड़ी करना चाहता था जिस पर स्वयं खड़ा होकर गर्व कर सके। उसकी इस भावना को युद्ध के पश्चात् उत्पन्न समस्याओं के समाधान में अमेरिका एवं ब्रिटेन के रूसी विरोधी रुख ने और अधिक मजबूत बना दिया। फारस, टर्की, यूनान एवं जर्मनी की समस्याओं के समाधान के प्रश्न पर रूस का मतैक्य ब्रिटेन व अमेरिका से नहीं था। इसी समय सोवियत रूस को पृथक् कर यूरोप के एक संयुक्त राज्य की स्थापना की बात भी पूंजीवादी देश करने लगे थे। 10 अगस्त, 1945 में एक फ्रांसीसी दैनिक पत्र में प्रकाशित किया कि, **''यदि यूरोप को सोवियत संघ के पंजों से बचाना है तो पश्चिमी देशों को एक हो जाना चाहिए।''**

इस प्रकार युद्ध काल में तथा युद्ध काल के पश्चात् पश्चिमी पूंजीवादी राष्ट्रों द्वारा रूस के प्रति अपनाई गई नीतियों से क्षुब्ध होकर 20 सितम्बर 1945 ई. को सोवियत समाचार पत्र इजवेस्तिया (Izvestia) ने लिखा है, **''पश्चिमी गुट पश्चिम में रूसी विश्वास को समाप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं।''** सन्देह एवं भय के वातावरण में रूस का अलग हो जाना स्वाभाविक ही था। अतः अब विश्व इतिहास का एक नया दौर आरम्भ हुआ जिसे **''शीत युद्ध का दौर''** (Cold War Era) के नाम से जाना जाता है।

5.5 दोनों विश्व युद्ध के मध्य विश्व राजनीति (World Politics Between the Two World Wars)

टिप्पणी

भूमिका (Introduction)

प्रथम विश्व युद्ध लगभग चार वर्ष तीन माह तक चलता रहा था। 28 जुलाई, 1914 ई. को सर्बिया द्वारा आस्ट्रिया एवं हंगरी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा से प्रारम्भ हुआ तथा 11 नवम्बर, 1918 ई. को समाप्त हुआ। मित्र राष्ट्रों ने 1919 ई. में जर्मनी से वार्साय (Versailles) की सन्धि (28 जून), आस्ट्रिया से सेण्ट जर्मेन की सन्धि (10 सितम्बर), बल्गारिया से न्यूइली (Neuilly) की सन्धि (27 नवम्बर) तथा 1920 ई. में हंगरी से त्रिआनो (Trianon) की सन्धि (4 जून) की, किन्तु तुर्की के साथ अन्तिम शान्ति सन्धि पर 23 जुलाई, 1923 ई. को लौसने (Lousanne) में हस्ताक्षर हुए। यह सन्धि 6 अगस्त, 1924 ई. को कार्यान्वित हुई तथा इसके पश्चात् ही सम्पूर्ण संसार में पुनः विधिवत् शान्ति की स्थापना हो सकी। इन समस्त सन्धियों तथा इनकें कारण की गई अनेक अन्य सन्धियों को शान्ति समझौते के नाम से जाना जाता है। **प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य की अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इस समझौते का ही परिणाम थीं।**

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड अच्छी प्रकार से समझ गया था कि विश्व में शान्ति बनाए रखने में वह अकेला असमर्थ था तथा यूरोपीय संघ भी इस कार्य में विशेष योगदान नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त यूरोपीय देशों में कुछ ऐसे भी थे जो कि इंग्लैण्ड में शान्ति बनाएं रखने के उद्देश्य से कोई सहयोग देने को तैयार न थे। विश्व युद्ध ने आर्थिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किए थे, इसी कारण से 1919 ई. के पश्चात् इंग्लैण्ड निरन्तर राष्ट्र संघ के माध्यम से उन सभी कार्यों को पूर्ण करने में लग गया था, जिनका उसने स्वयं सैद्धान्तिक रूप से पालन किया था। यूरोप में प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड की नीति का आर्थिक पहलू भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यूरोप में अर्थव्यवस्था निरन्तर खराब होती जा रही थी जिससे बेरोजगारी बढ़ रही थी तथा मूल्यों में भारी कमी हो रही थी। **1933 ई. में एक आर्थिक अधिवेशन बुलाया भी गया, किन्तु उसका कोई विशेष परिणाम नहीं हुआ।** इंग्लैण्ड निरन्तर यूरोप व जर्मनी की अर्थव्यवस्था को सुधारने का प्रयास कर रहा था। प्रथम विश्व युद्ध के समय यद्यपि फ्रांस तथा रूस इंग्लैण्ड के मित्र रहे थे तथा जर्मनी शत्रु देश था तथापि इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति जर्मनी के प्रति अनुदार नहीं थी।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति तथा द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने के मध्य के बीस वर्षों में इंग्लैण्ड की नीति में कोई विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। यद्यपि अनेक बार मन्त्रिमण्डल बदले, परन्तु वैदेशिक नीति एक समान बनी रही। अपवाद के रूप में इतना अवश्य हुआ कि श्रमिक मन्त्रिमण्डल के समय (प्रथम बार 1924 ई. में कुछ माह के लिए तथा दूसरी बार 1929 ई. से 1931 ई. तक) रूस की बोल्शेविक सरकार (Bolsheviks) से कुछ अधिक निकटतम सम्बन्धों की स्थापना की गई अन्यथा नीति में कोई परिवर्तन नहीं आया। इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति के अन्तर्गत इस प्रकार कार्य किए गए :

इंग्लैण्ड के फ्रांस साथ सम्बन्ध (Relations of England with France)

प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी को परास्त करने के पश्चात् मित्र राष्ट्रों ने वार्साय की अपमानजनक सन्धि करने के लिए उसे विवश किया था, अतः मित्र राष्ट्रों को भय था कि भविष्य में जर्मनी शक्तिशाली बनकर अपने अपमान का बदला लेने का प्रयत्न करेगा। सबसे अधिक भय फ्रांस को था क्योंकि उसकी सीमा जर्मनी से मिली हुई थी। इसी कारण उसने इंग्लैण्ड तथा अमेरिका से सुरक्षा की गारण्टी मांगी थी। **दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने मार्च, 1919 ई. में उसे यह गारण्टी प्रदान की थी, किन्तु कुछ समय पश्चात् अमेरिका ने अपने द्वारा दी गई इस गारण्टी को वापस ले लिया।** इंग्लैण्ड फ्रांस को अकेले गारण्टी देने को तैयार न था। अतः उसने भी अपनी गारण्टी वापस ले ली परिणामस्वरुप फ्रांस और इंग्लैण्ड के सम्बन्धों में कटुता आने लगी।

लॉयड जार्ज (Lloyd George) ने जर्मनी के आक्रमण के विरुद्ध इन परिस्थितियों में भी दिसम्बर, 1921 ई. में फ्रांस को सहायता देने का प्रस्ताव रखा, परन्तु फ्रांस ने इस प्रस्ताव के साथ ही कुछ नई शर्ते रखीं, जिसमें वह अपने मित्र पोलैण्ड की सहायता करवाना भी चाहता था। इसके अतिरिक्त वार्साय की सन्धि की किसी भी धारा को तोड़ना आक्रामक कार्यवाही समझी जाए और दोनों देशों के सेनाध्यक्ष इस हेतु एक समझौता करें। इस प्रकार की शर्तों को स्वीकार करने के लिए लॉयड जार्ज तैयार न हुआ। **अतएवं द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने तक कोई समझौता न हो सका।** यद्यपि 1923 ई. के फ्रांसीसी कर्नल रेक्विन द्वारा तैयार किया गया' **'ड्राफ्ट ट्रीटी ऑफ म्युचुअल असिस्टेंस'** (Draft Treaty of Mutual Assistance) तथा जेनेवा प्रोटोकल के द्वारा दोनों देशों में समझौता सम्पन्न किए जाने के प्रयत्न किए गए, किन्तु ये फलदायी प्रमाणित न हो सके। 1928 ई. में किलोगब्रिया समझौते की अनेक शर्तों को इंग्लैण्ड द्वारा स्वीकार किए जाने से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि इंग्लैण्ड फ्रांस से अपने सम्बन्ध मधुर तो रखना चाहता था पर स्वयं को किसी प्रकार की गारण्टी के कारण भविष्य में किसी प्रकार के युद्ध में उलझाने के पक्ष में न था।

इंग्लैण्ड के जर्मनी से सम्बन्ध (Relations of England with Germany)

पेरिस की सन्धि में यद्यपि जर्मनी को विश्वयुद्ध के लिए दोषी ठहराया गया था, परन्तु इंग्लैण्ड के दृष्टिकोण में निरन्तर परिवर्तन हो रहा था। इंग्लैण्ड यह नहीं चाहता था कि फ्रांस यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली देश हो जाए, साथ ही साथ उसे साम्यवादी रूस से भी भय था, अतः इंग्लैण्ड का जर्मनी के प्रति व्यवहार मृदु होता जा रहा था। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व जर्मनी इंग्लैण्ड के सामान का प्रमुख ग्राहक था अतः इंग्लैण्ड जर्मनी की आर्थिक स्थिति को सुधारकर उसके साथ पुनः व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। **लायड जार्ज** का विचार था, **''स्वतन्त्र, सन्तुष्ट तथा समृद्ध जर्मनी सभ्यता के लिए आवश्यक है।''** अतः वार्साय की सन्धि की शर्तों को इंग्लैण्ड जर्मनी पर कठोरतापूर्वक लगाना नहीं चाहता था। इंग्लैण्ड जर्मनी के क्रमिक शस्त्रीकरण के पक्ष में भी था। इंग्लैण्ड राष्ट्रसंघ के संविधान में परिवर्तन करके उसे जर्मनी के लिए अधिक कठोर बनाने का विरोधी था। इंग्लैण्ड जर्मनी के हर्जाने की धनराशि को भी कम करके किसी प्रकार की कठोरता के बिना वसूलने के पक्ष में था।

1922 ई. में जर्मनी ने अपनी आर्थिक स्थिति को शोचनीय बताते हुए क्षतिपूर्ति करने से इन्कार कर दिया। फ्रांस ने जर्मनी पर जानबूझकर क्षतिपूर्ति न करने का दोषरोपण किया। अतः 1924 ई. में फ्रांस ने जर्मनी के रूर प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इंग्लैण्ड ने फ्रांस के इस कदम का घोर विरोध किया। 1925 ई. में लोकार्नो समझोते के द्वारा इंग्लैण्ड ने जर्मनी की पश्चिमी सीमा को स्वीकार कर लिया, किन्तु पूर्वी सीमा के लिए कोई आश्वासन नहीं दिया। फ्रांस जर्मनी की पूर्वी सीमा के विषय में भी इंग्लैण्ड से आश्वासन चाहता था, किन्तु **जर्मनी के प्रधानमन्त्री स्ट्रेसमन की उदार नीति के कारण जर्मनी और मित्र राष्ट्रों के सम्बन्धों में पहले के समान कठोरता न रही।**

1933 ई. में हिटलर के उदय के पश्चात् इंग्लैण्ड ने जर्मनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई। इंग्लैण्ड द्वारा इस प्रकार की नीति अपनाने के कुछ विशेष कारण थे। इंग्लैण्ड साम्यवादी रूस से भयभीत था, अतः वह तानाशाही जर्मनी, इटली और जापान को प्रोत्साहित कर रूस के प्रभाव और विस्तार को रोकना चाहता था। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड, रूस, जर्मनी और जापान को आपस में लड़ाकर निर्बल बनाना चाहता था ताकि यूरोप में शक्ति सन्तुलन बना रहे। उस समय इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति भी असन्तोषजनक थी, अतः वह युद्ध से बचना चाहता था। इंग्लैण्ड के द्वारा तुष्टीकरण की नीति अपनाने के कारण उसने जर्मनी के अनेक आपत्तिजनक कार्यों का भी विरोध न किया। **जर्मनी का हिटलर द्वारा शस्त्रीकरण करना, वार्साय सन्धि को अस्वीकार करना, लोकानों समझौते को तोड़कर 1936 ई. में राइन प्रदेश में अपनी सेनाएं भेजना, ऐसे ही कुछ कार्य थे।** इसके अतिरिक्त 1936 ई. में स्पेन में हुए गृहयुद्ध में हिटलर ने जनरल फ्रेंको को महत्वपूर्ण सहायता पहूँचायी। 1938 ई. में हिटलर ने आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया। 1939 ई. चैकोस्लोवाकिया पर भी जर्मनी ने अधिकार कर लिया। 1939 ई. में ही हिटलर ने निथुआनिया को डरा धमकाकर उससे मेमेल प्राप्त कर लिया।

इंग्लैण्ड के जर्मनी के प्रति इस तुष्टीकरण की नीति के परिणाम विनाशकारी प्रमाणित हुए। इंग्लैण्ड की इस प्रकार की नीति ने हिटलर को और अधिक प्रोत्साहित किया, सामूहिक सुरक्षा को निर्बल बनाया तथा फ्रांस एवं सम्पूर्ण विश्व के लिए संकट उत्पन्न कर दिया। इंग्लैण्ड ने इन नए तानाशाही राज्यों के वास्तविक रूप को समझने में भूल की थी। **उसका विचार था कि कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात् वे शान्त हो जाएंगे।** इंग्लैण्ड यह न समझ सका कि इन राज्यों की साम्राज्य-लिप्सा अनन्त है। अन्त में, 1939 ई. में इंग्लैण्ड नें अपनी इस भूल को स्वीकार किया। एक विशेष महत्वपूर्ण बात यह है कि हिटलर ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंग्रेजी-फ्रांसीसी और अंग्रेजी-रूसी मतभेदों का पूर्ण लाभ उठाया। उस समय यदि इंग्लैण्ड, रूस तथा फ्रांस अपने पारस्परिक मतभेदों को भूलकर जर्मनी के विरुद्ध तत्काल सामूहिक कार्यवाही करते तो सम्भवतः हिटलर की आक्रमणात्मक नीति व महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाया जा सकता था।

इंग्लैण्ड के इटली से सम्बन्ध (Relations of England with Italy)

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् कुछ समय तक इटली व इंग्लैण्ड के सम्बन्ध सामान्य रहे। 1925 ई. में दोनों देशों ने लोकार्नो समझौते (Locarno Pact) की रक्षा का आश्वासन

दिया। 1935 ई. में भी स्ट्रेसा सम्मेलन में इंग्लैण्ड और इटली दोनों ने जर्मनी के शस्त्रीकरण के प्रति घोर विरोध किया था, किन्तु अबीसीनिया (Abyssinia) के प्रश्न पर दोनों के सम्बन्ध कटु हो गए। 1935 ई. में जब इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण करके उस पर अधिकार करना चाहा तो इंग्लैण्ड द्वारा इटली के इस कार्य का विरोध किया गया। इंग्लैण्ड की इस नीति से इटली का झुकाव जर्मनी की ओर होने लगा। इंग्लैण्ड की अबीसीनिया के सम्बन्ध में इटली के प्रति नीति अनिश्चित एवं अस्पष्ट **थी। प्रारम्भ में उसने इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्धों** (economic sanctions) **का समर्थन किया, किन्तु बाद में इस भय से कि कहीं इटली जर्मनी से मिल न जाए, उसने इटली के प्रति भी तुष्टीकरण की नीति का सहारा लिया और होरलायल योजना के द्वारा इटली को अबीसीनिया का अधिकांश प्रदेश देने की बात की, किन्तु इस योजना के कार्यान्वित करने से पूर्व ही यह योजना प्रकट हो गई।** इंग्लैण्ड की जनता के द्वारा इसका घोर विरोध किया गया। परिणामस्वरुप, इंग्लैण्ड के तत्कालीन वैदेशिक मन्त्री सैमुअल होर को त्याग पत्र देने के लिए विवश होना पड़ा। अबीसीनिया के विषय में इंग्लैण्ड की नीति नितान्त असफल प्रमाणित हुई।

अबीसीनिया की घटना के पश्चात् इंग्लैंण्ड ने इटली से मधुर सम्बन्ध बनाने के लिए अत्यन्त प्रयास किए। 1937 ई. में इटली व इंग्लैण्ड ने भूमध्य सागर में यथास्थिति (status quo) बनाए रखने की घोषणा की। 1938 ई. में दोनों देशों के मध्य पुनः एक समझौता किया गया। इस इसझौते के द्वारा इंग्लैण्ड ने अबीसीनिया पर इटली का आधिपत्य स्वीकार किया। **इन सब प्रयासों के उपरान्त भी इंग्लैण्ड और इटली के सम्बन्ध मधुर न हो सके।** जनवरी, 1939 ई. में चैम्बरलैन तथा हैलीफाक्स पारस्पारिक सम्बन्ध दृढ़ करने हेतु रोम गए, परन्तु उन्हें विशेष सफलता न मिल सकी, क्योंकि इटली तानाशाही दल में शामिल हो चुका था।

इंग्लैण्ड के रूस से सम्बन्ध (Relations of England with Russia)

प्रथम विश्व युद्ध समाप्त होने से पूर्व ही 1917 ई. में रूस में हुई बोल्शेविक क्रान्ति के कारण वहाँ सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन के युग का समारम्भ हुआ था। रूस ने स्वयं को युद्ध से अलग कर लिया तथा 3 मार्च, 1918 ई. को जर्मनी से ब्रेस्ट लिटोवस्क (Breast Litovsk) की सन्धि की। रूस के इस कार्य को इंग्लैण्ड ने विश्वासघात समझा। 1919-20 ई. में इंग्लैण्ड ने रूसी आक्रमण के विरुद्ध एस्टोनिया में अपनी सेनाएं भेजीं। इन सेनाओं ने रूसी सेनाओं से युद्ध भी किया।

इंग्लैण्ड यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से रूस से कोई सन्धि करने के पक्ष में न था, किन्तु 31 मार्च, 1921 ई. को उसने रूस की बोल्शेविक सरकार के साथ व्यापारिक समझौता कर लिया जिसमें रूस ने इंग्लैण्ड को उसके विरुद्ध प्रचार न करने का आश्वासन दिया । इस समझौते का यद्यपि कोई स्पष्ट कारण तो न था, परन्तु इंग्लैण्ड में संसदीय प्रणाली तथा उदारवादी नीति के समर्थक होने के कारण ही वह परिवर्तन सम्भव हुआ। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड की सम्पन्नता उसके व्यापार पर ही निर्भर करती थी अतः उसके लिए स्वाभविक ही था कि अपना आर्थिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए बोल्शेविकों द्वारा बढ़ाए गए मित्रता के हाथ को अस्वीकार न करे।

1926 ई. में इंग्लैण्ड में हुई एक प्रमुख हड़ताल के कारण पुनः इंग्लैण्ड व रूस के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो गया क्योंकि रूस ने इस हड़ताल को प्रोत्साहन दिया था। 1929 ई. में इंग्लैण्ड में मजदूर दल की सरकार के बनने से एक बार फिर अंग्रेजी-रूसी सम्बन्धों में सुधार हुआ।

तानाशाही जर्मनी व जापान के उदय से रूस पश्चिमी देशों एवं राष्ट्र संघ की ओर झुकने लगा । जापान के कारण मंचूरिया, ब्लाडीवोस्टक और पूर्वी साइबेरिया के लिए संकट उत्पन्न हो गया था। रूस राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया और राष्ट्र संघ के नेतृत्व तथा पश्चिमी देशों के साथ मिलकर तानाशाही सरकारों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने के प्रस्ताव रखे, परन्तु पश्चिमी देशों, विशेषकर इंग्लैण्ड, ने रूस की इस योजना को अपना सहयोग न दिया क्योंकि साम्यवादी रूस को इंग्लैण्ड अपने लिए खतरा समझता था। उसे नियन्त्रित रखने के लिए वह जर्मनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति का पालन कर रहा था। अतः रूस 1939 ई. तक भली-भाँति समझ चुका था कि पश्चिमी राष्ट्र विशेषतया इंग्लैण्ड उसके साथ मिलकर कार्य करना नहीं चाहते, अतः वह जर्मनी की और झुकने लगा।

यद्यपि बाद में जर्मनी के बढ़ते हुए खतरे को देखकर इंग्लैण्ड ने रूस के साथ मित्रता करना चाहा तथा पारस्पारिक वार्तालाप के लिए एक शिष्टमण्डल रूस भेजा, किन्तु इस शिष्टमण्डल में कोई उच्च पदाधिकारी न था। लॉयड जार्ज ने अंग्रेजी सरकार के इस व्यवहार की कटु आलोचना की। इंग्लैण्ड, रूस को जर्मनी के विरुद्ध करके स्वयं उत्तरदायित्वों से बचना चाहता था, अतः अंग्रेजी-रूसी वार्ता का असफल हो जाना अस्वाभाविक नहीं था। इंग्लैण्ड की नीति को समझकर 23 अगस्त, 1939 ई. को रूस ने जर्मनी के साथ एक अनाक्रमण समझौते पर हस्ताक्षर कर लिए।

इंग्लैण्ड के संयुक्त राज्य अमेरिका से सम्बन्ध
(Relations of England with U.S.A.)

अमेरिका ने उसी समय यूरोपीय तथा एशियाई राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था जिस समय प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह युद्ध में भाग लेना नहीं चाहता था, किन्तु जर्मनी द्वारा विवश किए जाने पर उसे युद्ध में भाग लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसके पश्चात् विश्व राजनीति से पृथक् रहना नितान्त असम्भव था। युद्ध की समाप्ति पर हुई पेरिस वार्ता में अमेरिका के राष्ट्रपति बुडरो विल्सन ने स्वयं भाग लिया था। अमेरिका तथा इंग्लैण्ड ने फ्रांस को उसकी सुरक्षा की गारण्टी भी दी थी, किन्तु अमेरिका की सीनेट द्वारा पेरिस की सम्पूर्ण सन्धियों को अस्वीकार कर दिए जाने के कारण यह धारा कार्यान्वित नहीं की जा सकी। **इंग्लैण्ड इस सन्धि में अमेरिका का सहयोगी था, किन्तु अमेरिका के द्वारा अस्वीकार किए जाने पर इंग्लैण्ड ने भी इस सन्धि की शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया।** इंग्लैण्ड की भविष्य में नीति भी अमेरिका की नीति से प्रभावित थी। इंग्लैण्ड जर्मनी से क्षतिपूर्ति की राशि बलपूर्वक वसूल करना नहीं चाहता था, परन्तु फिर भी वह इतना अवश्य चाहता था कि अमेरिका यदि उससे ऋण वापस न ले तब ही उसके लिए ऐसा करना सम्भव था, सम्भवतः इसी कारण से इंग्लैण्ड ने जर्मनी के अधिकृत प्रदेश ताइवान पर अधिकार बनाए रखा था।

अमेरिका यूरोपीय राजनीति से स्वयं को अलग रखना चाहता था, किन्तु फिर भी जापान की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति से यह भयभीत था अतः सुदूरपूर्व की समस्याओं में इंग्लैण्ड का साथ देने को उत्सुक था। इस क्षेत्र में दोनों देशों के पारस्पारिक सहयोग करने में एक विशेश समस्या यह थी कि इंग्लैण्ड और जापान के मध्य एक सन्धि पहले से ही चल रही थी (जो 1922 ई. में समाप्त होने वाली थी)। इंग्लैण्ड इस सन्धि की अवधि की समाप्ति के पश्चात् अमेरिका को भी इसमें सम्मिलित करने के लिए तैयार **था। इसी उद्देश्य से वाशिंग्टन में 12 नवम्बर, 1921 ई. को एक सम्मेलन प्रारम्भ हुआ जो 6 फरवरी, 1922 ई. तक चलता रहा जिसके अन्तर्गत अनेक सन्धियाँ हुई।**

इंग्लैण्ड और निःशस्त्रीकरण (Disarmament)

इंग्लैण्ड निःशस्त्रीकरण किए जाने के पक्ष में था। उसने पेरिस समझौते के पश्चात् अपना शस्त्रीकरण सीमित कर दिया था तथा 1930 ई. में लन्दन में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन भी बुलाया, परन्तु फ्रांस तथा जर्मनी के पारस्पारिक विरोध के कारण वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। उसने अमेरिका और जापान के साथ मिलकर कुछ निर्णय किए जिनके अनुसार इंग्लैण्ड ने पाँच, अमेरिका ने तीन और जापान ने एक युद्धपोत नष्ट कर दिया तथा प्रत्येक ने अपने-अपने युद्धपोतों एवं पनडुब्बियों को नियन्त्रित करने का आश्वासन दिया।

1933 ई. में इंग्लैण्ड ने फ्रांस, जर्मनी और इटली के साथ मिलकर एक समझौता किया जिसे चार देशों की सन्धि (Four Power Pact) **कहा जाता है।** इस समझौते का उद्देश्य शान्ति बनाए रखना तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करना था।

इंग्लैण्ड और मध्य-पूर्व (England and Central-East)

प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की ने केन्द्रीय शक्तियों का साथ दिया था, अतः इंग्लैण्ड तुर्की के प्रभाव को कम करना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इंग्लैण्ड ने अरब राज्यों का तुर्की के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ करा दिया। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर हुई पेरिस वार्ता के समय तुर्की से अरब राष्ट्रों को पृथक् कर दिया गया था, परन्तु उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता न देकर आदेश व्यवस्था (mandatory system) में रख दिया गया था। **इसी योजना के अन्तर्गत इराक, फिलिस्तीन** (Palestine) **तथा ट्रांसजोर्डन के शासन चलाने का कार्य सौंपा गया।** अतः अरब जनता का इंग्लैण्ड के प्रति रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था क्योंकि अब ये राज्य पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते थे। कुछ समय पश्चात् इराक और ट्रांसजोईन को स्वतन्त्र कर दिया गया, किन्तु फिलिस्तीन पूर्ववत् इंग्लैण्ड के अधीन रहा।

इंग्लैण्ड के मिस्त्र से सम्बन्ध (Relations of England with Egypt)

मिस्त्र को भी प्रथम विश्व युद्ध के समय इंग्लैण्ड ने अपने संरक्षण में ले लिया था तथा तत्कालीन खदीब को हटाकर सुल्तान अहमद फऊद को मिस्त्र के सिंहासन पर बैठाया था। इससे रूष्ट होकर मिश्रवासियों ने जगलुलपाशा के नेतृत्व में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरुप, 1922 ई. में मिस्त्र को आंशिक स्वतन्त्रता देने के लिए इंग्लैण्ड को बाध्य होना पड़ा। मिस्त्र पर से इंग्लैण्ड का संरक्षण समाप्त हो गया और सुल्तान

अहमदवाफ को मिस्त्र का प्रथम सुल्तान घोषित किया गया। **मिस्त्र पर केवल चार विषयों में अभी भी इंग्लैण्ड का संरक्षण बना रहा। ये विषय थे – स्वेज की सुरक्षा, विदेशी आक्रमण से मिस्त्र की रक्षा, मिस्त्र में विदेशियों के हितों की रक्षा तथा सूडान पर अंग्रेजी नियन्त्रण।** 1923 ई. के चुनावों के पश्चात् जगलुलपाशा मिस्त्र का प्रधानमन्त्री बना। 1927 ई. में जगलुलपाशा की मृत्यु के पश्चात् नहसपाशा वफत प्रधानमन्त्री बना। 1936 ई. में इंग्लैण्ड ने सुल्तान फारुक से सन्धि करके मिस्त्र को प्रभुत्व सम्पन्न राज्य स्वीकार किया।

इंग्लैण्ड और डार्डेनेलीज की समस्या (England and Dardenelles Problem)

डार्डेनेलीज का जलडमरू मध्य एशिया तथा यूरोप के मध्य स्थित होने के कारण व्यापक महत्व रखता है। इंग्लैण्ड किसी भी देश के युद्ध-पोतों द्वारा इसका प्रयोग किया जाना पसन्द नहीं करता था। युद्धोपरान्त इस क्षेत्र का निःशस्त्रीकरण कर दिया गया तथा इसके नियन्त्रण का कार्यभार एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन को सौंपा गया। तुर्की से की गई लोसाने की सन्धि में इसी सिद्धान्त का पालन करते हुए जहाजरानी के लिए सभी देशों की सुविधाएं इस प्रदेश में दी गई, परन्तु **1936 ई. में तुर्की के अनुरोध पर मौंट्रयू** (Montreux) **में एक सम्मेलन बुलाया गया।** जिसमें डार्डेनेलीज का नियन्त्रण तुर्की को सौंप दिया गया तथा उसे वहाँ पर सेना रखने तथा युद्धकाल में उस मार्ग को बन्द करने का अधिकार दिया गया।

चैकोस्लोवाकिया (Czechoslovakia)

हिटलर चैकोस्लोवाकिया पर अधिकार करने के लिए उत्सुक था। 28 मार्च, 1938 ई. को बर्लिन में एक गुप्त सभा हुई जिसमें हिटलर, हैस, रिबिन ट्रोप तथा चैकोस्लोवाकिया की सूडेटन जर्मन दल के नेताओं ने भाग लिया। **इस सभा में यह निर्णय लिया गया था कि सूडेटन जर्मन नेता चैकोस्लोवाकिया की सरकार से वार्तालाप करेंगे तथा उनके सम्मुख ऐसी मांगें रखें जिनको वह स्वीकार न करें।** जिस समय यह सूचना इंग्लैण्ड पहुँची तब भी चेतावनी देने के अतिरिक्त अन्य कुछ इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों ने नहीं किया। चैकोस्लोवाक सरकार ने सूडेटन नेताओं के प्रयत्नों के प्रति कठोर रूख अपनाया। तब चैम्बरलेन ने इस समस्या के समाधान हेतु फ्रांस के प्रधानमन्त्री डलेडियर से भेंट की। दोनों नेताओं ने चैकोस्लोवाकिया के विभाजन की एक योजना तैयार की, किन्तु चैकोस्लोवाकिया उसे मानने को तैयार न था। मुसोलिनी के प्रयत्नों के परिणामस्वरुप म्यूनिख में एक सभा हुई जिसके द्वारा बोहेमिया का एक विशाल भाग जर्मनी को दे दिया गया। इंग्लैण्ड में इस पर पूर्ण सन्तोष व्यक्त किया गया। चैम्बरलैन 30 दिसम्बर, 1938 ई. को इंग्लैण्ड लौटा तो उसका डिजरैली के समान (1878 ई. में बर्लिन से लौटने पर) भव्य स्वागत हुआ। **संयुक्त राज्य, कुछ जर्मन लोग ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व ने नेबिल चैम्बरलैन का महान् शान्ति संस्थापक के रूप में जय-जयकार किया।''**

इतिहास साक्षी है कि इंग्लैण्ड की इस प्रकार की नीति नितान्त असंगत थी। तानाशाही राज्यों की आकांक्षाओं को नियन्त्रित करने के लिए तुष्टीकरण की नीति का पालन करना इंग्लैण्ड की एक भूल थी। **इंग्लैण्ड की इस नीति की असफलता शीघ्र ही प्रदर्शित हो गई क्योंकि हिटलर ने मार्च 1939 ई. के म्यूनिख समझौते को भंग करके प्राग पर आक्रमण किया और बोहेमिया तथा मुराविया**

पर अधिकार कर लिया। शीघ्र ही हिटलर ने मेमेल (Poland) पर भी अधिकार कर लिया। हिटलर अब केवल युद्ध का बहाना खोज़ रहा था और शीघ्र ही उसने 1 सितम्बर, 1939 ई. को पोलैण्ड पर आक्रमण करके युद्ध प्रारम्भ कर दिया। फलतः 3 सितम्बर को इंग्लैण्ड ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी क्योंकि इंग्लैण्ड इस समय से पूर्व ही पोलैण्ड, रूमानिया तथा इटली से समझौते कर चुका था। **इंग्लैण्ड 1919 ई. में स्थापित की गई शान्ति को बनाए रखने में सफल न हो सका और यही कारण था कि उसे बीस वर्षो उपरान्त उस अफसलता के कारण युद्ध लड़ना पड़ा।**

यहाँ पर यह विचारणीय है कि क्या कारण था कि इंग्लैण्ड निरन्तर तुष्टीकरण की नीति का पालन करता रहा और तानाशाहों को इस बात की सूचना न दे सका कि शान्ति की स्थापना के लिए इंग्लैण्ड बिना किया संकोच के युद्ध भी कर सकता है। इंग्लैण्ड की इस नीति का यह अर्थ कदापि नहीं था कि इंग्लैण्ड के राजनीतिक क्षितिज में दूरदर्शी राजनीतिज्ञों की कमी थी। लायॅड जार्ज ने इटली द्वारा अबीसीनिया पर आक्रमण के समय ही कहा था, **''नीति से पहला स्थान शक्ति का है जिसको मन्त्रिमण्डल ने भुला दिया है।''** उस समय प्रजातन्त्रीय सरकारों को मिलाकर तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का शक्ति से सामना करना चाहिए था, परन्तु वह निर्विवाद सत्य है कि उस समय इंग्लैण्ड के नागरिकों की विचारधारा युद्ध विरोधी थी। इंग्लैण्ड में कोई भी व्यक्ति युद्ध नहीं चाहता था। इसी कारण इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञ प्रत्येक संकट का सामना करते हुए भी युद्ध को टालने का प्रयत्न करते रहे। **इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड को जर्मनी से सहनुभूति भी थी। इसका प्रमुख कारण कुछ जर्मन राजनीतिज्ञों के द्वारा इंग्लैण्ड का विश्वास प्राप्त कर लिया जाना था, किन्तु इस प्रकार की उदारवादी वैदेशिक नीति से इंग्लैण्ड की दुर्बलता ही प्रकट हुई तथा सम्पूर्ण विश्व को द्वितीय विश्व युद्ध के कारण हानि उठानी पड़ी।**

दो विश्व युद्धों के मध्य आर्थिक संकट (Economic Depression between the Two World Wars)

नैपोलियन के युद्धों के कारण यूरोप की जनता ने जितने कष्ट सहे थे उससे कहीं अधिक प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् उसे सहने पड़े। विश्व युद्ध में लगभग तीस लाख व्यक्तियों की जानें गई थीं तथा अपार धन-सम्पत्ति की हानि हुई थी। इस विश्व युद्ध के कारण इंग्लैण्ड पर ही राष्ट्रीय ऋण 65 करोड़ 10 लाख से बढ़कर लगभग 7 अरब 83 करोड़ 10 लाख हो गया था। **विश्व में प्रत्येक देश की स्थिति लगभग इसी प्रकार की थी और इससे यूरोप के देशों की आर्थिक विपन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है।** रूस में आर्थिक दुर्व्यवस्था को समाप्त करने के लिए जनता ने क्रान्ति कर दी। जार का निरंकुश शासन समाप्त कर दिया गया तथा पूंजीवादी व्यवस्था का भी अन्त हुआ। जर्मनी तथा इटली में राजतन्त्र को समाप्त कर हिटलर तथा मुसोलिनी के नेतृत्व में तानाशाही स्थापित की गई, क्योंकि इन नेताओं ने जनता को सुख, समृद्धि तथा शान्ति देने का वचन दिया था। **जनता आर्थिक संकट से इतनी त्रस्त हो गई थी कि अपना भला-बुरा भूलकर किसी भी मूल्य पर इससे निकलना चाहती थी।** तुर्की में भी धार्मिक खलीफा की गद्दी से उतारकर तानाशाह कमालपाशा के हाथों में शक्ति सौंपी गई।

प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व इंग्लैण्ड सम्भवतः विश्व का सर्वाधिक धनी एवं समृद्धिशाली देश था। प्रथम विश्व युद्ध के समय इंग्लैण्ड के सम्मान व आर्थिक स्थिति को गहरी ठेस लगी। इंग्लैण्ड की सरकार को पहली बार विशाल पैमाने पर राष्ट्र के आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप करना पड़ा ताकि उत्पादन युद्ध की आवश्यकतानुसार होता **रहे। 'अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्णमान'** (International Gold Standard) की नीति को त्यागकर कागजी मुद्रा को प्रोत्साहन दिया गया जबकि उक्त नीति के आधार पर ही इंग्लैण्ड के अन्य देशों से आर्थिक सम्बन्ध थे तथा इसका संचालन लन्दन के प्रमुख व्यापारियों द्वारा किया जाता था। यद्यपि इंग्लैण्ड का आर्थिक न्हास विक्टोरिया युग से ही प्रारम्भ हो गया था, किन्तु फिर भी उक्त नीति के त्यागने से पूर्व इंग्लैण्ड की स्थिति पर्याप्त सुदृढ़ थी। **'अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्णस्तर'** की नीति को त्यागने अथवा प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड में आर्थिक मन्दी, असन्तोष और हड़तालों का युग प्रारम्भ हुआ। इंग्लैण्ड के अधीन देशों में भी असन्तोष की भावना निरन्तर उग्र होती गई तथा वे स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करने लगे जिससे स्थिति और भी खराब हो गई।

1924 ई. में इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री रैम्जे मैक्डोनल्ड तथा फ्रांस के प्रधानमन्त्री एडवर्ड हेरिया की सम्मति से अमेरिका के साम्राज्यवादियों ने जर्मनी में डॉलर ढ़ालना प्रारम्भ किया। परिणामस्वरुप यूरोप का पूंजीवाद पुनः शक्तिशाली हो गया। पश्चिमी तथा मध्य यूरोप के देशों की स्थिति में सुधार हुआ। **प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् उत्पन्न हुई आर्थिक मन्दी समाप्त हो गई।** कारखाने, जो बन्द हो गए थे, पुनः उत्पादन करने लगे। यद्यपि स्थिति में यह सुधार अत्यन्त क्षणिक था, किन्तु इसका जोरदार प्रचार किया गया। प्रचार में कहा गया कि पूंजीवाद ही सत्य है तथा पूंजीवाद ने बेरोजगारी, गरीबी व आर्थिक संकट पर विजय प्राप्त कर ली है। 11 अगस्त, 1928 को अमेरिका के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार **हर्बर्ट हूबर** ने कहा, **''मुसीबत के अर्थ में बेकारी आखिरी बार गायब हो रही है, आज हम अमेरिका में गरीबी पर अन्तिम विजय के इतना नजदीक हैं जितना किसी भी देश के इतिहास में कोई न था।''** इंग्लैण्ड के श्रमिक दल (Labour Party) के नेता फिलिप स्नोडेन भी कुछ समाजवादी लोगों के इस मत का विरोधी था कि पूंजीवादी व्यवस्था टूट रही है।

जिस समय पूंजीपति तथा दक्षिणपन्थी समाजवादी पूंजीवादी सम्बन्धी इस भ्रम को फैला रहे थे, कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल ने स्थिति का सही मूल्यांकन किया। कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल ने पूंजीवाद की स्थिति में सुधार को नितान्त अस्थायी बताया तथा घोषणा की कि विश्वव्यापी आर्थिक संकट प्रारम्भ होने जा रहा है। **स्टालिन** ने लिखा है कि पूंजीवाद का अस्थायी शक्ति संचय, विभिन्न देशों के साम्राज्यवादी गुटों, मजदूरों एवं पूंजीपतियों तथा साम्राज्यवाद और प्रत्येक देश के औपनिवेशिक जनता, के मध्य स्वाभाविक विरोधों को बढ़ाएगा।

आर्थिक संकट (Economic Distress)

कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की घोषणा 1924 ई. में सत्य प्रमाणित हुई। इस वर्ष आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ तथा चार वर्षों तक विश्व पर छाया रहा। इस संकट के कारण पूंजीवादी दुनिया के उत्पादन में 35 प्रतिशत कमी हो गई। **इंग्लैण्ड में उत्पादन 25 प्रतिशत कम हुआ। वैदेशिक व्यापार नष्ट हो गया। इस संकटकाल में लाखों लोग बेरोजगार हो गए।** बहुत से बैंक दिवालिया हो गए। प्रत्येक देश में सिक्के का

मूल्य गिरता गया। लोग बेरोजगार थे, नंगे थे। लोगों को काम तथा अन्न की आवश्यकता थी। यह सब पूंजीपतियों के पास था, किन्तु वे असहाय लोगों की सहायता करने के स्थान पर अन्न को नष्ट कर रहे थे। उत्पादन के साधनों व खाद्य सामग्री को नष्ट करने का मानवता विरोधी कदम इंग्लैण्ड की सरकार ने भी उठाया। 1930 ई. में इंग्लैण्ड में कोल माइन्स एक्ट पारित करके कोयले के उत्पादन को सीमित किया गया। जहाज बनाने के कारखाने व ऊनी कपड़ों के कारखाने नष्ट कर दिए गए।

उल्लेखनीय बात यह है कि इस आर्थिक संकट का प्रभाव सोवियत रूस पर नहीं हुआ। जहाँ एक ओर पूंजीवादी विश्व का उत्पादन 25 प्रतिशत कम हो गया था सोवियत संघ का उत्पादन दो गुना बढ़ गया था। इस प्रकार इस आर्थिक संकट ने पूंजीवादी व्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था की श्रेष्ठता प्रमाणित की।

आर्थिक संकट के कारण (Causes of Economic Distress)

इंग्लैण्ड में आर्थिक संकट मुख्य रूप से 1929 ई. में प्रारम्भ हुआ तथा 1933 ई. तक रहा। **इस संकट के प्रमुख कारण इस प्रकार थे :**

(1) **कर्ज का वापस न मिलना**– इंग्लैण्ड व फ्रांस ने रूस तथा अन्य देशों को ध ान दिया था जिसे रूस की सरकार ने वापस नहीं किया। परिणामस्वरुप कर्जदार रूस धनी देश हो गया व साहूकार इंग्लैण्ड व फ्रांस समृद्धिहीन। इंग्लैण्ड व फ्रांस ने पराजित जर्मनी से युद्ध की क्षतिपूर्ति द्वारा धन प्राप्त करने का प्रयास किया पर वे असफल रहे।

(2) **आर्थिक संकट**– लिप्सन के अनुसार आर्थिक संकट का एक चक्र चलता रहता और यह संकट समय-समय पर देशों में आता रहता है। इतिहास में इस प्रकार आर्थिक संकटों के अनेक उदाहरण मिलते है। इस संकट से पूर्व भी इंग्लैण्ड में 1620 ई. से 1624 ई. तक इसी प्रकार का संकट आया था।

(3) **प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव**– युद्ध काल में महंगाई बढ़ जाती है। युद्ध समाप्त होने पर कुछ दिनों तक तो तेजी बनी रहती है; तत्पश्चात् आर्थिक मन्दी आना स्वाभाविक ही है। नैपोलियन के युद्धों, अमेरिका के गृह युद्ध तथा 1870 ई. के फ्रांस-प्रशा युद्ध के पश्चात् भी ऐसा ही हुआ था। प्रथम विश्व युद्ध आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त विनाशकारी था, अतः इसके पश्चात् प्रबल आर्थिक संकट आना स्वाभाविक था।

(4) **स्वर्णमान को त्यागना**– आर्थिक संकट के समय कुछ देशों के पास अत्याधिक सोना था तथा कुछ के पास बहुत कम था। अर्थशास्त्रियों के अनुसार 1931 ई. में समस्त विश्व में कुल 2 अरब 30 करोड़ पौण्ड सोना था। इसमें से 90 करोड़ पौण्ड सोना अमेरिका के पास था तथा 54 करोड़ पौण्ड फ्रांस के पास था। इस प्रकार विश्व के कुल सोने का लगभग आधा इन दो देशों के पास ही था। इंग्लैण्ड के पास 11 करोड़ 80 लाख पौण्ड सोना था, परन्तु उसने इस सोने को बाहर भेजना उचित नहीं समझा। **अतः सितम्बर 1931 ई. में इंग्लैण्ड ने स्वर्णमान** (Gold Standard) **को त्याग दिया।** इंग्लैण्ड का अनुसरण करते हुए एक वर्ष के अन्दर लगभग चालीस देशों ने भी ऐसा ही किया। इस प्रकार स्वर्णमान को त्यागकर इन देशों ने आर्थिक मन्दी का सामना किया।

(5) **आर्थिक आत्मनिर्भरता**– 1929 ई. से 1933 ई. के मध्य विश्व के अधिकांश देशों में आर्थिक आत्मनिर्भरता की भावना अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। प्रत्येक राष्ट्र आवश्यक वस्तुओं को बाहर से न मंगाकर स्वयं बनाने का प्रयास कर रहा था। प्रत्येक देश की सरकार बाहर से आने वाले माल पर भारी-भारी चुंगियाँ लगा रही थी तथा विदेशी व्यापार को कम करने के लिए अनेक प्रकार के नियन्त्रण लगा रही थी। इससे औद्योगिक देशों, विशेषकर इंग्लैण्ड को बहुत हानि हुई।

(6) **खरीदारों का अभाव**– युद्धकाल में कारखानों तथा कृषि का उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया। तेजी से कार्य करने वाले अनेक यन्त्रों का आविष्कार हो चुका था। **एक मशीन अनेक व्यक्तियों का काम कर सकती थी, फलस्वरूप बेरोजगारी बढ़ना स्वाभाविक ही था।** इसके अतिरिक्त यन्त्रों की सहायता से उत्पादन में तो वृद्धि हो गई परन्तु युद्ध के पश्चात् वस्तुओं की आवश्यकता कम हो गई। फलतः माल गोदामों में इकट्ठा होने लगा, अतः खरीदारों के अभाव में मन्दी आ गई। जर्मनी इंग्लैण्ड का एक बहुत बड़ा ग्राहक था। जर्मनी में बड़ी मात्रा में इंग्लैण्ड का सामान जाता था, किन्तु प्रथम विश्व युद्ध में पराजित जर्मनी, जिस पर क्षतिपूर्ति करने का बहुत बड़ा बोझ डाला गया था, खरीदार की स्थिति में न रहा। इससे इंग्लैण्ड के व्यापार को अत्याधिक क्षति हुई।

(7) **न्यूयार्क शेयर बाजार का दिवाला**– अक्टूबर, 1929 ई. में न्यूयार्क के शेयर बाजार का दिवाला निकल गया। परिणामस्वरुप अमेरिका से यूरोप को कर्ज मिलना बन्द हो गया। **ई. एच. कार के अनुसार यह घटना इस संकट की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय अभिव्यक्ति थी।** इसके पश्चात् शीघ्र ही सम्पूर्ण विश्व में क्रयशक्ति का ऱ्हास होता चला गया जिससे कीमतों में व्यापक एवं अनिष्टकारी गिरावट आई। यूरोप के देशों को इससे गहरी चोट लगी, एक तो अपना कर्ज चुकाने के लिए अमेरिका से डॉलर मिलना बन्द हो गया तथा दूसरी ओर जिन वस्तुओं को बेचकर वे अपने कर्ज चुकाने की आशा करते थे उनकी कीमतें भी बहुत कम हो गई थीं।

शोचनीय स्थिति (Deplorable Condition)

इन समस्त कारणों की वजह से इंग्लैण्ड की स्थिति प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। युद्ध काल में कुछ वस्तुएं विशेष रूप से तय की जाती है। उदाहरणार्थ, लोहा, कोयला, जहाज निर्माण तथा रसायन उद्योग विशेष रूप से विकसित होते है। प्रथम विश्वयुद्ध में भी ऐसा ही हुआ था। युद्ध के पश्चात् इन उद्योगधन्धों की गति मन्द हो गई। 1930 ई. के पश्चात् जर्मनी तथा जापान में बनी वस्तुएं भी बाजार में आ गई। **इंग्लैण्ड का जो एकाधिकार अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में 19 वीं शताब्दी में था वह अब न रहा।** मूल्य के हिसाब से भी जर्मनी तथा अमेरिका में बनी वस्तुएं इंग्लैण्ड की वस्तुओं से सस्ती थीं, क्योंकि इंग्लैण्ड में मजदूरी अन्य देशों की अपेक्षा अधिक थी। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में अंग्रेजी वस्तुओं के प्रति आकर्षण समाप्त हो गया। इंग्लैण्ड की स्थिति खराब होती गई। इंग्लैण्ड पर राष्ट्रीय ऋण भी अधिक था, जिसका भार भी इंग्लैण्ड की जनता को ही सहना पड़ता था, क्योंकि सरकार ने करों में भारी वृद्धि की थी। भूमिपति तथा पूंजीपति जिन्होंने युद्ध के समय अत्यधिक कमाया था अब भारी करों को सहन न कर सके, उन्हें विलासितापूर्ण

जीवन त्यागने पर विवश होना पड़ा। पूंजीपतियों को भी दोहरी चोट लगी, उनके व्यापार में भी कमी आ गई थी तथा भारी कर भी देना पड़ता था। सबसे शोचनीय स्थिति श्रमिकों की थी, क्योंकि उन्हें एक ओर बेरोजगारी का तथा दूसरी ओर आवश्यक वस्तुओं के अभाव का सामना करना पड़ा। **इंग्लैण्ड में धनी व्यक्ति निर्धन हो गए तथा निर्धन और गरीब होते चले गए।**

श्रमिकों में सबसे शोचनीय स्थिति कोयला मजदूरों की थी, क्योंकि अब कोयले के स्थान पर बिजली व तेल का उपयोग होने लगा। खानों के मालिकों ने मजदूरी कम कर दी थी। श्रमिक संघ इसका विरोध कर रहा था। खान, रेलवे, सड़क, यातायात, बन्दरगाह तथा तार विभागों में शीघ्र ही हड़ताल हो गई जिसको इंग्लैण्ड की सरकार ने अनेक कठिनाइयों के पश्चात् समाप्त करवाया।

आर्थिक मन्दी का सामना

इंग्लैण्ड में 1929 ई. में हुए चुनावों के परिणामस्वरुप, मैक्डानल्ड ने उदारवादियों के समर्थन से मन्त्रिमण्डल बनाया, किन्तु इंग्लैण्ड की स्थिति निरन्तर खराब होती गई। इंग्लैण्ड की सरकार ने कृषि तथा कोयले के व्यवसाय में कुछ सुधार किए तथा 1930 ई. में एक **'कोयला खान निगम'** बनाया। सार्वजनिक विद्यालयों से सैनिक शिक्षा को बन्द कर दिया गया तथा आर्थिक सहायता समाप्त कर दी गई, किन्तु **सरकार आर्थिक समस्याओं को दूर करने में फिर भी स्वयं को सफल नहीं कर पा रही थी। व्यापार बढ़ाने, बेकारी दूर करने, सार्वजनिक कार्यक्षेत्र विस्तृत करने में सरकार के प्रयत्न असफल हुए।** इंग्लैण्ड में धन का आभाव तथा आय की अपेक्षा व्यय में काफी वृद्धि हो गई थी। निर्यात की अपेक्षा आयात बढ़ गया जिससे देश का सोना विदेशों को जा रहा था। स्वर्ण के बाहर जाने से बैंक के स्वर्णकोष में कमी होने लगी जिससे विदेशों में साख घटने लगी तथा लोग बैंकों से अपनी धनराशि निकालने लगे। 1931 ई. का वर्ष सर्वाधिक संकट का वर्ष था। माल का उत्पादन खूब हुआ था जिसके बिकने के कोई लक्षण दृष्टिगत नहीं हो पा रहे थे। बेरोजगारी निरन्तर बढ़ रही थी। 1931 ई. में इंग्लैण्ड में बेरोजगारों की संख्या 29,60,000 थी।

इंग्लैण्ड के हाथ से अब तक अनेक मण्डियाँ भी निकल गई थीं। उन्हें वापस लेने से इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति के सुधारने तथा उपनिवेशों से सम्बन्ध सुदृढ़ होने की सम्भावना थी, किन्तु **ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र व्यापार** (Free Trade) **की नीति को त्याग कर संरक्षण** (Protection) **की नीति को अपनाना नितान्त आवश्यक था।** अतः इंग्लैण्ड की सरकार ने विवश होकर **कामनवैल्थ** (Commonwealth) के सदस्यों का सम्मेलन आमन्त्रित किया। यह सम्मेलन **ओटावा** (Ottawa) में हुआ तथा इसमें यह निर्णय लिया गया कि कामनवैल्थ के सभी सदस्य देश सभी वस्तुएं कामनवैल्थ के देशों से ही खरीदेंगे। इस नीति ने इंग्लैण्ड की गिरती हुई अवस्था को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1931 ई. में आर्थिक संकट दूर करने के लिए प्रधानमन्त्री मैक्डानल्ड ने कुछ योजनाएं प्रस्तुत कीं। वे सभी के वेतन, पेंशन तथा बीमा, आदि के व्यय में कटौती तथा करों में वृद्धि करना चाहते थे। इस उद्देश्य से एक 'मितव्ययिता नियम' पारित किया जिसके द्वारा प्रधानमन्त्री से लेकर शिक्षक तक के वेतन में कटौती करने का प्रस्ताव था। इस नियम के अन्य प्रस्तावों से श्रमिकों को ही सर्वाधिक असुविधा होने

की आशंका थी। अतः इस नियम का सम्पूर्ण देश में घोर विरोध हुआ। अनेक मन्त्रियों द्वारा भी इस नियम का विरोध किया गया, अतः 1931 ई. में मैक्डानल्ड मन्त्रिमण्डल का पतन हो गया। 1931 ई. में ही राजा जार्ज पंचम के परामर्श से मैक्डानल्ड ने पुनः राष्ट्रीय सरकार का गठन किया। इस नवनिर्मित मन्त्रिमण्डल में दस सदस्य थे जिसमें श्रमिक दल के तीन, अनुदार दल के पाँच तथा उदार दल के दो सदस्य थे। इस मन्त्रिमण्डल ने आर्थिक स्थिति सुधारने के महत्वपूर्ण प्रयास किए। शीघ्र ही इंग्लैण्ड को अपनी मण्डियाँ पुनः मिल गई। कृषि तथा पशुपालन उद्योगों की भी उन्नति की गई। राष्ट्रीय व्यय में कमी की गई तथा नवीन कर लगाए गए और इंग्लैण्ड अपने आपको इस आर्थिक संकट का सामना करने योग्य बना सका।

इसके अतिरिक्त साम्राज्यवादी देशों ने इस आर्थिक संकट का भार अपने उपनिदेशों पर डालना प्रारम्भ किया। इंग्लैण्ड की सरकार ने गैर-ब्रिटिश सामग्री पर भारी शुल्क लगाया। उदाहरणार्थ, भारत में इंग्लैण्ड की सरकार ने 1930 ई. में सम्पूर्ण आयात पर 15 प्रतिशत शुल्क लगाया, किन्तु गैर-ब्रिटिश सामग्री पर आयात कर 20 प्रतिशत निर्धारित किया। गैर-ब्रिटिश सामग्री पर यह अतिरिक्त शुल्क 1932 ई. से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तथा 1933 ई. में पुनः वृद्धि कर 75 प्रतिशत कर दिया गया।

इस प्रकार, अपनी नीतियों में परिवर्तन करके (स्वतन्त्र व्यापार के स्थान पर संरक्षण की नीति अपनाकर) तथा खर्च कम करने व आय बढ़ाने के विभिन्न उपायों को कार्यान्वित करके इंग्लैण्ड की सरकार आर्थिक मन्दी के भीषण प्रकार से अपने देश की रक्षा करने में सुल हुई, किन्तु फिर भी इसके कुप्रभाव भविष्य में स्पष्ट दृष्टिगोचर हुए।

परिणाम / निष्कर्ष (Conclusion)

1929 ई. से 1933 ई. के मध्य विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी का इंग्लैण्ड पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। आर्थिक असन्तोष स्वाभाविक रूप से राजनीतिक आन्दोलनों को प्रोत्साहित करता है, अतः इस आर्थिक मन्दी ने इंग्लैण्ड में प्रदर्शनों, हड़तालों, आन्दोलनों, उपनिवेशों द्वारा राजस्व की मांग की शक्ति दी। इस आर्थिक मन्दी के परिणामस्वरूप कहा जाता है कि इंग्लैण्ड ने दीर्घकाल से चली आ रही राजनीतिक सर्वोच्चता और विशाल साम्राज्य को खो दिया। इंग्लैण्ड की आर्थिक सर्वोच्चता समाप्त होने का सीधा प्रभाव उसकी राजनीतिक स्थिति पर पड़ा। जिससे इंग्लैण्ड को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी।

स्पेन का गृह युद्ध (1936 1939 ई.) (The Spanish Civil War)

स्पेन में 1936 ई. से 1939 ई. तक गृह युद्ध हुआ। स्पेन का यह गृह युद्ध यद्यपि स्पेन का आन्तरिक मामला था, किन्तु विदेशी शक्तियों के इसमें हस्तक्षेप करने के कारण यह गृह युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का हो गया। इस गृह युद्ध के परिणाम भी दूरगामी हुए तथा इसने द्वितीय विश्व युद्ध को जन्म देने में भी अहम् भूमिका निभायी।

गृह युद्ध की पृष्ठभूमि (Background of the Spanish Civil War)

19 वीं शताब्दी में स्पेन ने यूरोपीय राजनीति में सक्रिय भूमिका नहीं निभाई। 19 वीं सदी में स्पेन पहले के समान ही स्थानीय, प्रगतिशील और संकुचित दृष्टिकोण वाला ही बना रहा। इस शताब्दी में स्पेन में यदाकदा उदारवाड आन्दोलन अवश्य हुए, किन्तु उनका दमन किया जाता रहा तथा ये आन्दोलन कोई स्थाई प्रभाव स्पेन पर न छोड़ सके। **स्पेन में दीर्घकाल राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति थी तथा कुलीन वर्ग व**

पादरियों का प्रभाव स्पेन की शासन व्यवस्था पर छाया हुआ था। चिरकाल से इन लोगों का प्रभाव हुआ था और वे वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी अदूरदर्शी व अनुदार बने हुए थे। ये लोग उन परिवर्तनशील आर्थिक परिस्थितियों के प्रति उदासीन रूख अपनाए हुए थे जो कि सम्पूर्ण विश्व में अधिकाधि प्रचलित होती जा रही थी। स्पेन के अनुदार लोग विश्व युद्ध के समय केन्द्रीय शक्तियों के समर्थक थे तथा उदारवादी लोग मित्र राष्ट्रों के प्रति अपनी निष्ठा रखते थे, किन्तु स्पेन की सरकार प्रथम विश्व युद्ध में तटस्थ बनी रही।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड की आन्तरिक स्थिति पहले से भी खराब होने लगी। स्पेन की आर्थिक स्थिति जो पहले से ही खराब थी अब और अधिक खराब हो गई। श्रमिकों में असन्तोष की भावना निरन्तर बढ़ती जा रही थी। **स्पेन के कैटालोनिया क्षेत्र में आर्थिक कठिनाइयों के कारण निरन्तर विद्रोही भावनाएं प्रबल होती जा रही थीं।** कैटालोनियामें स्वतन्त्रता की मांग जोर पकड़ रही थी; उन लोगों की मांग थी कि उनके राज्य को स्वतन्त्र कर वहाँ पृथक् संसद व कार्यपालिका हो जिसमें स्पेन की सरकार का कोई हस्तक्षेप न हो। इन मांगों के लिए कैटालोनिया के निवासी निरन्तर आन्दोलन कर रहे थे।

इसी समय स्पेन को मोरक्को की समस्या का भी सामना करना पड़ा। मोरक्को ने 1917 ई. में स्पेन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। यह युद्ध इतने लम्बे समय तक चला जिसमें स्पेन को अत्यधिक जन-धन की हानि उठानी पड़ी। 1921 ई. में मोरक्को के विद्रोहियों ने स्पेन के जनरल सिलवैस्ट्रे को पराजित कर दिया। जनरल सिलवैस्ट्रे के 12,000 सैनिक मारे गए। इस पराजय के कारण जनरल सिलवैस्ट्रे ने आत्महत्या कर ली। इस घटना से स्पेन की जनता शासक अलफांसी XIII के विरुद्ध हो गई क्योंकि जनता का विचार था कि राजा द्वारा सैनिक मामलों में हस्तक्षेप के कारण ही स्पेनी सेना की मोरक्को में पराजय हुई थी।

1923 ई. में एक सैनिक अधिकारी प्रोमो दि रिबेरा (Primo de Rivera) ने विद्रोहियों का दमन कर स्पेन की सत्ता पर अधिकार करने का प्रयास किया। स्पेन के राजा अफलांसो ने स्वयं को असुरक्षित पाकर प्रीमो दि रिवेरा को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। रिवेरा ने **स्पेन की संसद** व संविधान को समाप्त कर दिया तथा शक्ति के द्वारा अधिनायकवाद की स्थापना की। उसने सम्पूर्णशक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर ली व 1923 ई. से 1930 ई. तक एक तानाशाह (Dictator) की तरह स्पेन में शासन किया। रिवेरा ने भाषण, प्रेस आदि के अधिकारों को जनता से छीन लिया। रिवेरा ने स्पेन की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए प्रयत्न किया, किन्तु उसमें वह विशेष सफलता प्राप्त न कर सका। अन्ततः 1930 ई. में उसने अस्वस्थ होने व विपरीत परिस्थितियों को देखते हुए त्यागपत्र दे दिया व स्वयं फ्रांस चला गया।

स्पेन में गणतन्त्र की स्थापना (Establishment of Republic)

रिवेरा के पश्चात् स्पेन में जनरल वैरेंगुअर ने सरकार बनाई। उसने भी रिवेरा के समान तानाशाह तरीके से शासन करना चाहा, किन्तु स्पेन में गणतन्त्र की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही थी। स्पेन की जनता नारे लगा रही थी कि **'राजा तथा राजतन्त्र समाप्त हो'**। राजा के प्रयासों के पश्चात् भी गणतन्त्र की भावनाएं कमजोर न हुई। अन्ततः 1930 ई. में ही अलफांसो XIII स्पेन छोड़कर फ्रांस भाग गया। इस प्रकार

गणतन्त्रवादियों की विजय हुई। अलफांसो के पलायन के पश्चात् जमोरा (Zamora) को अस्थायी राष्ट्रपति बनाया गया। 28 जून, 1931 ई. को स्पेन में चुनाव हुए जिसमें गणतन्त्रवादियों की भारी विजय हुई। स्पेन को **'सभी वर्गों के श्रमिकों का लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्र'** घोषित किया गया तथा जमोरा को स्थाई राष्ट्रपति नियुक्त किया गया।

इस प्रकार स्थापित गणतन्त्रात्मक सरकार ने स्पेन में अनेक सुधार किए। 1933 ई. में स्पेन में पुनः चुनाव हुए जिसमें गणतन्त्रवादियों को पहले की तुलना में बहुत कम सफलता मिली। अतः कैथोलिक पार्टी के सहयोग से रिपब्लिकन गणतन्त्र दल के नेता लेरू (Lerroux) ने सरकार बनाई। उसने पिछली सरकार द्वारा लागू अध्यादेशों को समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया। अतः लेरू की नीतियों के विरुद्ध जनता में असन्तोष की भावना व्याप्त होने लगी। जनता ने अनेक बार विद्रोह किए जिनका सरकार ने कठोरतापूर्वक दमन कर दिया।

1936 ई. में हुए आम चुनावों में गणराज्य समर्थक विभिन्न दलों ने अजाना के नेतृत्व में सरकार बनाई। इस सरकार ने विरोधियों का दमन करने के लिए कठोर कदम उठाए। अतः सम्पूर्ण स्पेन में अराजकता फैल गई व गृह युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई।

गृह युद्ध का प्रारम्भ (Civil War Begins)

सन् 1936 ई. के उत्तरार्ध की सबसे महत्वपूर्ण घटना एक ऐसे देश में हुई जिसका अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में नगण्य स्थान रहा था। 17 जुलाई, 1936 ई. को स्पेनिश मोरक्को में तैनात सेना के सेनापति फ्रांको (General Franco) ने स्पेन की आन्तरिक स्थिति को देखते हुए विद्रोह कर दिया। **इस प्रकार स्पेन में गृह युद्ध 17 जुलाई, 1936 ई. को प्रारम्भ हो गया।** जनरल फ्रांको सेना के साथ स्पेन में घुस गया व बिना किसी विरोध का सामना किए उसने दक्षिणी स्पेन पर अधिकार कर लिया। नवम्बर के मध्य तक जनरल फ्रांको मेड्रिड के उपनगरों तक पहुँच गया। अतः स्पेनिश सरकार को अपना मुख्यालय वेलिन्शिया (Velencia) में स्थापित करना पडा। जनरल फ्रांको को जर्मनी व इटली की सहायता प्राप्त हो रही थी। अतः जनरल फ्रांको निरन्तर विजय प्राप्त करता रहा। अन्ततः 2 जनवरी, 1839 ई. को बार्सीलोना पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण स्पेन पर अधिकार करने के पश्चात् जनरल फ्रांको ने स्पेन में अपनी सरकार की घोषणा कर दी। कुछ समय पश्चात् यूरोपीय राष्ट्रों ने भी जनरल फ्रांको की सरकार को मान्यता प्रदान कर दी।

स्पेनिश गृह युद्ध का महत्व (Significance of the Spanish Civil War)

जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है स्पेन का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विशेष हस्तक्षेप नहीं था। सामान्य परिस्थितियों में स्पेन में हुए गृह युद्ध से किसी अन्य देश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए था, लेकिन कुछ विशेष कारणों ने न केवल स्पेन के गृह युद्धों को अन्तर्राष्ट्रीय घटना बनाया वरन् उसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व भी स्थापित किया। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए ई. एच. कार ने लिखा है, **''वैसे अन्य परिस्थितियों में स्पेन का गृह युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय घटना न बना होता जिन कारणों से वह अन्तर्राष्ट्रीय घटना बन सका, ये दो प्रकार के थे। एक तो इटली हाल ही में अबीसीनिया पर विजय प्राप्त कर चुका था। जिससे भूमध्यसागर का सामारिक**

महत्व सुस्पष्ट हो गया था। अतः उसने पश्चिमी भूमध्यसागर में अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के इस अवसर का स्वागत किया। दूसरे, प्रथम विश्व युद्ध के बाद से ही यह विचार जोर पकड़ रहा था कि किसी देश विशेष का आन्तरिक संगठन जिस राजनीतिक सिद्धान्त पर आधारित हो, उस देश से अन्य देशों में उस सिद्धान्त की विजय के लिए प्रोत्साहन तथा सहायता अपेक्षित है।'' इसी सिद्धान्त के आधार पर जनरल फ्रांको को इटली व जर्मनी ने इस गृह युद्ध में सहायता की थी, जबकि दूसरी ओर रूस स्पेन की साम्यवादी सरकार को समर्थन दे रहा था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्पेन का गृह युद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय घटना थी। **इस गृह युद्ध के प्रति यूरोप की विभिन्न शक्तियों का रुख निम्नलिखित था:**

1. **इटली (Italy)**– इटली में उस समय मुसोलिनी का शासन था, जिसका विश्वास फासिस्टवाद में था। अतः इटली यूरोप के अन्य देशों में भी फासिस्टवाद की स्थापना करना चाहता था। **इसी आधार पर उसने आस्ट्रिया में भी फासिस्टवाद की स्थापना पर जोर दिया था।** 1936 ई. में हुए स्पेन के इस गृह युद्ध को इटली ने फासिस्टवाद व कम्युनिज्म के मध्य संघर्ष माना और जनरल फ्रांको की सहायता करके परोक्ष रूप से फासिस्टवाद की सहायता की। फ्रांको की सेना को मोरक्को से स्पेन लाने के लिए भी इटली ने अपने वायुयान भेजे थे।

   फासिस्टवाद के आतिरिक्त भी इटली इस गृह युद्ध से लाभ उठाना चाहता था। फ्रांको के शासन की स्थापना से इटली का भूमध्य सागर में प्रभाव बढ़ गया जिससे वह इंग्लैण्ड और फ्रांस को हानि पहुँचा सकता था।

2. **जर्मनी (Germany)**– जर्मनी ने भी स्पेनिश गृह युद्ध में उन्हीं कारणों से जनरल फ्रांको की मदद की जिनकी वजह से इटली ने की थी। **जर्मनी में हिटलर की सत्ता थी, जो गणतन्त्र का घोर विरोधी था।** अतः वह स्पेन में भी एकतन्त्रात्मक शासन की स्थापना करना चाहता था। इसके अतिरिक्त स्पेन में मित्र-सरकार होने पर जर्मनी अपने पारम्परिक शत्रु फ्रांस के लिए खतरा बन सकता था क्योंकि फ्रांस तीन ओर से धिर जाता। स्पेन मे फ्रांको की सरकार बनने से फ्रांस पूर्व में जर्मनी, दक्षिण में इटली व पश्चिम में स्पेन से घिर गया। इसके अतिरिक्त स्पेन के गृह युद्ध में जनरल फ्रांको की सहायता करके जर्मनी ने भूमध्य सागर में भी अपने प्रभाव को बढ़ा लिया जिससे इंग्लैण्ड के उपनिवेशों को खतरा उत्पन्न हो गया।

3. **रूस (Russia)**– स्पेन के गृह युद्ध में रूस ही एक ऐसा देश था जिसकी सहानुभूति स्पेनिश सरकार के प्रति थी तथा जिसने स्पेन की सहायता की। इस सहानुभूति का कारण रूस का साम्यवादी होना था। वह स्पेन में गणतन्त्र का समर्थक था। रूस का मानना था कि यदि स्पेन में तानाशाही की स्थापना हो गई तो विश्व में तानाशाही का महत्व बढ़ जाएगा क्योंकि इटली व जर्मनी में पहले से ही तानाशाही शासन विद्यमान था। रूस के जर्मनी से सम्बन्ध भी कटु थे। अतः वह यूरोप में जर्मनी के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकना चाहता था। रूस का विचार था कि यदि स्पेनी गृह युद्ध में स्पेनी सरकार की पराजय हो गई तो जर्मनी का प्रभाव स्पेन पर भी छा जाएगा। इसी कारण उसने इंग्लैण्ड व फ्रांस से भी स्पेनी सरकार की मदद करने का आव्हान किया। रूस ने इस बात का

भी प्रयत्न किया कि स्पेन के विद्रोहियों (जनरल फ्रांको) को इटली व जर्मनी से मिलने वाली सहायता को रोका जा सके, किन्तु रूस अपने इस उद्देश्य में सफल न हो सका।

टिप्पणी

4. **इंग्लैण्ड (England)**– रूस ने इंग्लैण्ड से स्पेनिश सरकार की सहायता करने की अपील की थी, किन्तु इंग्लैण्ड ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया, क्योंकि इंग्लैण्ड इसे स्पेन का आन्तरिक मामला मानते हुए उसमें हस्तक्षेप करने का इच्छुक न था। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड जनरल फ्रांको को भी नाराज करना नहीं चाहता था क्योंकि इससे उसके जिब्राल्टर नामक उपनिवेश के लिए संकट उत्पन्न हो सकता था। इंग्लैण्ड द्वारा रूस की अपील को स्वीकार न करने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि **इंग्लैण्ड कम्युनिज्म का विरोधी था व कम्यूनिज्म को फैलने से रोकना चाहता था।** यदि स्पेन में रूस की सहायता से स्पेनी सरकार कायम रह जाती तो कम्युनिज्म को बढ़ावा मिलता।
5. **फ्रांस (France)**– फ्रांस व इंग्लैण्ड मित्र थे। अतः इंग्लैण्ड का अनुकरण करते हुए उसने भी स्वयं को इस गृह युद्ध से अलग नहीं रखा। इसके अतिरिक्त फ्रांस का मुख्य शत्रु जर्मनी था। अतः फ्रांस इटली से अच्छे सम्बन्ध रखना चाहता था। स्पेन के गृह युद्ध में क्योंकि इटली भी जनरल फ्रांको की मदद कर रहा था। अतः फ्रांस ने स्पेनिश सरकार की सहायता करके इटली को नाराज करना उचित न समझा।
6. **अमेरिका (America)**– अमेरिका ने भी स्पेन के गृह युद्ध से स्वयं को अलग ही रखा क्योंकि वह भी कम्युनिज्म का घोर विरोधी था। अमेरिका, फ्रांस व इंग्लैण्ड का विचार था कि कम्युनिज्म को विश्व में फैलने से रोकने के लिए कुछ देशों में तानाशाहों का रहना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त अमेरिका स्वयं को यूरोपीय राजनीति से अलग रखना चाहता था।

गृह युद्ध के प्रभाव (Effects of Civil War)

स्पेन का गृह युद्ध एक अन्तराष्ट्रीय घटना थी। अतः इसके प्रभाव भी अन्तराष्ट्रीय ही हुए। इस गृह युद्ध का प्रभाव केवल इतना ही नहीं हुआ कि इससे स्पेन में गणतन्त्र की समाप्ति व तानाशाही की स्थापना हुई वरन् इसके सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। इस युद्ध के प्रारम्भ होते ही यूरोप के दो शिविरों में विभक्त होने के लक्षण प्रकट होने लगे थे। इटली, जर्मनी व पुर्तगाल स्पष्टतया विद्रोहियों की सहायता कर रहे थे, जबकि रूस स्पेनी सरकार का समर्थक था। यदि रूस की अपील पर फ्रांस व इंग्लैण्ड भी इसमें हस्तक्षेप करते तो यूरोप दो शिविरों में बंट गया होता। इस गृह युद्ध के कारण रूस इंग्लैण्ड व फ्रांस से नाराज हो गया, दूसरी ओर जर्मनी और इटली के सम्बन्ध घनिष्ठ हो गए। **डेविड थामसन** ने इस विषय में लिखा हैं, **"इस गृह युद्ध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि इसने स्पष्ट कर दिया कि लोकतन्त्रात्मक सरकारों को पराजित करने के लिए जर्मनी तथा इटली की आक्रामक तानाशाह सरकारे आपस में मिल सकती थीं अथवा यह कहना चाहिए कि मिल रही थीं तथा लोकतन्त्रों की कमजोरी के कारण वे अपने उद्देश्य में सफल भी हो सकती थीं।"** इस गृह युद्ध के कारण तानाशाहों का यूरोप में प्रभाव बढ़ा तथा राष्ट्र

टिप्पणी

संघ (League of Nations) की कमजोरी स्पष्ट हो गई। यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्र संघ इतना शक्तिशाली नहीं था कि वह किसी शक्तिशाली देश पर अंकुश लगा सके।

स्पेन के इस गृह युद्ध में स्पेन की व्यक्तिगत भी अत्यधिक हानि हुई। लाखों लोग इस गृह युद्ध में मारे गए व अपार सम्पत्ति नष्ट हो गई।

अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

1. मुसोलिनी इटली का प्रधानमंत्री बना।
   (क) 1919 ई. (ख) 1922 ई.
   (ग) 1924 ई. (ग) 1925 ई.
2. रोम बर्लिन धुरी की स्थापना हुई।
   (क) 1933 ई. (ख) 1934 ई.
   (ग) 1934 ई. (घ) 1936 ई.
3. इटली में फासीवाद का जनक कौन था?
   (क) स्टालिन (ख) हिटलर
   (ग) फ्रेंको (घ) मुसोलिनी
4. मेरा संघर्ष (Main Kampf) नामक पुस्तक का रचयिता है।
   (क) हिटलर (ख) मुसोलिनी
   (ग) बिस्मार्क (घ) ट्राटस्ली
5. मेरा संघर्ष नामक पुस्तक का रचयिता है।
   (क) हिटलर (ख) मुसोलिनी
   (ग) बिस्मार्क (घ) ट्राटस्ली
6. धुरी शक्तियाँ में कौन सा देश नहीं था –
   (क) जर्मनी (ख) इटली
   (ग) जापान (घ) आस्ट्रिया
7. पर्ल हार्बर पर किसने आक्रमण किया था?
   (क) हिटलर (ख) मुसोलिनी
   (ग) बिस्मार्क (घ) ट्राटस्ली
8. इंग्लैण्ड ने 'स्वर्णमान' को कब त्यागा?
   (क) 1920 ई. (ख) 1930 ई.
   (ग) 1931 ई. (घ) 1932 ई.
9. स्पेन में गृह युद्ध किस वर्ष प्रारंभ हुआ।
   (क) 1936 ई. (ख) 1938 ई.
   (ग) 1939 ई. (घ) 1940 ई.

5.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1. (ख)
2. (घ)
3. (घ)
4. (क)
5. (क)
6. (घ)
7. (क)
8. (ग)
9. (क)

5.7 सारांश (Summary)

मुसोलिनी की विदेश नीति शक्तिशाली, द्वन्द्व और विस्तारवादी थी निःसंदेह इससे अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इटली का गौरव बढ़ा और उसके ऑपनिपेशिक साम्राज्य की सीमाओं में भी वृद्धि हुई। मुसोलिनी ने प्रथम विश्व युद्ध से उत्पन्न निराशा, हीनता तथा अपमान की भावना को नष्ट कर अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में इटली की प्रतिष्ठा स्थापित की। उसकी यह नीति ने अनेक राज्यों को जीतकर इटली के अधीन कर दिया। परन्तु इनकी उग्र आक्रामक विस्तारवादी और फासिस्ट विदेश नीति के कारण कई उलझने उत्पन्न हो गई जिनके परिणाम गंभीर हुए।

नाजी दल के उत्कर्ष मे हिटलर का स्वयं का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण था उसका व्यक्तित्व विभिन्न विशेषताओं से युक्त था। जर्मनी जहाँ आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा था जर्मनी के किसान लगभग तीन अरब डालर के ऋण के भार से दबे थे। हिटलर ने कृषकों को आश्वासन दिया, छोटे व्यापारियों को बड़े स्टोर्स के राष्ट्रीयकरण की बात कही गई। बड़े पूंजीपति समाजवाद से घबराकर उसका समर्थन कर रहे थे। युद्ध के पश्चात् जर्मनी में बेरोजगारी अत्याधिक बढ़ गई। हिटलर ने रोजगार प्रदान करना अपना नारा दिया और युवा वर्ग का समर्थन प्राप्त कर लिया। उसने कहा ''प्रजातंत्र पागलो, डरपोक तथा भूखे लोगों की व्यवस्था हैं।''

प्रथम विश्व युद्ध 1919 ई. को समाप्त हुआ एवं इसके ठीक 20 वर्ष बाद 1939 ई. में द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ हो गया। इन दो विश्व युद्धों के मध्य विश्व राजनीति का कई कटु अनुभवों से सामना हुआ। प्रथम विश्व युद्ध की विभीशिका से यूरोपीय राजनीतियों ने कोई सबक नहीं सीखा। शान्ती स्थापना हेतू आदर्शवादी बातें तो बहुत की गई मगर व्यवहार में उनका पालन नहीं किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के कोई एक कारण जिम्मेदार ना होकर अनेक कारण जिम्मेदार थे। फ्रांस एवं ब्रिटेन की तुष्टीकरण की नीति एवं हिटलर, मुसोलिनी, फ्रेंको व जापान सभी का अधिनायकवादी नीति ने एक बार पुनः विश्व को द्वितीय विश्व युद्ध की ज्वाला में झोंक दिया।

5.8 मुख्य शब्दावली (Key Terminology)

टिप्पणी

- **फासीवाद**– सत्ता का प्रतीक
- **युद्धोपरान्त**– युद्ध के पश्चात्

5.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास (Self Assessment Questions and Exercises)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. फासीवाद को पारिभाषित कीजिए।
2. फासीवाद के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
3. नाजीदल के प्रमुख उद्देश्य बताइए।
4. नाजीवाद एवं फासीवाद में अंतर बताइए।
5. स्पेन के गृहयुद्ध का महत्व बताइए।
6. द्वितीय विश्व युद्ध की प्रमुख घटनाएं बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. इटली में फासिस्टवाद के उदय के कारणों व प्रगति का वर्णन कीजिए।
2. मुसोलिनी की गृहनीति व उनके परिणामों का वर्णन कीजिए।
3. मुसोलिनी की वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिए।
4. नाजीवाद से आप क्या समझते हैं? जर्मनी में नाजीवाद के उदय के कारणों का वर्णन कीजिए।
5. हिटलर की गृह एवं विदेश नीति का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
6. दो विश्व युद्ध के मध्य आर्थिक संकट पर प्रकाश डालिए।
7. दो विश्व युद्धों के मध्य अंतराष्ट्रीय संबंधों पर लेख लिखिए।
8. द्वितीय विश्व युद्ध के कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डालिए।
9. द्वितीय विश्व युद्धों के कारणों एव प्रभावों का वर्णन कीजिए।
10. द्वितीय विश्व युद्धों की प्रमुख घटनाओं एवं परिणामों को उल्लेख कीजिए।

5.10 सहायक पाठ्य सामग्री (Suggested Readings)

1. कैटलबी, सी.डी.एम. : ए हिस्ट्री ऑफ कॉमर्स टाइम्स।
2. हेजन, सी.डी. : मॉडर्न यूरोपीयन हिस्ट्री।
3. चौहान, देवेन्द्र सिंह : यूरोप का इतिहास – भाग 1 एवं 2।
4. जैन एवं माथूर : विश्व का इतिहास।
5. पान्डेय, धनपति : आधुनिक ऐशिया का इतिहास।
6. वर्मा, दीनानाथ : आधुनिक यूरोप का इतिहास।
7. मेहता बी.एस. : यूरोप का इतिहास।
8. शर्मा एल.बी. : इंग्लैड का इतिहास।
9. पाल, बी.ई. : यूरोप का इतिहास।
10. गुच, जी.पी. : ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप।